श्री
श्री
श्री
ॐ
साधनेचे अध्वर्यू
आत्मनिवेदन

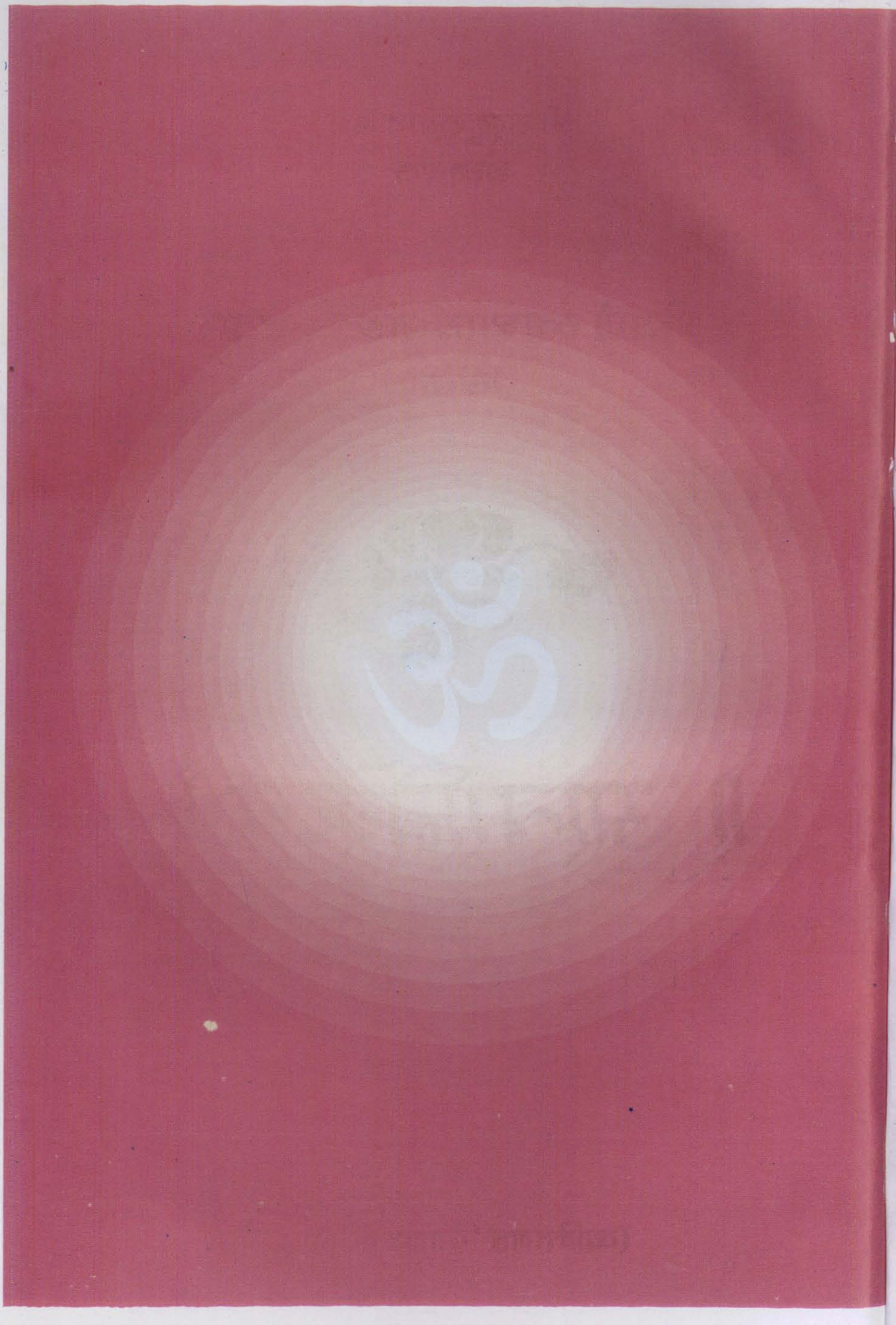

श्री सद्गुरूनाथ दादा
संस्थापक

श्रीसाई स्वाध्याय मंडल (गोवा)

लिखित

॥ आत्मनिवेदन ॥

(व्यक्तिगत वितरण के लिए)

इस किताब का किसी भी भाषा में अनुवाद करने से पहले श्री साई स्वाध्याय मंडल, पर्वरी, गोवा से अनुमति लेना अनिवार्य है।

सर्वाधिकार प्रकाशक के स्वाधीन

गुढी पाडवा

श्री साई शक 17

गुरूवार दिनांक 18-3-1999

मुद्रकः

कॉन्वे प्रिंटर्स एवं पैकर्स

ई–139, सैक्टर–7,
नौएडा, उत्तर प्रदेश

प्रकाशकः

श्री साई स्वाध्याय मंडल

'साई–धाम', 47, डिफेन्स कॉलनी,
अल्तो पर्वरी, बारदेश,
गोवा–403 521
फोन : 0832–412571

|| अनुक्रमणिका ||

- पुण्याहवाचन, गुरूवाणी 1
- नांदी 2–6
- श्री मंगलाचरण 7
- श्री गणेश वंदना, श्री सरस्वती वंदना, पसायदान 8
- दैनंदिन प्रार्थना 9
- श्री शक्तिपीठ प्रार्थना 10

अध्याय

1. जीवन और जीवन का आरम्भ 11–17
2. मिलटरी में नौकरी, श्रीभैरवनाथजी का आदेश,
परम पूज्य बाबा की सेवा, संचार अवस्था 18–26
3. श्रीक्षेत्र औदुंबर–सेवा 27–31
4. 'इन्सान जाग उठा!' 32–34
5. साधक अवस्था–हाजी हजरत मलंगबाबा से मार्गदर्शन 35–38
6. ज्योतिष्मती – 'श्रीगुरूचरित्र'
विमोचन साधन – श्रीशक्तिपीठ कार्य योजना 39–45
7. मानवी जीवन – वंशविमोचन 46–50
8 कर्म विमोचन – गुरूअंश प्राप्ति 51–55
9. साधक का कर्त्तव्य – कर्मविमोचन 56–62
10. मानवी जीवन – पांच ऋणानुबंध 63–66
11. परमपूज्य महंमद जिलानी बाबा का आगमन –
मृत्यु उपरान्त जीवन, कर्म 67–73
12. जीवन – उन्नीस माध्यम 74–79
13. गुरूमार्ग – साधन पद्धति 80–87
14. गुरूमार्ग – दीक्षा 88–91
15. गुरूमार्ग – गुरूचरित्र 92–96
16. गुरूमार्गदर्शन 97–102
17. ॐकार साधना – अंग 103–110

18. सितारों में इंद्रधनुष 111–113
19. साधना मे अंतर्भूत विष – विमोचन संकल्पसिद्धी 114–120
20. संकल्प की भूमिका, साधना मार्ग, उपासना मार्ग 121–124
21. परलोक मार्ग 125–139
22. औदुंबर सेवा की समाप्ति 'स्वगृह' गमन 140–146
23. श्री साई अध्यात्मिक समिती की स्थापना तथा
श्रीसाईनाथ महाराज और पांच पीर के द्वारा
विजयादशमी के दिन कार्यारंभ 147–155
24. विमोचन, दीक्षा, महारूद्रस्वाहाकार 156–162
25. ॐकार की सिद्धता – श्री पंतमहाराज जी से भेंट 163–169
26. करनी, बाधा, ताम्हन 170–172
27. कार्य का प्रचार – गोवा में कार्यकेन्द्र 173–183
28. 'साष्टांग प्रणाम करके आपके चरणों को वंदन करूंगा।।
आंखों से आपके स्वरूप का दर्शन करूंगा।।' 184–186
29. लंदन में कार्य करने की आज्ञा और कार्य 187–205
30. हिंदुस्तान पुनःआगमन और पुनश्च कार्य का प्रारंभ,
आगे के कार्य के लिए परम पूज्य बाबा का मार्गदर्शन 206–210
31. ॐकार साधना सिद्धता –
श्रीनृसिंहसरस्वतीजी का मार्गदर्शन 211–216
32. ॐकार 'अ' तत्व की सिद्धता 217–222
33. 'उ' तत्व की सिद्धता, शिरोड़ा का ज्ञानयज्ञ,
'श्रीसाईशक' प्रतिमा 223–226
34. शक्तिपीठ–स्थापना का प्रारंभ –
'उ' तत्व में श्रीगजानन की प्राप्ति 227–233
35. कर्म–आधीन अवस्था की प्राप्ति 234–237
36. साधना में बदल 238–246
37. साधना का अर्थ, इह जन्म का गणित, सत्कर्म 247–252
38. अवधान, ध्यान, चिंतन अवस्था 253–260
39. श्री साई स्वाध्याय मंडल, श्री मारूती स्तोत्र 261–266
40. शुभतारा का आगमन महाकारण दिशा, बीज दीक्षा 267–269

41.	श्रीसाईनाथ महाराजजी ने स्पष्ट किया ॐकार साधना का कार्य	270–276
42.	सूज्ञ भक्तों जागृत हो जाओ!	277–280
43.	श्रीशेष पंचमी, ज्योतिष्मती अवस्था, हिरण्य गर्भ अवस्था	281–285
44.	गुरूमार्ग – सेवक का कर्त्तव्य	286–290
45.	गुरूमार्ग – कुलधर्म – कुलाचार	291–295
46.	प्रतिमा श्रीसाईशक (ज्ञान), श्रीकारण (भक्ति), श्रीमहाकारण (सेवा), श्री नारायणी (जीवन सार्थकता)	296–308
47.	कर्मयज्ञ – धर्मयज्ञ – मानवता	309–313
48.	श्रीसद्गुरू कृपाआर्शीवाद के बीज बोने वाले श्री साईनाथ महाराज के कार्य	314–319
49.	श्री साई शक 7 चैत्र प्रतिपदा, श्रीशक्तिपीठ और श्रीनारायणी संगम, श्रीपंतमहाराजजी से कार्यार्थ आशीर्वाद, कुंडलिनी विज्ञान	320–325
50.	विमोचन साधना – ईहलोक और परलोक का विचार	326–330
51.	वाणी – जीव – जीवात्मा – आत्मा – प्रज्ञा अवस्था – श्रीसाईनाथ महाराजजीका आशीर्वाद!	331–336
52.	श्रीसाईनाथ महाराज के कृपाशीर्वाद की प्रेरणा – परमार्थ–युग का उदयकाल 'श्रीसाई शक'!	337–340
	श्रीसाईशक संबंधित पारमार्थिक निवेदन	341–342

॥ ॐ ॥

"गुरूमार्ग में 'श्रीगणेशा' यह जीवन का आरम्भ है। इसमें अनेक विचारों के लिए जवाब ढूंढने पड़ते हैं जिसके लिए अपरंपार निष्ठा का होना जरूरी है। इस मार्ग में से गुजरते वक्त ज्यादा क्षण दुःख के ही होते हैं, पर इससे निराश होना उचित नहीं। जिस सुख की अपेक्षा में हम दुःखी होते हैं वह दुःख है ही नहीं, वह एक घटना है। उसे जीत लेना ही गुरूमार्ग है।"

~ श्रीसद्गुरूनाथ दादा ~

"जीवन में दुःख के क्षण बहुत ही कम होते हैं मगर अज्ञान के घंटे अधिक हैं जिसकी वजह से दुःख के क्षण ही दिन बन जाते हैं और धीरे धीरे इनके ही साल बनते हैं। वस्तुतः जन्म लेने वाले हर व्यक्ति के सुखों की योजना खुदा ने खुद बनाई है। सुगंधित फूल का काँटा चुभना यह फूल का दोष नहीं हैं, पर अगर चुभ भी जाए तो उसे सहन कर लेना चाहिए क्योंकि हम सुगंध का भोग लूटने वालों में हैं।"

आपका सेवक,
दादा भागवत

पुण्याहवाचन
गुरूवाणी

।। श्री जगद्‌गुरू साईनाथ महाराज,
नवनाथ आदि पुण्य विभूती ।।

इनके कृपाआशीर्वाद से साधना मार्ग में उनकी आज्ञा से जो कोई अमृतानुभवों का अनुभव मैंने पा लिया उनका ज्ञान बाकी भक्तगणों को ज्ञात हो इसलिए उन्ही के कृपाआशीर्वाद से यह 'आत्मनिवेदन' लिखने की प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई है। उन श्रेष्ठ विभूतियों के चरणों में यह 'आत्मनिवेदन' समर्पित करता हूँ।

आपका सेवक,

दादा भागवत

।। श्री साईनाथ ।।

卐 नांदी 卐

卐

श्रीसाईशके 17

गुढ़ीपड़वा 17–3–1999

श्री सद्‌गुरूनाथ दादाजी का शब्द ब्रह्मांकित किया हुआ यह 'आत्मनिवेदन' गुरूभक्तों के लिए एक अनोखी भेंट–अनोखा उपहार है। श्रीसद्‌गुरूनाथ दादा अवतारी पुरूष थे। उनके जन्म के पूर्व तथा उनके पूज्य पिताजीके विवाह के पहले ही पीरवाड़ी के महाराजजी ने उनके पूज्य पिताजी के हाथों में श्रीफल प्रसाद देकर यह कहा था कि, 'तुम्हे पहला सुपुत्र होगा जिसका नाम **'दत्तात्रेय'** रखें'। इस तरह वंदनीय दादाजी का जन्म हुआ, और विश्व के तीनों तत्व पूर्ण रूप से श्रीदादाजी के माध्यम में प्रकट हो गए। श्रीसाईनाथ महाराजजी की आज्ञा के अनुसार लोक कल्याण एवं विश्व शांति के लिए वंदनीय दादाजी ने काफी परिश्रम से कार्यारंभ और कार्य की पूर्णता की। यह कार्य देखा जाए तो श्रीदत्तात्रेय (श्रीसाईनाथ महाराज) के आज्ञानुसार श्रीदत्तात्रेय (वंदनीय दादाजी) द्वारा किया हुआ अविश्रांत, अविस्मरणीय, शाश्वत गुरूकार्य ही है।

महाशिवरात्रि के दिन पंढरपुरके निवास के समय वंदनीय दादाजी श्री विठ्ठलजी के दर्शन के लिए गऐ थे। तब वहां उन्हें श्रीविठ्ठलजी का आदेश हुआ कि "आज तक इस पृथ्वी पर जितने संत महात्माओं ने जन्म लिया, उन्होंने परमार्थ की राह पर प्राप्त किए हुए अनुभवों का जिक्र अपने भक्तों

से नहीं किया, इसलिए 'परमार्थ' विषय अगम्य ही रहा। मगर, "अब परमार्थ में साधना करते समय खुद को प्राप्त हुए अनुभव, भक्तभाविकों के सामने उजागर करें ताकि उन्हें उनका ज्ञान होकर परमार्थ मार्ग में उनकी रूचि जागृत होगी।" इस आज्ञानुसार गुरूमार्ग में साधन सिद्धता करते वक्त श्रीदादाजी को गुरूआज्ञा से मिले अनुभवों का जिक्र उन्होंने अपने इस 'आत्मनिवेदन' में भक्तों के लिए किया है। श्रीदादाजी के प्रकट किए हुए ये परमार्थ के परमानुभव प्रत्यक्ष श्रीविठ्ठलजी अर्थात श्रीविष्णु जी के आदेशानुसार, गुरूआज्ञा एवं गुरूप्रेरणानुसार भक्तभाविकों को ज्ञानी बना कर उन्हें अपने जन्म कारण का बोध हो एवं उनका जीवन सार्थक हो, इस हेतु से शब्द ब्रह्मांकित किये गए हैं। श्रीदादाजी ने अपना समूचा जीवन औरों के खातिर व्यतीत किया है। उन्होंने विश्व कल्याण के लिए श्रीगुरू के पास याचना की मगर अपने लिए कुछ भी नहीं मांगा। अति प्रयास और परिश्रम से उन्होंने जो भी सिद्ध–सिद्धान्त पद्धति तथा साधना प्राप्त की, उन्हें श्रीदादाजी ने स्वयं अपने सेवकों को प्रदान की जिससे विश्व कल्याण तथा विश्व शांति का कार्य अनवरत जारी है। शिरोड़ा में जो आठ सम्मेलन हुए उनमें उन्हें प्राप्त हुए गुरूदक्षिणा का धन उन्होंने स्वाध्याय मंडल को स्थापित करने में लगाया, उस धन का उपयोग उन्होंने जन कल्याण के लिए किया जिससे आम लोगों की मूल आवश्यकताओं को, आशीर्वाद रूपी धन से निरंतर पूरा किया जा सके और यह निरंतर स्त्रोत बना रहे। इस तरह उन्होंने बड़े ही निःस्वार्थ भाव से यह ऐहिक तथा पारमार्थिक खजाना विश्व कल्याण के लिए भक्तभाविकों के हाथों में सौंप दिया। **'गुरूप्रसाद'** तथा **'आत्मनिवेदन'** इन ग्रंथो में लिखे हुए परमार्थ के सर्वोच्च ज्ञानानुभवों के सर्वाधिकार श्रीदादाजी ने श्रीगुरु के गुरूचरणों में अर्पित किए जिसकी वजह से इस गुरूशक्ति को अपने दिल में धारण करने वाले हर भक्तभाविक को इन ज्ञानानुभवों के सर्वाधिकार अपने आप ही प्राप्त होते हैं। श्री ज्ञानेश्वरजी द्वारा विश्वात्मक भगवान के पास से मांगा हुआ 'पसायदान' की तरह विश्व कल्याण तथा विश्व शांति के लिए भक्ति–प्रेम–ज्ञान के जरिए श्रीदादाजी ने कार्यान्वित किया है। बंबई में साधना सम्मेलन में 'आत्मनिवेदन' का वाचन और उस विषय पर मुलाक़ात, वंदनीय दादाजी ने ली। इस साधना सम्मेलन के आखिरी दिन 'गुरूप्रसाद' और 'आत्मानिवेदन'

ये दो ग्रंथ भक्तभाविकों को प्रदान करते हुए उन्होंने कहा था "ये दो ग्रंथ परमार्थ ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ खजाना है। यह अनूठा खजाना अगली पुश्तों को प्राप्त हो इसलिए मैं आपके हाथों सौंप रहा हूँ जिससे उनकी ऐहिक तथा पारमार्थिक प्रगति हो सके। यह अमूल्य खजाना आप अपनी जान से भी ज्यादा संभाल कर रखे ताकि आगे आने वाली हर पुश्त के जीवन कल्याणार्थ इनका उपयोग हो सके।"

'आत्मनिवेदन' इस शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक है – खुद के अनुभवों का निवेदन या फिर दूसरा अर्थ है अपनी आत्मा को प्राप्त हुये अनुभवों का निवेदन। ये दोनों अर्थ श्रीदादाजी के जीवन में सही मायने रखते हैं क्योंकि वंदनीय दादाजी काया वाचा तथा मन से एकरूप बने हुए परमात्मा स्वरूप ही थे। इस परमात्मा के परमार्थ अनुभवों का निवेदन यानि परमार्थ का परिपूर्ण ज्ञान है। एक श्रेष्ठ ज्ञानयज्ञ है। अपने अनुभवों का श्रीदादाजी ने किया हुआ कथन, मतलब भक्तिरस से संवारा हुआ 'वाङ्‌यज्ञ', शब्द ब्रह्म का तेजस्वरूप! वेदना के बिना निर्मिती नहीं होती, इसी तरह वेदना के बिना निवेदन नहीं होता है। एक अवतारी पुरूष ने औरों के कल्याण के लिए, उनके जीवन को सार्थक करते हुए एवं वेदनामुक्त करते हुए, जिन वेदनाओं को कार्यसिद्धी करते वक्त खुद सहन कर लिया और जिनका किसी के पास जिक्र तक नहीं किया, उन वेदनाओं के जरिए उनकी आत्मा का किया हुआ परमार्थ प्रकटीकरण–इसीका मूर्त रूप है यह श्रीदादाजी का 'आत्मनिवेदन'।

'निवेदन' इस शब्द में नि–वेद–न ऐसे चार अक्षर है। इसके मायने वेदों को भी जिसका ज्ञान न हुआ है ऐसे ज्ञान का विवेचन। वेद जहाँ 'नेति नेति' कहते हैं, उसके पार अवधूत याने गुरू, भक्त की उँगली थाम कर भक्त को ले जाते हैं, उसे सज्ञान करते है। 'गुरूप्रसाद' एवं 'आत्मानिवेदन' ये श्रीदादाजी के दो दिव्य ग्रंथ है। इसमें पिंड–ब्रह्मांड का परिपूर्ण ज्ञान है। प्रपंच–परमार्थ का 'पूर्णात् पूर्णमिदं' यह सुबोध और रसीला विवेचन है। 'गुरूप्रसाद' याने 'गुरूगीता' है और 'आत्मनिवदेन' याने 'गुरूचरित्र' है। 'गुरूप्रसाद' ग्रंथ का पारायण तथा जीवन में उसकी अखंड धारणा कर

लेना यही श्रीगुरूजी के कृपाप्रसाद की प्राप्ती करना है। इसी तरह 'आत्मानिवेदन' का पारायण और उसमें स्थित गुरू–ज्ञान का उपयोग अपने चरित्र निर्माण के लिए कर लेना इसका मतलब है श्रीगुरूजी के चरणों में भक्त के लिए निरंतर स्थान! श्रीगुरूजी का कृपाप्रसाद प्राप्त हो तथा उनके चरणों में निरंतर स्थान प्राप्त हो इससे दूसरा कोई भी 'परम–अर्थ' ईश्वर के साक्षात्कार का हो सकता है क्या? श्रीगुरू, गुरूमार्ग, गुरूशक्ति और उसका आविष्कार इन सब की बुनियाद याने ग्रंथ 'गुरूप्रसाद'! और उनका 'शिखर' याने 'आत्मनिवेदन'! ऐसे अलौकिक गुरू के ज्ञान–मंदिर में, भक्ति का प्यासा गुरूभक्त जब प्रवेश करेगा तब वह, ज्ञान तथा प्रेम से अवलिप्त होकर 'सेवक' अवस्था को स्वीकार कर लेगा यह निश्चित है।

आज श्रीदादाजी के 'आत्मानिवेदन' का अनावरण हुआ है, औरों को यह प्रकाशित कर रहा है ऐसे समय श्रीगुरूजी के बारे में अनगिनत यादें दिल को व्याकुल कर रही हैं। ऐसे प्रेममय, ज्ञानी तथा अवतारी गुरू का सहवास और कृपाशीश का लाभ हो जाना मतलब ''काय पुण्य मी केले नकळे अवधूत भेटला'' (न जाने मैने क्या पुण्य किया कि अवधुत जी मिले) यह कहना है। इस परम गुरू के मिलन का वर्णन सिर्फ श्रीगुरू ही कर सकते है इसलिए श्रीपंत महाराजजी के शब्दों में ही गुरू भेंट और गुरू महिमा का वर्णन नीचे कर रहा हूँ।

''सद्गुरू का मिलना बहुत ही कठिन है। अपार पूर्व सुकृत के बिना गुरूजी से मिलन नहीं हो पाता। तराजू के एक पल्ले में अनंत ब्रह्माण्ड रखें और दूसरे पल्ले में दर्शन लाभ रखकर अगर तौला गया तो दर्शन लाभ का पल्ला ही भारी रहेगा, अचल और स्थिर रहेगा। सद्गुरू दर्शन महिमा ऐसा है। सद्गुरूदर्शन दिन यह अनंत जन्मों का एक सुदिन पर्वकाल और दिव्ययोग घटिका है। सद्गुरूदर्शन ही बुद्धि सूर्य का उत्तरायण, स्वर्गद्वार का, मुक्तिद्वार का उद्घाटन तथा भाग्योदय महायोग है। सभी तीर्थयात्राएं, सभी व्रत, सभी साधना, सभी उपासना, सभी जप–तप–अध्ययन, सभी सत्कर्म, सभी परोपकार ये एक ही समय, एक ही क्षण में सद्गुरू दर्शन योग से परिपूर्ण हो सकते है। 'काशीक्षेत्रं तन्निवासं जान्हवी चरणोंदकम्' इस वचन

की सिद्धता सद्‌गुरू दर्शन से सार्थ होती है। इसके अलावा और कोई श्रेष्ठ लाभ हो ही नही सकता। 'धन्य दर्शने जाहलो। अन्य सर्व विसरलो'।। (श्री सदगुरू के दर्शन से धन्य होकर अन्य सब भूल गया हूँ) विभिन्न ग्रंथों का पाठ पूरी तरह कर लेने पर भी इन्सान अपने मन के प्रवाह जाल में फँसा रहता है, मन तथा शब्द के आगे वह नहीं जा सकता। तभी उसे हाथ देकर, मोक्ष द्वार खोलकर, उन्मन मंदिर तक उठाकर, सायुज्य अवस्था का लाभ देकर, प्रेमामृतपान कराना यह श्रीसद्‌गुरू लीला ही तो है। यहाँ श्रीगुरू ही की आवश्यकता है। बाकी किसीका, देवाधिदेव का भी जोर यहाँ नहीं चलता। यह अखंड सौभाग्य उपहार सिर्फ श्रीसद्‌गुरू का ही है। यह उसकी सहज लीला है। 'मौज पहा ही सद्‌गुरूघरची। आनंदाची स्थिति हो साची'। (श्री सदगुरू जी के घर की यह मौज देखिए कि वह सचमुच आनन्दमय स्थिति है) ऐसी गुरू महिमा अपार है।"

आत्मनिवेदन की यह 'नांदी' याने श्रीगुरूजी की गाई हुई गुरू शक्ति की महत्ता है। प्रेरणा, शब्द तथा अर्थ उन्हीं के हैं। उनकी सेवा का यह मौका उन्हीने दिया है जिसके लिए मैं उनका काफी उपकृत हूँ। इसी तरह सेवा करने के अवसर बार बार और निरंतर मुझे मिले यह उनके चरणों में प्रार्थना ! ' हेचि ज्ञान देगा देवा, तुझा विसर न व्हावा (हे ईश्वर यही ज्ञान दीजिए कि कभी भी आपको भूल नहीं पाए) ' ऐसी याचना हर जन्म में श्रीगुरू के सामने करने वाला,

एक विनम्र सेवक

श्री मंगलाचरण

स जयति सिंधुरवदनो देवो यत्पादपंकजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम्।।1।।

या कुन्देंदुतुषारहार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदंडमंडितकरा या श्वेतपद्मासना।।

या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वंदिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाडयापहा ।।2।।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वंदे परमानंद माधवम्।।3।।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।4।।

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानंदं कृष्णं वंदे जगद्गुरूम्।।5।।

गुरूर्ब्रह्मा गुरूविष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।6।।

श्रोता वक्ता श्रीपांडुरंगः समर्थः।
पुंडलीकवरदा हरि विठ्ठल।
पार्वतीपते हर हर महादेव।
सीताकांतस्मरण जय जय राम।।

सच्चिदानंद सद्गुरू साईनाथ महाराज की जय।।
श्री गुरूदेव दत्त – सदानंदाचा येळकोट।।
सच्चिदानंद सद्गुरू श्रीपंतमहाराज की जय।।
श्री गुरूदेव दत्त।।
श्री सद्गुरूनाथ दादामहाराज की जय।।
श्री गुरूदेव दत्त।।

श्री गणेश वंदना - श्री सरस्वती वंदना

श्री गणेशायनमः। ॐ नमो जी आद्या । वेदप्रतिपाद्या
जय जय स्वसंवेद्या । आत्मरूपा ।।
देवा तूंचि गणेशु । सकलमतिप्रकाशु । म्हणे निवृत्तिदासु ।
अवधारिजो जी।। अकार चरणयुगुल । उकार उदर विशाल ।
मकार महामंडल। मस्तकाकारे ।। हे तिन्ही एकवटले । तेथ
शब्दब्रह्म प्रगटले । ते मियां श्रीगुरूकृपा नमिले। आदिबीज ।।
आता अभिनववाग्विलासिनी । जे चातुयार्थकलाकामिनी । ते श्रीशारदा
विश्वमोहिनी । नमिली मियां ।।

।। पसायदान ।।

आता विश्वात्मके देवे । येणे वाग्यज्ञे तोषावे । तोषोनि मज द्यावे । पसायदान हे ।। जे खळांची व्यंकटी सांडो । तया सत्कर्मी रती वाढो । भूतां परस्परे पडो । मैत्र जीवाचे ।। दुरिताचे तिमिर जावो । विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो । जो जे वांछील तो ते लाहो । प्राणिजात ।। वर्षत सकळमंगळी । ईश्वरनिष्ठांची मांदियाळी । अनवरत भूमंडळी । भेटतु भूतां ।। चलां कल्पतरूंचे आरव । चेतानाचिंतामणीचे गाव। बोलते जे अर्णव । पीयूषाचे ।। चंद्रमे जे अलांछन । मार्तंड जे तापहीन । ते सर्वाही सदा सज्जन । सोयरे होतु ।। किंबहुना सर्वसुखी । पूर्ण होऊनि तिही लोकी। भजिजो आदिपुरूखी । अखंडित ।। आणि ग्रंथोपजीविये ।, विशेषी लोकी इये । दृष्टादृष्ट विजये । होआवे जी ।। तेथ म्हणे श्री विश्वशरावो । हा होईल दान पसावो । येणे वरे ज्ञानदेवो । सुखिया झाला ।

।।शुभं भवतु।।

।।ॐ।।

दैनंदिन प्रार्थना

हे भगवान! हमारे परिवार के उद्धार के लिए जो महान विभूतियां स्वयं कष्ट सहकर भी हर पल जूझ रही हैं, उनके उपदेशों तथा आदेशानुसार हमारा आचरण पवित्र हो, ऐसी कृपा कीजिये।

अब तक हमारे द्वारा किये गये पापों तथा प्रमादों की पुनरावृत्ति न हो।

विकट, आर्थिक तथा अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण परेशान होकर तथा क्षुद्र मनोविकारों के आधीन होकर, अथवा संकुचित विचारों से वशीभूत होकर, हमारे मन में आलस्य अथवा अज्ञानवश उनके प्रति अयोग्य विचार आये हों, अथवा अयोग्य विचार हमारे मुंह से निकले हों, अथवा उनके आदेशों के विपरीत कोई भी कार्य हुआ हो तो उसके लिए, उन सबके प्रति मैं आपकी तथा उन सबकी निस्पृह भाव से क्षमा चाहता/चाहती हूँ।

हमारे परिवार में सदा सुख, शान्ति, सन्तोष तथा एक दूसरे के प्रति ममता और आनन्द हमेशा बना रहे।

उसी प्रकार आपके प्रति अटूट श्रद्धा हम सबके हृदय में सदा जागृत रहे।

उन्होंने सोचा हुआ महान कार्य, हम अपने शेष जीवन में पूरा करने में यशस्वी हो सकें, तथा अन्य भी अनेक सत्कृत्य करते रहें। इस प्रकार वे महान, दिव्य आलौकिक विभूतियां हम पर सदा खुश रहें तथा हमारे परिवार पर आपकी भी कृपादृष्टि इसी तरह बनी रहे।

हे प्रभु! हमारे परिवार के सभी सदस्यों को अपना–अपना कर्तव्य–कर्म निभाने की बुद्धि दीजिये।

पूर्व जन्मों के सत्कर्मों के अनुसार यद्यपि हममें से कुछ व्यक्ति आज सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, फिर भी "अगले जन्मों की चिन्ता मनुष्य को इसी जन्म में करनी चाहिए" अपने इस पवित्रवचन से आपने संसार को जो पाठ पढ़ाया है, उसके अनुसार व उपकारों का बदला अपकारों से न हो ऐसी बुद्धि, हे दया निधान, परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को आप दीजिए, केवल इतनी ही दुआ, आपके चरणों में अत्यन्त दीन भाव से माँग रहा/रही हूँ।

।।शुभं भवतु।।

||श्री शक्तिपीठ प्रार्थना||

आम्ही गुरूभक्त श्री जगद्गुरू–साईनाथ महाराज, आणि श्रीसद्गुरूनाथ दादा महाराज यांचे चरणी भक्तिभावनेने आज अशी प्रार्थना करीत आहोत कि आपण कृपावंत होऊन, जगत्कल्याणा–साठी, "गुरू शक्तिपीठाची स्थापना" करून दिली आहे, त्या शक्तिपीठाची सेवा विनम्रभावनेने, श्रद्धा, भक्ति, निरपेक्ष, निस्वार्थ बुद्धीने करून, जे कोणी ह्या जगतात दुःखी कष्टी आहेत त्यांची सेवा काया वाचा मनाने करू.

जगतात आम्हां मानवांना प्राप्त झालेल्या जन्मातील कर्तव्याची जाणीव व्हावी व जगतात सर्व मानवाला सुख, शांति, समाधानाचा लाभ होऊन, जगतात मानवी धर्माचा उदय होऊन, मानवी जीवन ईश्वरमय व्हावे, अशी आपल्या चरणी प्रार्थना.

||शुभं भवतु||

आत्मनिवेदन– वंदनीय दादाजी

1. जीवन और जीवन का आरम्भ

आज इस छह फरवरी को मेरे चौसठ साल पूरे हुए। मेरे जन्म दिन के इस अवसर पर सारे भक्तभाविकों ने षुभ इच्छा पूर्वक मुझे सम्मानित किया है। लेकिन, "मेरे जीवन का अर्थ क्या है ? मेरा जीवन कैसा था?" इस बात का ज्ञान अगर लोगों को हुआ तो मेरा यह जीवन भविष्य में हर एक के लिए उपयुक्त होगा। सिंर्फ मेरी स्तुति करने से मनुष्य को लाभ नहीं होगा। मनुष्य को जन्म के बाद स्वयं का जीवन व्यतीत करने के लिए 'धन' की आवष्यकता होती है पर उसके लिए 'षिक्षा' की आवष्यकता होती है। जीवन के कर्त्तव्य निभाने के लिए एक ओर 'ज्ञान' और दूसरी ओर 'षिक्षा' है, षिक्षा से जीवन बिताना आसान होता है लेकिन षिक्षा का उपयोग यदि सिर्फ खाने पीने के लिए ही किया गया तो," जीवन क्यूँ प्राप्त हुआ है "इस बात का ज्ञान किसी को भी होता नहीं है। ज्ञान के कारण मनुष्य के मन में स्वयं के जन्म का कारण खोजने के बारे में विचार आएंगे। इन विचारों से मनुष्य को उसके जन्म 'कारण' का ज्ञान होगा। 'जन्म कारण' ज्ञात होने से मनुष्य उसके लिए तन–मन, धन से कार्य करेगा। इस तरह कार्य करने से मनुष्य अपने स्वयं के जीवन का मूल्य समझेगा और जीवन का मूल्य समझने पर, जीवन का उपयोग हर क्षण कार्य के लिए ही करेगा, जिससे उसके जीवन का उदय होगा। जन्म के बाद केवल पेट भरना, धन कमाना और प्रतिष्ठा प्राप्त करना इनके अलावा 'जीवन सार्थक करना' ही जीवन है, इसका बोध होना आवष्यक है और वह बोध इस जीवन में प्राप्त करने के लिए गुरुकृपा की आवष्यकता है। गुरुप्राप्ति होने से इन समस्याओं का हल आसानी से होता है। इसलिए बारह साल की उम्र में केवल षिक्षा प्राप्त करने के अलावा, ' तत्वज्ञान' का लाभ कैसे प्राप्त होगा ? इसकी प्रतीक्षा मैं करने लगा।

जीवनारंभ में जिनसे मुलाकात हुई उन्हें उस समय मैं ' अपना गुरु' नहीं कह सकता था क्योंकि हमारी मुलाकात में वे जो 'ज्ञान' देते थे वह

'ज्ञान' होकर भी उस 'ज्ञान' को समझने की शक्ति मुझ में न होने के कारण उनके शब्दों की महत्ता का बोध मुझे पचास साल के बाद हुआ। अब मैं उन्हें ' मेरे गुरू ' कह सकता हूँ। ' गुरू ' का अर्थ है, "जीवन में 'स्थित्यंतर 'होना"। केवल शब्दों से, 'किसी को गुरू मानना' यह नहीं हो सकता है। उस समय मेरी उम्र कम होने के कारण गुरू से मिल कर भी गुरू' शब्द का अर्थ मैं नहीं समझ सका था तथा उस समय, "पिताजी की आज्ञा का पालन करना" इसके अलावा दूसरा कोई कर्त्तव्य मैं नहीं मानता था। लेकिन मेरे पिताजी को यह पूरा विष्वास था कि जिस गुरू की सेवा मैं कर रहा हूँ वह कभी व्यर्थ नहीं जाएगी। बाद में मेरे गुरू के परलोक गमन के बाद मुझे ऐसा लगने लगा कि जीवन में अब मैं अकेला हो गया हूँ। मेरे जीवन का जो आधार था, वह आधार अब नहीं है! ऐसी स्थिति में जब दिन बीत रहे थे तब ' श्रीभैरवनाथजी' का मेरे पिताजी को दृष्टान्त हुआ कि "मैं अंधेरे में हूँ और प्रकाष में आना चाहता हूँ।" श्रीभैरवनाथ जी की इस आज्ञा से मेरे पिताजी ने मुझे सचेत किया और चैत्र पूर्णिमा के दिन वे मुझे पहाड़ पर श्रीभैरवनाथजी के मंदिर ले गए। उस दिन पिताजी ने मंदिर में तेल का दिया जलाकर प्रकाष किया। फिर मुझे आगे बुला कर कहा "आज से तुम यहाँ हर रोज नियम से आकर दिया जला कर प्रकाष करो। "इस नियम के अनुसार मैं हर रोज श्रीभैरवनाथजी के मंदिर जाकर वहाँ दिया जलाने लगा। लेकिन तब 'प्रकाष करो' इस आज्ञा का मुझे बोध नहीं हुआ था। 'श्रीभैरवनाथजी का स्थान कितना पवित्र और स्वयंभू है ' : इसकी अनुभूति मुझे एक पूरनमासी को मिली। उस दिन सुबह पूजा की सामग्री लेकर श्री रामभाऊ (छोटा भाई) के साथ मैं श्रीभैरवनाथजी के मंदिर उनके दर्षन करने गया था। तब धीरे धीरे पहाड़ चढ़ते समय हमें सीटी की आवाज आई और बाद में हमें सामने एक दृष्य दिखाई दिया, वह देख कर, डर कर हमने वहीं साष्टाँग प्रणाम किया तब सीटी की आवाज बंद हुई। हमने वहाँ देखा कि वहाँ साक्षात् श्रीषेषनाथ, श्रीभैरवनाथ जी के पास बैठे है। यह देखा हुआ दृष्य चमत्कार था या सत्य, इसके बारे में मैं बहुत दिन सोचता रहा क्योंकि उस दिन से मुझे कोई अलग ही अनुभव हो रहा था। इस अनुभव के बारे में किसे पूछें यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। आखिरकार मैंने यह संपूर्ण दृष्य मेरे पिताजी को बता दिया तब

पिताजी ने कहा कि, 'श्रीषेषनागजी का दर्षन यह कोई आभास या चमत्कार नहीं हैं, बल्कि श्रीषेषनागजी ने तुम्हें प्रत्यक्ष दर्षन दिए है। इस घटना से 'ईष्वर है',यह मेरा विष्वास दृढ़ हुआ और मैं सौ प्रतिषत 'आस्तिक 'हुआ। लेकिन आगे के जीवन में ऐसे दृष्टान्त और चमत्कार देख कर मैं केवल भगवान पर भरोसा करके चुप नही बैठा रहा, बल्कि मैंने अपना यह कर्तव्य समझ लिया कि, "ये घटनाएँ क्या है? उनके पीछे क्या कारण है यह खोज कर उनके बारे में संसार को बताना यह मेरा इष्ट कर्त्तव्य है और इन घटनाओं के पीछे का शास्त्रीय कारण ईष्वर की कृपा से ही खोजना है, ऐसा मैने संकल्प किया। इस घटना से मुझे ईष्वर पर पूरा भरोसा हुआ लेकिन जिन्हें मेरे पिताजी मानते थे (श्रीतेलीमहाराज जी) वे सामान्य दिखते हुए भी पिताजी उन्हें असामान्य मानते हैं, यह मैं कैसे मान लेता?

एक दिन जब श्रीतेलीमहाराजजी की और मेरे पिताजी की रास्ते में भेंट हुई तब उन्होंने मेरे पिताजी को बुला कर कहा "मुझे खाना खिलाओ"। तब पिताजी ने तुरंत घर आकर मेरी माताजी से खाना बनाने को कहा। मेरी माताजी ने ज्वार की रोटी और मेथी की सब्जी बना कर खाने के डिब्बे में दी। पिताजी वह खाने का डिब्बा लेकर चल पडें। तब तक श्रीतेलीमहाराजजी अपने घर गए थे तो पिताजी खाने का डिब्बा लेकर उनके घर गए तो श्रीतेलीमहाराजजी ने उनसे कहा "मुझे खाना चाहिए लेकिन वह तुम से नहीं चाहिए। तुम अपने बड़े बेटे को मेरे पास भेज दो। उसी के साथ खाना भेजो। नहीं तो मेरे लिए खाना मत भेजो। " पिताजी खाना लेकर घर वापिस आए और उन्होंने मुझसे पूछा "क्या तुम श्रीतेलीमहाराजजी को जानते हो ?" तब मैने कहा, " हाँ जानता हूँ "। तब पिताजी ने मुझ से कहा श्रीतेलीमहाराजजी ने यह खाने का डिब्बा लेकर तुम्हें ही बुलाया है " नही तो मुझे खाना नहीं चाहिए" ऐसा उन्होंने कहा है। इसलिए तुम यह खाने का डिब्बा उन्हें दे आओ"। उनकी आज्ञानुसार मैं वह खाने का डिब्बा लेकर श्रीतेलीमहाराजजी के घर गया। मुझे देख कर उन्होंने कहा " यह खाने का डिब्बा ऊपर लकडी के तख्ते पर रखो और वहाँ रखा खाने का डिब्बा यहाँ लाओ "। मैने उनके कहने

के अनुसार किया। उस दिन उन्होंने वह डिब्बा नहीं खोला और इसके बाद जो भी खाने का डिब्बा मैं उनके घर ले जाता था वह उन्होंने उसी दिन कभी नहीं खाया। इसी प्रकार हमेषा होता रहा। फिर वार्षिक इम्तिहान के दिन आए। खाने का डिब्बा ले जाने मे मेरा आधा दिन गुजरता था इसलिए इम्तिहान की पढ़ाई के लिए पर्याप्त समय नहीं बचता था। इसलिये एंक दिन मैने धीरज बांधकर महाराजजी से पूछा, "बाबा अब मेरा इम्तिहान है और पढ़ाई के लिए समय नहीं है तो मैं क्या करुँ ? "पिछले साल सत्तासी प्रतिषत अंक हासिल कर मैं इस कक्षा में दाखिल हुआ हूँ, लेकिन इस साल क्या होगा ?" तब उन्होनें मेरे बाल पकड़ कर कहा "तुम पढ़ कर दुनिया को आग मत लगाओं। दुनिया को जो आग लगी है, वह बुझाओ" । उनके इस कथन का मतलब मेरी समझ में नहीं आया। फिर से इम्तिहान हुए और नतीजा निकला कि, मैं अनुत्तीर्ण (फेल) हुआ। मैं बहुत ही दुखी हुआ। पिताजी बोले "फिर से पढ़ाई करो"। मैं पढ़ने लगा तब महाराजजी ने कहा "पढो, पढों मैं देखता हूँ कि तुम कैसे आग लगाते हो"। फिर से इम्तिहान हुए और मैं फेल हो गया, मेरा धीरज टूट गया आगे क्या करूं मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं घर का बड़ा लड़का, पढूंगा नहीं तो काम कैसे करूंगा, इन विचारों से मैं बहुत परेषान हुआ। आखिर मैंने पिताजी से पूछा कि, "मैं आगे क्या करूँ?" तब पिताजी ने कहा, "महाराजजी की आज्ञा के अनुसार करो।" मैं यह देख रहा था कि सब लोग अपने बच्चों की पढाई के यष प्राप्ति के लिए महाराजजी से आषीर्वाद लेते हैं और मेरे इम्तिहान के समय जो उन्होने कहा, "पढ़ो पढ़ो मैं देखता हूँ कि तुम कैसे आग लगाते हो?" यह मैने सुना था। आखिरकार महाराजजी के पास जाकर यह सारी हकीकत मैने बयान की और पूछा, 'अब भविष्य में मैं क्या करूँ'? तब मेरी ओर देखते हुए महाराजजी ने कहा, "तुम स्वयं ईष्वर होकर भी क्यों रो रहे हो? जन्म लेने वाला हर मनुष्य कर्म के कारण रोता है। तुम तो ईष्वर हो, लेकिन यह अनुभव तुम्हें मेरे जाने के पष्चात् ही होगा। मैं उस समय नहीं रहूंगा। तुम ज्ञान प्राप्त करो और तुम्हें श्रीभैरवनाथजी ने जो कहा है' प्रकाष करो' उसे ब्रह्मवाक्य समझ कर उस पर गौर करो। उसकी तह तक मत जाओ, नही तो डूब कर मर जाओगे।" उस समय मेरी समझ में आया कि, "षब्द के दो अर्थ होते है,

एक व्यवहारिक और दूसरा तात्विक।" फिर मैनें ही यह विचार किया कि, "जो संपूर्ण दुनिया का भविष्य जानते हैं वे मेरा भविष्य बताना नहीं चाहते हैं बल्कि वे मेरा भवितव्य बनाना चाहते हैं तो उन्हें मेरा भवितव्य बनाने दो। "यह ज्ञान प्राप्त होते ही मेरी पढ़ाई के बारे में उनकी आज्ञा को स्वीकार करके मैं चुप बैठा रहा और नित्य नियम से श्रीभैरवनाथजी की सेवा करता रहा। अब पढ़ाई बंद हो चुकी थी इसलिए पर्याप्त समय था। तब पिताजी ने कहा, 'मन को स्थिरता प्राप्त हो इसलिए और मन पर काबू पाने के लिए रोज सुबह गुरूचरित्र की पोथी का पाठ करो। 'उनकी यह आज्ञा वंदनीय मानकर, एक शुभ दिन पिताजी के हाथो से श्रीगुरूचरित्र की पोथी लेकर मैने उसके पाठ का प्रारम्भ किया। फिर एक दिन जब मैं श्रीभैरवनाथजी के मंदिर गया था, तब वहाँ एक चरवाहा मेरे बारे में पूछताछ करने लगा। उसने मुझे कहा कि यहाँ से एक फर्लांग की दूरी पर पानी का उन्मुक्त झरना है। तुम इस मंदिर में केवल तेल का दिया क्यों जलाते हो ? उस झरने में स्नान करके यहाँ आओ और फिर देखो ईष्वर तुमसे क्या बातें करते हैं। उस समय चरवाहे के कहने पर मैने गौर नहीं किया। बाद में वह चरवाहा मुझे कभी नजर नहीं आया। फिर एक दिन मैने स्वयं ही उसके बताए झरने की तलाष की, तो मंदिर से एक फर्लांग की दूरी पर ही वह नजर आया। पहले दिन मैने झरने का पानी दोनो हाथों में लेकर पी लिया तो उससे मुझे ताजगी का अनुभव हुआ और बहुत अच्छा लगा। उसके बाद जब मंदिर में जाकर मैने दिया जलाया तो उस दिन मुझे दिये का प्रकाष अलग सा लगा मानो सितारों की रोषनी हो। उसी रात मुझे लगा कि श्रीभैरवनाथजी ने 'मुझे रोषनी में लाओ' यह कह कर जो दृष्टान्त, मेरे पिताजी को दिया था, उस दृष्टान्त का आज मुझे अनुभव प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार मेरी श्रीभैरवनाथजी की सेवा जारी थी। एक दिन शाम को उनकी पूजा करके जब मैं आंखे बंद कर ध्यान करने लगा तब मुझे अचानक एक आवाज सुनाई दी। मैं तुरन्त वहाँ से उठ कर अपने कपड़े हाथ में लेकर भागता हुआ घर आया। घर आकर मैने पिताजी से कहा, 'अब आप मुझे श्रीभैरवनाथजी की सेवा करने मत भेजिए। आज शाम ध्यान के समय मैने वहाँ भूत की आवाज सुनी है। 'पिताजी ने मेरा यह कहना

शांति से सुन लिया और वे हँसने लगे। फिर उन्होंने मुझसे कहा, ''श्रीभैरवनाथजी का स्थान पवित्र और स्वयंभू है। वहाँ भूत नहीं आ सकते। तुम्हें कुछ गलत आभास हुआ होगा। चलो मैं तुम्हारे साथ वहाँ चलता हूँ। ''हम दोनो पहाड़ी पर गए, वहाँ सुनसान था। स्नान करके, श्रीभैरवनाथजी की पूजा करके जब हम दोनो वहाँ ध्यान करने लगे तो फिर से वहीं आवाज सुनाई दी। मैं फिर डर गया लेकिन पिताजी साथ थे, तब उन्होंने कहा, ''बाबा, यह आवाज ध्यान से सुनो। यह भूत की आवाज नहीं है।'' पिताजी का यह कहना सुनकर मैं शांति से वह आवाज सुनने लगा। तब पिताजी ने कहा, इस आवाज को 'सिंहनाद' कहते है। जब ईष्वर प्रसन्न होते हैं तब ऐसा नाद निर्माण होता है। यह केवल ध्वनि नहीं है। यह कार है। तुम्हारे जन्म के कारण का अब मुझे पता चला है। चलो, अब हम शांत मन से घर चलते हैं। इस आवाज से डर कर तुमने जो इसे भूत की आवाज कहा वह अपनी जगह सही ही है। जिस प्रकार मनुष्य की मृत्यु के बाद अगर उसकी इच्छा वासना बाकी रही तो उसकी आत्मा उस इच्छा वासना के कारण इस संसार में भटकती रहती है, उसी प्रकार भूतकाल में यदि कोई अच्छी घटना हुई हो तो उस घटना की पुनरावृत्ति हो, इसलिए निसर्ग भी हम मानवों को उस घटना का अहसास करा देता है लेकिन ज्ञान के अभाव के कारण मनुष्य निसर्ग की कृपा पाने के काबिल नहीं होता है। यदि यह आवाज 'भूत की ही है' इस सोच से तुम फिर से श्रीभैरवनाथजी के पास नहीं आते तो तुम भी इस पवित्र आवाज का लाभ खो बैठते। अब तुम्हारा भय नष्ट हुआ है। भविष्य में और क्या क्या लाभ होगा इस पर गौर करो संसार में सब लोग भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीन कालों पर भरोसा रख कर जीते है लेकिन जिनसे निष्चित रूप से लाभ होगा, ऐसे ईष्वर पर वे भरोसा नहीं करते हैं।''

उन दिनों पाठषाला में मैने संगीत विषय की जो षिक्षा ली थी उसके कारण मुझे श्रीभैरवनाथजी के मंदिर में सुनी ध्वनि का ज्ञान हो सका। आमतौर पर संगीत में नीचे के 'सा' से उपर के 'सा' तक सात सुरो का एक सप्तक होता है। उसी संथा पद्धति से मुझे एक साल तक कार सिखाया गया और उसके बाद मैं वहीं साधना नित्य नियम से करने लगा।

मेरी इस उपासना में मुझे कोई देवी देवता या ईष्वर के अवतारी पुरूष जिन्हें 'गुरू' माना गया है, उनकी आवष्यकता नहीं हुई। प्रो कार साधना मुझे दी गई उस साधना का पूर्णत्व मुझे प्राप्त हुआ। बाद में चरितार्थ के लिए कुछ धन प्राप्त करने की इच्छा से मैं पूना आया। पूना आकर मैने नौकरी प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किए पर नौकरी नहीं मिली। लेकिन "इस दौरान मैं जिन लोगों से मिला था वे लोग कुछ समय पष्चात् स्वयं अपने व्यवसाय के भविष्य के बारे में सलाह लेने मेरे पास आए" यह बिचार करने योग्य है।

इन प्रयत्नों से एक अनुभव निष्चित हुआ कि यदि प्रयत्न करके भी यष प्राप्ति नहीं होती है, तो इसका मतलब, "उसमें परमेष्वर की इच्छा नहीं है"। इस विचार से चुप बैठने में ही हमारा हित है।

2. मिलेटरी में नौकरी, श्रीभैरवनाथजी का आदेष, परम पूज्य बाबा की सेवा, संचार अवस्था

उस समय दूसरा जागतिक महायुद्ध शुरू हुआ था। महँगाई धीरे धीरे बढ़ रही थी। मैं जो ड्रॉईंग का काम कर रहा था उसकी सामग्री भी महँगी हुई थी और उसके लिए आवष्यक चीजें बाजार से गायब हो रही थी। इसलिए सोचता था कि आगे क्या करें ? वहीं विचार करने के लिए एक दिन उठ कर मैं विठ्ठलवाड़ी गया और पूरा दिन वहाँ बैठा रहा। फिर भी कोई निष्चित विचार नहीं कर पाया। आखिर मैने यह तय किया कि मैं मिलटरी में नौकरी करूंगा। यहाँ खाली बैठने के बजाय मिलटरी में नौकरी भी होगी और बाहर की दुनिया भी देख सकूँगा। ऐसा विचार मैंने किया लेकिन फिर, 'न जाने आगे क्या होगा'? यह विचार मुझे पीछे खींचने लगा। श्रीभैरवनाथजी ने जो कार साधना सिखाई है उसका लाभ कैसे होगा ? और भविष्य में यदि मैं यह साधना नहीं कर पाया तो दुनिया को उसका लाभ मैं कैसे दे सकूंगा ? एक ओर प्रपंच और दूसरी ओर परमार्थ ऐसी मेरी अवस्था हुई। उन दिनों मैं अपने मामाजी के साथ रहता था। उन्हें भी मैने इस विषय के बारे में पूछा लेकिन वे भी क्या कहेंगे ? आखिर ईष्वर की इच्छानुसार ही सब होगा इस विचार से मैने मिलटरी की नौकरी स्वीकार कर ली।

उस समय मिलटरी की नौकरी में भर्ती होने वालों में मैं भी एक था। वहाँ मिलटरी का एक उच्च अधिकारी हर एक को यह पूछ रहा था कि 'तुम्हें क्या काम आता है ? ' जब यह सवाल उसने मुझसे पूछा तब मैने कहा 'मुझे मोटर का काम आता है'। फिर मुझे परीक्षा के लिए वर्कषॉप भेजा गया। वहां वर्कषॉप में मैने शाम तक अलग अलग काम कर दिखाए। मेरा वह काम देखकर दूसरे दिन मुझे यह बताया गया, "तुम छह महिने के वर्कषॉप के प्रषिक्षण के लिये चुने गए हो। छह महिने के प्रषिक्षण के बाद तुम्हें दर्जा (ग्रेड) और श्रेणी (रैंक) दी जाएगी"। उसके अनुसार छह

महिने के प्रषिक्षण के बाद मेरी निरीक्षक (सुपरवाइजर) के पद के लिए नियुक्ति की गई और मिलटरी की नौकरी में वारन्ट ऑफिसर–II इस पद पर मेरी पदोन्नति हुई। वर्कषॉप में जिस काम के लिए मेरी परीक्षा हुई थी वह मोटर का काम, मैं मेरे पिताजी के मोटर वर्कषॉप में कभी कभी देखा करता था। वहीं काम मिलटरी की नौकरी में देख कर पहले तो मैं इस तरह निराष हुआ कि मुझे लगा जैसे एक तरफ कुंआँ और दूसरी तरफ खाई है। अब कैसे जिया जाए ? यह मैं सोचता रहता था। लेकिन हमारे साथ ईष्वर होते ही हैं। उन्ही के कारण मिलटरी की नौकरी के पहले आठ ही दिनों में मुझे इतना सम्मान प्राप्त हुआ। वहाँ के वरिष्ठ अधिकारियों ने जब मुझे पूछा था कि "तुम्हें क्या काम आता है" तब उस समय मेरे मुँह से यह निकल गया' मुझे मोटर का काम आता है'। उस समय यह कहने की सद्‌बुद्धि मुझे आई इसलिए ही आगे का कार्य हुआ। पांच साल तक मैं मिलटरी की नौकरी करता रहा। नौकरी में काम के अलावा जो खाली समय था उस समय मैं साधना करता था। उस समय वैसे तो मेरी उम्र कम नहीं थी लेकिन इस मिलटरी की नौकरी में पूरी दुनिया से ताल्लुक छूट गया था। पांच साल, मैं हिन्दुस्तान से बाहर था। तब वहां शांति से विचार करके मैं आगे का मार्ग निष्चित कर सका। उस समय यदि मैं हिन्दुस्तान में सैर करने के बारे में सोचता तो उसके लिए भी पर्याप्त पैसे मेरे पास नहीं थे। लेकिन मिलिटरी की नौकरी में मुझे बगदाद, कर्बला जैसे पवित्र स्थानों के दर्षन हुए। बाद में हिन्दुस्तान लौटने पर मैंने मिलिटरी की नौकरी छोड़ दी और फिर से घर चला गया। उस समय मेरे पिताजी बहुत थक गए थे। उन्होंने मुझसे कहा, "अब तुम कहीं मत जाओ। जो साधना तुम्हें दी गई है वह शुरू करो"। तब मैने कहा," पिछले पांच साल से हर रोज सोने के पहले मैं वह साधना कर रहा हूँ। शायद एकाध दफा छोड़ कर मेरी अखण्ड सेवा जारी रही है"। यह सुन कर पिताजी को बहुत संतोष हुआ। उन दिनों जब तक मैं सातारा में था तब तक हर रोज श्रीभैरवनाथजी के दर्षन करने जाता था। फिर मैने नौकरी के लिए पूना जाने की सोच ली। एक दिन जब मैं श्रीभैरवनाथजी के दर्षन करने गया तो मैने आवाज सुनी, 'क्या तुमने परमपूज्य साई बाबा का नाम सुना है?' तो मैने कहा हाँ, सुना है। मेरे इस जवाब के बाद श्रीभैरवनाथजी ने कहा, ' अब तुम भविष्य में

उन्हीं की सेवा करो और उनकी आज्ञा का पालन करो, उसी से भविष्य में तुम्हारा और सब का कल्याण होगा"।

बाद में मैं पूना आया और वहाँ सरकारी नौकरी करने लगा। श्रीभैरवनाथजी की यह आज्ञा थी, "परम पूज्य साईबाबा की सेवा करो"। उनकी इस आज्ञा के अनुसार साईबाबा की छोटी सी तस्वीर लाकर मैने उनकी सेवा शुरू की। उससे मुझे धीरे धीरे आने वाले लोगों के भूतकाल और भविष्यकाल के बारे में ज्ञान होने लगा और यह ज्ञान मुझे देने वाले कौन हैं यह भी मैं समझ सका। इसके लिए किसी भी शास्त्र का आधार मैने नहीं लिया था। उस समय परमपूज्य साईबाबा की सेवा करते समय मेरे मन में यह तीव्र इच्छा थी कि मुझे उनके दर्षन का लाभ हो। एक दिन जब मैं बाबा का पूजन कर रहा था तब मेरा मन एकाग्रचित्त हो गया और मेरी आँखे बंद हो गई। लेकिन इस अवस्था के बारे मे मैं कुछ नहीं समझ सका। इसी अवस्था में कुछ दिन बीत गए, मैं सोचने लगा कि, "क्या मेरी यह अवस्था सत्य है? या मुझे कोई आभास हो रहा है। " वास्तव में मुझे जिस स्थिति का अनुभव हो रहा था वह स्थिति 'आभास' नहीं थी। फिर एक दिन बृहस्पतिवार के दिन शाम की पूजा के बाद मैं वहीं बैठा रहा। वहाँ बैठें बैठे बहुत समय बीत गया फिर भी मुझे लग रहा था कि वहाँ से ना उठूँ। अंदाज से रात के करीब ग्यारह बज चुके होंगे और मैं वहाँ न तो पूरी तरह जागृत और ना ही नींद में ऐसी अवस्था में बैठा था। आज मैं उस अवस्था का बयान नहीं कर सकता हूँ लेकिन वह बड़ा ही अनोखा अनुभव था, यह बात बिल्कुल सच है। उस अवस्था में जब मैं बैठा था, तब मुझे यह अहसास हुआ कि किसी ने मेरे सिर पर हाथ रखा है। वह हाथ कैसा था? वह हाथ बहुत ही मुलायम था और उस हाथ के स्पर्ष से ममता का, मां के प्यार का अनुभव हो रहा था। उस ममता का कोई अलग अर्थ नहीं था। तो "ममता", 'माता' यानि 'गुरू प्रेम' यही उसका अर्थ था। मैं क्या बोलूँ ? यह सब मैं भूल गया था और अंक्सर ऐसा ही होता है। उस समय बाबा से मैने इतना ही माँगा कि, "मेरे हाथो दुनिया की पूरी सेवा होने दीजिए। आप मेरे सद्गुरू है। मुझे यह आस लगी है कि भविष्य में यह संसार कैसे सुखी होगा?" श्रीभैरवनाथजी ने उस समय मुझे कहा था कि

इस संसार के सुख की चाबी आपके नामस्मरण में है। मैं तो अभी तक आपका स्मरण या नामस्मरण भी नहीं कर सकता हूँ। श्रीभैरवनाथजी ने कहा है कि भविष्य में ये संसारी लोग आपके बिना नहीं जी सकेंगे। इसलिए आप मुझे जैसी आज्ञा करेंगें उसी के अनुसार मैं कार्य करूंगा। मुझे पढ़ाई की बहुत इच्छा थी लेकिन तब श्रीतेलीमहाराजजी ने मुझसे जो कहा था कि पढ़कर दुनिया को आग मत लगाओ। दुनिया को लगी आग शांत करो',। वही मेरे लिए वेदान्त है। इसलिए आप मेरे काया वाचा मन को ज्ञान दीजिए। इतनी ही मेरी आपसे प्रार्थना है"। बाबा से इतना कहने के बाद मैं सो गया। सुबह साढ़े पांच बजे मेरी नींद खुली और मुझे ऐसा लगने लगा कि इस दुनिया मे मैं जिंदा होकर भी जिंदा ना होने के बराबर हूँ। मतलब इस दुनिया का अस्तित्व तो है लेकिन इसमें कुछ कमी है और क्या यह कमी पूरी होगी या जगत के अंत तक ऐसी ही बढ़ती जाएगी इस चिंता से मै और मन लगाकर परमपूज्य बाबा की सेवा करने लगा। बाद में मन में अनेक सवाल आने लगे और उनके जवाब भी अपनेआप मिलने लगे फिर भी जिन सवालों के विचार थे उनके बारे में प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होने में बहुत समय बीत गया। इतना ही नही बल्कि उसमें कुछ तप (1 तप यानि बारह साल) बीत गए। उस समय प्रमुख सवाल थे विद्यानाष, धननाष और संतति नाष इन दोषो का निवारण गुरूकृपा से कर सकूंगा या नही? हमेषा यही सवाल मैं बाबा से पूछता था। तो एक दिन बाबा ने कहा,' छोटा मुँह बड़ी बात ऐसा मत करो। उससे बात वैसी की वैसी रहेगी लेकिन तुम्हारा मुँह फट जाएगा। "यह जवाब सुनने के बाद मुझे मेरी गलती का एहसास हुआ। जिन सवालों के बारे में मैं पूछता था, उनकी प्राप्ति हुई थी फिर भी उन सवालों के जवाब समझने की काबलियत मुझमें नहीं थी। इसलिए यथासमय जब उनकी आज्ञा होगी तब उन्हीं की कृपा से इन सवालों के जवाब मेरी समझ में आएंगे। यह सोच कर मैं सेवा करता रहा। उस समय लोगो को "कामकाज" का लाभ हो रहा था। "कामकाज" के लिए आनेवाले भक्तों की संख्या बढ़ती जा रही थी। उस समय ज्यादातर फिल्म कंपनियों के लोग 'कामकाज' के लिए आते थे। इन लोगो के आने जाने से मैं इन लोगो के मोह में बह जाऊंगा या मेरी अपने गुरु पर श्रद्धा स्थिर रहेगी ऐसी परीक्षा का समय था। धन, नषा, सोना और

सुंदरी ये सब मोह उस समय हाथ जोड़ कर मेरे सामने खड़े थे। क्या किया जाए ? इसका निष्चय करना मुष्किल था क्योंकि घर की हालत अत्यन्त कठिन थी। 'घर में एक सप्ताह के राषन के पैसे भी ना होना 'ऐसी स्थिति थी। अगर इन लोगो के सामने मैं हाथ फैलाता तो वे सब परेषानियाँ एक क्षण में दूर हो सकती थी। फिर भी आखिर मैने यह निर्णय लिया कि "यह पैसा कुछ काम आनेवाला नहीं है। गुरू ही सच्चा साधन है और पूर्व जन्म के पुण्यों से ही वह प्राप्त होता है, गुरु के साथ जुड़े रहना यह 'गुरू' का लाभ मुझे प्राप्त हुआ है, केवल पैसों के मोह में 'गुरू' के लाभ से वंचित होना उचित नहीं है।" इसलिए तब मैने यह निर्णय किया कि भूखे रहेंगे लेकिन गुरू से कभी दूर नहीं होंगे। फिर बाद में मैने उन फिल्म कंपनियों के लोगो को मिलना बंद किया। फिर भी वे आते ही रहे। मैं नौकरी करके लोगो का "कामकाज" कर रहा था लेकिन उन्हें मेरे घर में नहीं मिलता था। इस प्रकार दो साल बीत गए। उस समय जिन लोगो से पहचान हुई थी उनसे कार्य का प्रचार हुआ। कार्य के बारे में आए हुए अच्छे अनुभव लोग आकर बताने लगे।

उसी समय की एक घटना है। तब मैं हर शनिवार और इतवार को मुंबई जाता था। मुंबई मे मैं जिनके घर जाता था, उनके घर में काम करने वाला बाबू नाम का एक गुजराती लड़का था। उसके लिए बचपन में उसके माता पिता ने, वहां के देवी से जो मन्नत मांगी थी, उसके बारे में बाबू को कुछ पता नहीं था। बड़ा होने के बाद वह नौकरी के लिए मुंबई आया था। मेरा कमरा साफ करने के लिए जब बाबू मेरे कमरे में आया तब वहां की बाबा की तस्वीर देख कर अचानक गिर पड़ा और जोर से चिल्लाने लगा। उस समय मैं मकान मालिक के स्टूड़ियों में बैठा था। तब उनका दूसरा नौकर दौड़ता हुआ मेरे पास आया और बताने लगा, " बाबू पर भूत सवार हुआ है और वह चिल्ला रहा है तो आप जल्दी वहां चलिए" । मैने जाकर बाबू को देखा तब मुझे पता चला कि उसे भूत बाधा नहीं है, देवता का संचार है। बाबू गुजराती भाषा में बोल रहा था। इसलिए मैने एक गुजराती आदमी को वहाँ बुलाया।

बाबू के माध्यम से बोलने वाले देवता ने कहा, "मैं भूत नहीं हूँ। मैं देवी हूँ। इस बच्चे के माता पिता ने इसके बचपन में ही इसे मुझे अर्पण किया था। इसे गांव में रह कर गांव के लोगो की परेषानियों में उन्हें मार्गदर्षन करना चाहिए लेकिन यह गांव छोड़ कर यहाँ मुंबई चला आया है और किसी नियम का पालन भी नहीं कर रहा है। पहले भी इसके कारण मैने इसे चेतावनी दी थी। इसके बचपन से गांव के लोग इसे 'देवीभक्त' कह कर जानते थे और इसके मार्गदर्षन से गांव के लोगो को लाभ भी हो रहा था। लेकिन बड़ा होने के बाद आज्ञा पालन ना करने के कारण मैने इसका बोलना बंद किया है। यह पहले बोलता था। यह जन्म से गूंगा नही है यह बाद में गूंगा हुआ है और अब केवल बताए हुए काम ही कर सकता है। आज जब यह कमरा साफ करने के लिए यहाँ आया तब यहाँ परमपूज्य बाबा की तस्वीर देख कर, मैने इसके देह में प्रवेष करके ये सब बाते आपको बताई है। अब आप इसे गांव जाने के लिए कहिए। वहाँ अभी भी लोग इसकी राह देख रहे है। लोगों को मार्गदर्षन करने में ही इसका कल्याण है।" इतना कह कर देवी का संचार समाप्त हुआ। फिर मैने जिस गुजराती आदमी को वहाँ बुलाया था, उसे देवी का सब कहना बताया। उसने वह सब गुजराती भाषा में बाबू को समझाया और मुझे कहा कि इस महिने की आखिर में बाबू गांव चला जाएगा ऐसा आष्वासनं उसने मुझे दिया।

उसके अनुसार बाद में बाबू गांव चला गया। गांव में बाबू जब दो महिने रहा तब एक दिन देवी ने उसे कहा, 'तुम तुरंत मुंबई जाकर साईबाबा के भक्त से मिलो। तुम्हारे माध्यम से भक्तों का कल्याण नहीं हो सकता इसलिए मैं तुम्हें मुक्त करना चाहती हूँ। इस नवरात्र के पहले मैं तुम्हें मुक्त कर रही हूँ। "इसलिए बाबू फिर से मुंबई आ गया और वह जिनके यहाँ नौकरी कर रहा था उनको यह सब बताया। उन्होनें मुझे संदेषा भिजवाया कि बाबू मुंबई आया है और उसकी देवी ने आपको बुलाया है। इसलिए मैं मुंबई जाकर जहाँ बाबू पहले रहता था, उनके घर गया, वहाँ जाने के बाद दूसरे दिन सुबह पूजा और आरती की। आरती के बाद देवी का संचार हुआ। मैंने प्रणाम करके पूछा, "क्या कहना है"?

तब देवी ने स्पष्ट शब्दों में यह स्पष्टीकरण दिया, "मै पिछले सौ सालों से बाबू के परिवार मे हूँ और संपूर्ण गांव की देखभाल कर रही हूँ और संपूर्ण गांव के मेरे भक्त बाबू के परिवार की देखभाल करते हैं। लेकिन अब इस परिवार के लोग मेरा सम्मान और सेवा करने के बजाय अपना गांव छोड़ कर धन कमाने के लिए शहर जा रहे हैं। मेरी सेवा करने का श्रेष्ठ मौका उन्हें वंष परंपरा से प्राप्त हुआ है पर उन्हें अब पैसा श्रेष्ठ लगने लगा है। इसलिए मेरी सेवा करने का वंष परंपरा से प्राप्त सम्मान उन्होनें त्याग दिया है। यदि तुम अपने कार्य में मेरी सहायता चाहते हो तो मेरा आषीर्वाद लो। "देवी का यह कहना मैने बड़ी खुषी से स्वीकार किया। उस समय, संचार का मतलब क्या है ? संचार कैसे होता है ? संचार के पीछे क्या शास्त्रीय कारण है ? इसके बारे में मुझे कुछ पता नहीं था। यह घटना ज्येष्ठ महीने में हुई थी। उसके बाद सावन का महीना आया और एक दिन, 'मेरा शरीर कँपकँपाना' शुरू हुआ। मैं सब कुछ भूल गया। मुझे आसपास का दिखाई देना बंद हो गया तब आसपास के लोग कहने लगे कि इनमें संचार हो रहा है। लेकिन उस अवस्था में भी मैं, "उस अवस्था का क्या अर्थ है ?" इसका स्पष्टीकरण खोज रहा था। फिर भी वह अवस्था क्या है ? यह मै उस समय खोज नहीं पाया। आज मैं उस अवस्था का मतलब समझ गया हूँ और किसी के पूछने पर उसका शास्त्रीय कारण बता सकता हूँ। लेकिन उस समय उस अवस्था को समझने की मेरी इच्छा को बाबा से यह जवाब मिला था कि, "सबूर"। इसलिए उस समय जिस अवस्था का मैने अनुभव किया था उसका जवाब मुझे आज मिल रहा है। इसका यह मतलब है कि उस समय भी मेरे उन सवालों के जवाब देने के लिए बाबा असमर्थ नहीं थे। साधक अवस्था में सब कुछ जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। लेकिन एक बार साधक का नामी तत्व यानि गुरू तत्व निष्चित हो जाने के बाद मन में उठे सवालों के जवाब मिलने तक शांत रहना ही साधक के लिए उचित है।

बाद में अधिक सावन का महीना आया। तब प्रत्येक मंगल और शुक्र के दिन मुझ में देवी का वह संचार होता रहा और वहाँ आने वाले भक्त उस संचार से लाभ लेते रहे। लेकिन यह संचार की बात मकान मालिक

को अच्छी नहीं लगी। वे पहले से मुझे जानते थे इसलिए उन्हें लगा कि इन्हें यह संचार अवस्था अचानक कैसे प्राप्त हो गई ? इस विषय के संबंध मे उनके घर व परिवार वालों में बहस होने लगी और उनकी पत्नि और बहू, 'मेरा संचार एक स्वांग है' लोगों को बहकाने का तरीका है "ऐसा खुले आम कहने लगी। अधिक सावन के आखिरी शुक्रवार के दिन जब मुझ में देवी का संचार हुआ तब देवी ने मकान मालिक की पत्नि को बुलाया। वह वहाँ आ तो गयी लेकिन तब वह देवी को प्रणाम करने के लिए तैयार नहीं थी। वहाँ के अन्य लोगो ने उन्हें समझाया, 'यह देवी का संचार है,' लेकिन यदि आपको ऐसा विष्वास नहीं है, तो भी प्रणाम करने में तो कोई हर्ज नहीं है।" तब मकान मालिक की पत्नि ने कहा कि, "मैने आज तक अन्य जगह देवी के संचार देखे है। यह संचार केवल नाटक है, लोगो की भीड़ इकट्ठा करने के लिये एक बहाना है।" उसके ऐसे कहने पर भी देवी ने शांति से उसे कहा "विपत्ती को बुलावा मत दो। मुझे केवल कुंमकुम से टीका लगाओ और क्षमा याचना करो"। तब भी मकान मालिक की पत्नि देवी का संचार मान्य करने के लिए तैयार नही हुई। आखिरकार देवी ने कहा, "क्या तुम मेरी शक्ति को आजमाना चाहती हो ? तीन दिन के अंदर मैं इस घर के आधार को हिला दूँगी।" यह कह कर देवी का संचार समाप्त हुआ। तीसरे ही दिन उस औरत का बेटा गुजर गया। जिस रात को यह घटना हुई उस रात, मैं दूसरे भक्त के घर रहने गया था। मैं बहुत बैचेन हुआ। लगातार इसी घटना के बारे में सोचता रहा कि क्या यह घटना केवल इत्तफाक थी ? यह क्यों और कैसे हुआ है? भविष्य में ऐसी घटना हुई तो क्या करूँगा ? संसार आज नास्तिक विचार में जी रहा है। ईष्वर का अस्तित्व मान्य नहीं करता है। यहाँ सच और झूठ का संभ्रम है। इसमें से रास्ता निकलना बहुत मुष्किल है। अभी तक तो कार्य शुरू भी नहीं हुआ है तो यह संचार! और उसकी प्रखरता भी कितनी तीव्र! यह सब सोचते सोचते मैं रोज सुबह आरती के बाद विट्ठलवाड़ी में जाकर बैठा रहता था। वहाँ मैं यह विचार करता था कि भविष्य में दुनिया को क्या बताना चाहिए? तब एक दिन मुझे दृष्टान्त हुआ, कि "यहाँ से नजदीक बहुचराई देवी का मंदिर है।" तब मैं उस मंदिर में दर्षन करने गया और उसके बाद भी हर रोज वहां बहुचराई देवी के दर्षन करने जाता था। एक दिन

बहुचराई देवी ने मुझे यह आज्ञा दी, "तुम अपनी नित्य साधना में मेरी प्रतिष्ठापना (स्थापना) करो।" इस आज्ञा के अनुसार मैने देवी का प्रतीक (टाक) बनाकर मेरे पूजा स्थान में उसकी प्रतिष्ठापना (स्थापना) की और हर रोज उसका पूजन करने लगा। तब उस संचार के बारे में मेरा जो प्रमुख सवाल था उसका कृपाआषीर्वाद से निवारण हुआ।

3 श्रीक्षेत्र औदुंबर में सेवा

लोगों का 'कामकाज' हो रहा था। लेकिन जिस प्रमुख सवाल के बारे में परमपूज्य बाबा से मैने पूछा था वह सवाल और उसका निराकरण वैसाही बाकी था। एक दिन परमपूज्य बाबा ने मुझसे कहा, "जो सवाल तुमने मुझसे पूछा था उस सवाल के संबंध में मेरा आशीर्वाद है। लेकिन उसके लिए तुम्हें साधना करना आवश्यक है। इसलिए इस पर गौर करो। गुरू मार्ग में एक बार उठाया कदम पत्थर की लकीर जैसा होता है, उसके अनुसार चलना आवश्यक होता है। नही तो आज हाँ कहोगे और बाद में कहोगे कि अब मैं यह नहीं कर सकता तो वैसे नहीं चलेगा। इसलिए पहले विचार करो। "मैने विचार करके 'हाँ 'कहा और फिर बाबा से पूछा, 'मेरा हित किस में है ? यह आपको ही ज्यादा पता है। इसलिए आप जैसी आज्ञा करेंगे, उसी के अनुसार मैं कार्य करूंगा। " एक दिन बाबा ने मुझसे कहा, "अब तुम किसी एक की नौकरी करो। एक की नौकरी और दूसरे की भाकरी (रोटी) ऐसी अवस्था अब नहीं चलेगी। " उनके कहने का अर्थ यह था कि अब नौकरी करना मेरे हित में नहीं है। उनके अनुसार मैने नौकरी से इस्तीफा दिया और घर आने से पहले बाबा से आज्ञा ली। आगे क्या होगा ? यह विचार मेरे मन में था उसका कारण यह था कि मेरी शादी हुई थी और मेरा बेटा चिरंजीव विजय एक साल का था और ऐसी अवस्था में तीन जनों की परवरिश कैसे करें ? यह सवाल तब मेरे मन में था। आखिरकार यह आज्ञा हुई कि, "तुम श्री क्षेत्र औदुंबर जाओ और वहां रह कर श्रीदत्तगुरू की सेवा करो। जो सवाल तुमने मुझसे पूछे थे उनके निवारण केवल पूछने से नहीं होंगे। उनके लिए पहले दो साधना सिद्ध होनी आवश्यक है वे है निराकरण और निवारण। इन दो साधनाओं के लिए जो सेवा करनी है उसके लिए तुम्हारा संकल्प निश्चित होना आवश्यक है, और उस संकल्प में उन सवालों का समावेश करना आवश्यक है जिनके बारे में तुम पूछना चाहते हो। यदि वह सब सिद्ध करना चाहते हो तो उसके लिए आगे की आज्ञा होने तक हर रोज ' गुरूचरित्र ' इस पोथी का पाठ करो। रोज पाँच घर माधुकरी (भिक्षा) मांगो और तीर्थक्षेत्र औदुंबर में

ही निवास करो। ''बाबा की यह आज्ञा सुनना आसान था लेकिन यह साधना गुरूकृपा के बिना होना मुमकिन नहीं था। इससे तो मृत्यु बेहतर होगी। आखिरकार मैने निर्णय लिया। मैने सोचा कि मुझे किसके लिए जीना है, ईश्वर के लिए है! फिर यदि मुझे मृत्यु आनेवाली हो तो वह मृत्यु भी ईश्वर के लिए ही आए। उसी में पुरूषार्थ है। इसलिए इस साधना को पूर्णता तक ले जाना यह मेरा कर्त्तव्य है। यह सोच कर मैं तीर्थ क्षेत्र औदुंबर गया। इसके पहले, मैं पिताजी के साथ बहुत बार औदुंबर गया था। तब मैने वहाँ सेवा करने वाले लोग (सेवेकरी) देखे थे। लेकिन 'सेवेकरी' इस शब्द का अर्थ मुझे आज समझ आया। 'तुम मेरी सेवा करो' यह आज्ञा एक दिव्य (कठिन परीक्षा) है। इसके पहले बहुत सेवेकरी मिले थे लेकिन उन्हें' आज्ञा ' इस शब्द का मतलब नहीं समझा था। एक बार आज्ञा के अनुसार सेवा प्रारम्भ की तो उससे ऊब जाना उचित नहीं है। 'सेवा बंद करो' ऐसी आज्ञा होने तक सेवा जारी रखना आवश्यक होता है। ऐसी यह सेवा बड़ी कठिन सेवा है। यदि किसी कारणवश बीच में ही सेवा बंद करनी पड़ी तो उस सेवा का इष्ट फल प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। स्वयं के या अन्य लोगो के लाभ के लिए की गई सेवा में, साधना की सिद्धता को पूर्णत्व प्राप्त ना होने के कारण सेवेकरी को सेवा से हाथ धोना पड़ता है। इसलिए गुरूभेंट होने तक प्रतीक्षा करते रहना, यही सुखकर मार्ग है। अतः गुरूमार्ग का अनुसरण करना और गुरूमार्ग प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। परमेश्वर का यह कार्य मेरे माध्यम से शुरू हो यह परमेश्वर की ही इच्छा थी इसलिए कार्य करते समय मुझे जब जब परमेश्वर की सहायता की आवश्यकता हुई तब तब उस संकटकाल में मुझे परमेश्वर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। वरना यह कार्य करना मेरे लिए आसान नहीं था। अब आप लोगो को कार्यकेन्द्र पर 'सेवक (सेवेकरी)' पद पर नियुक्त किया है, इसलिए आप औरों का कल्याण कर सकते हैं। अगर यह ईश्वर की ईच्छा नहीं होती तो औरों का कल्याण तो क्या, खुद का भी कल्याण करना आपके लिए मुमकिन नहीं होता।

जिस सेवा का मैने पूर्णरूप में अंगीकार (स्वीकार) किया था उस सेवा में प्रमुखतः तीन विषय थे और उन विषयों की सिद्धता करनी थी। केवल

ईश्वर को प्रसन्न करना, यह मेरी सेवा का प्रमुख उद्देश्य नहीं था। अनेक साधक इस सेवा के मोह के आधीन हो जाते है। लेकिन सेवा के विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होने के कारण उन्हें उनके जीवन के मूल्यवान साल व्यर्थ गंवाने पड़ते हैं। इसलिए साधक अवस्था को स्वीकार करने से पहले साधक को, जो विषय या सिद्धता निश्चित करनी आवश्यक होती है, वह उसे निश्चित करना होता है। विषय निश्चित कर लिया तो भी वह विषय कब सिद्ध होगा ? यह कह नहीं सकते है। शायद वह विषय एक साल में सिद्ध होगा या वह विषय सिद्ध होने के लिए बारह साल भी लग सकते है। इसलिए सेवा करने में दो हेतु होते है : 1– साधना का अपना विषय खुद चुने या, 2–साधना का विषय ईश्वर को निश्चित करने दें। बहुत से साधक इसका स्पष्टीकरण नहीं बता सकते हैं कि ईश्वर ने उन्हें क्या दिया है ? वे इतना ही कह सकते है कि 'ईश्वर ने कुछ दिया है 'लेकिन ईश्वर ने उन्हें क्या दिया इसका जवाब गूढ़ ही रहता है। साधक को उसका शास्त्रीय विवेचन करना मुमकिन नहीं होने के कारण ऐसे बहुत से साधक, लोगो के सवालो का समाधान नहीं कर सकते हैंऔर इसी के कारण लोगों को यह मार्ग ठगानेवाला मार्ग लगता है। वास्तव में, इस मार्ग जैसा दूसरा श्रेष्ठ मार्ग नहीं है। लेकिन साधक को इस मार्ग के बारे में पूर्ण ज्ञान न होने की वजह से उसका दोष इस मार्ग पर आता है। इसके अलावा यदि संकल्प का उद्देश्य निश्चित नहीं होगा तो साधना करने में साधक का बहुमूल्य जीवन व्यर्थ खर्च होता है। यह जीवन अत्यन्त मूल्यवान और प्राप्त करने के लिए अत्यन्त कठिन है। इस जीवन का जो प्रत्येक क्षण व्यर्थ खर्च होता है उस क्षण की फिर से प्राप्ति नहीं हो सकती है और मृत्यु किसी के भी लिए रूकती नहीं है। इसलिए प्राप्त जन्म के जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग सत्कारण के लिए ही होना आवश्यक है।

हमें प्राप्त हुआ यह देहिक माध्यम यह ईश्वर की देन है। हमारे बुद्धि माध्यम पर पहला हक ईश्वर का है। अतः इस बुद्धि से कौन सा विषय प्राप्त करना है इसका निर्णय ईश्वर को ही करना उचित है। यदि वह विषय हमने खुद निश्चित किया तो हमारी बुद्धि में 'ईश्वर' विषय की धारणा के बजाय 'औरों से जलन 'इस विषय की धारणा होती है। आज

जगत में सभी जगह जो अशांतता है, उसका यही कारण है। यदि हमने प्राप्त करने के संकल्प का "गुरूतत्व" विषय निश्चित किया तो उसमे सौ प्रतिशत यश प्राप्ति है क्योंकि उस संकल्प सिद्धता की सफलता के लिए आवश्यक परहेज तथा स्थल, काल, समय इनके बंधन, के बारे में हमें गुरूतत्व से मार्गदर्शन होता रहता है। इस कार्य के प्रारंभ में जिन साधनों की सिद्धता हुई है उन सब संकल्पों के लिए परम पूज्य बाबा से सूचना प्राप्त हुई है। मैंने शुरू में यह एक ही संकल्प किया था कि" प्राप्त हुआ जीवन मैने श्री सद्‌गुरू के चरणों मे समर्पित किया है और मेरे इस जीवन का उनसे जगत् कल्याण के लिए उपयोग हो। "इस संकल्प के अनुसार मैने अपना संपूर्ण जीवन उनकी आज्ञा के अनुसार ही व्यतीत किया। प्रत्येक दिन की सुबह,' यह दिन मेरे जीवन का आखिरी दिन है 'इस एहसास से ही मैने प्रत्येक दिन व्यतीत किया। इसीलिए पिछले पैंतीस साल में तीन सौ पचास सालों जितना कार्य हो गया है।

एक महत्वपूर्ण घटना की याद बताना रह गया। परमपूज्य तेलीमहाराजजी की सेवा करते समय घर की परेशानियों से मैं ऊब गया था, 'ऊब गया था' यह कहना उचित नहीं होगा क्योंकि ऊब जाने से परिस्थिति नहीं बदलती। परिस्थिति में बदलाव आने के लिए सिर्फ गुरूकृपा की आवश्यकता है और अनुकूल कर्म की आवश्यकता है। यदि मेरा कर्म उस समय अनुकूल होता तो मैं गुरूमार्ग में नहीं आता। उस समय कर्म ने रास्ता दिखाया इसलिए मुझे गुरू की याद आई। इस जन्म में, 'गुरू की याद होना 'यह भी कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। कर्म से परेशान होकर उसे कोसने के बजाय उस कर्म के प्रति ऋणी होना ही हितकर है। यह मान्य करके मैने कर्म में बदलाव आने तक गुरू सेवा करते रहने का दृढ़ निश्चय किया। 'गुरूभक्ति' यह शब्द कहना बहुत आसान लगता है लेकिन जब गुरूभक्ति करने का समय आता है तब' लोहे के चने चबाने 'जैसी कठिन परिस्थिति हमारे हिस्से आती है। उसके बाद गुरू भेंट और फिर गुरूभक्ति!

इस प्रकार मैं गुरूसेवा कर रहा था। जब एक दिन मैने बाबा से पूछा, क्या मैं आपसे एक सवाल पूछ सकता हूँ ? तब वे तुरंत बोले, 'तुम्हारा सिर!

क्या तुम्हें सवाल पूछने का ज्ञान है ? तुम पहले ज्ञान मांग लो, फिर उस पर विचार करना सीखो और उसके बाद सवाल पूछो। पूरी दुनिया जो नकल कर रही है, वही पहाड़े तुम मत दोहराओ। वास्तव में सवाल ईश्वर का होता है। जन्म लेने वाले हर एक को रोटी कपड़ा मकान कैसे प्राप्त होगा ? यह चिंता ईश्वर को होती है। मनुष्य जन्म के साथ चिंता को लाता है और मृत्यु उसे अपने साथ ले जाती है'। फिर बाद में बाबा ने कहा, 'सवाल पूछो'! तब मैने उनसे पूछा, 'भविष्य में मेरा क्या होगा? क्योंकि मैने कोई पढ़ाई नही की है और मुझे कोई कला का काम भी नहीं आता है। 'तब बाबा ने मुझे कहा, 'तुम अकेले ही खड़े हो। बाकी सब गिरे पड़े हैं। तुम्हें शिक्षा नहीं है या तुम्हें कोई कला का काम नहीं आता है इसकी चिंता ईश्वर को है। 'तुम इसके बारे में विचार मत करो। आगे के आयुष्य में तुम्हें जग को चारा देना है। इसलिए तुम चंद्र की कला जैसे धीरे धीरे वह अवस्था प्राप्त करो। बाद में एक दिन पूर्णमासी होगी। यही गुरूपूर्णिमा तुम्हारे जीवन में आएगी। इसी का अर्थ जगत् को प्रकाश में लाना, ज्ञान होना है। "बाबा के यह कहने का मतलब मैं आज समझ रहा हूँ।

4. इन्सान जाग उठा

मेरे बचपन में हमारे घर मेरे पिताजी का मोटर गाड़ी का व्यवसाय था। बस चलाने वाले बहुत से ड्रायव्हर्स–(चालक) मुसलमान थे। मैं जब तीन साल का था, तब मेरे पिताजी ने मुझे 'फकीर' बनाया था। फकीरी भी एक तरह की दीक्षा ही है। मैनें यह फकीरी बारह साल की। हर साल मोहर्रम के महीने में दस दिन ताबूत रखे जाते हैं। ताबूतों के विसर्जन की पहली रात ' कतल की रात 'होती है। मुस्लिम धर्म के अनुसार यह विधि करने के लिए मेरे पिताजी मुझे वहां ले जाते थे। उस समय हिंदु और मुस्लिम झगड़ते नहीं थे इसलिए सब त्यौहार साथ साथ मनाए जाते थे। मुस्लिमों का 'ताबूत' और हिन्दुओं का ' गणेशजी' ऐसा फर्क उस समय नहीं था। इसलिए दोनो त्यौहार की विधि आनंद से की जाती थी। उस समय सब लोगो के मन में एक ही भावना होती थी कि ' परमेश्वर एक ही है ' और जो कोई परमेश्वर की प्रार्थना करता था, उसकी प्रार्थना का उद्‌देश्य यही होता था कि ' संपूर्ण संसार को सुख की प्राप्ति हो ' इसी के कारण उस समय उन दस दिनों में सब लोग ताबूत और गणेशजी का त्यौहार आनंद से मनाते थे। ' मनुष्य को अपना जीवन सत्कर्मो के लिए व्यतीत करना चाहिए 'इस संतवाणी के अनुसार उन दिनों, हर एक को यह एहसास था कि मेरे हाथों कुछ ना कुछ सत्कर्म होता रहे। मोहर्रम के दिन बहुत से फकीर एक हाथ में कटोरा लेकर भिक्षा मांगने के लिए वहाँ इकट्ठे होते थे, दूसरे हाथ में मोर्चेल (मोर के पंख) लेकर वे लोगों के बदन पर मोर्चेल फेर कर मुंह से यह कहते थे कि, "दिया उसका भला, न दिया उसका भी भला'। खुदा जिसने दिया तांबे का पैसा उसको दे तू सोने का पैसा। बारह इमाम तुम्हारा भला करें। खाली पाँच इमाम को याद करो। अल्ला अल्ला। " उस समय वे फकीर जिन नामों का (जैसे अजमेर, गुलबर्गा, कल्याण, इत्यादि) उच्चार करते थे उनके बारे में मैने भूगोल की किताब से कुछ सीखा नहीं था। उन पीरों का आगे अपने कार्य में क्या संबंध है ? इसका मुझे उस समय पता भी नहीं था। बाद में परमपूज्य बाबा की आज्ञानुसार मैं श्रीदत्तक्षेत्र औदुंबर गया। परमपूज्य बाबा की आज्ञा का जितना हो सके उतना यथार्थ पालन करना इसी व्रत का मैने वहाँ अंगीकार

किया। एक दिन भोर के समय मैने एक सपना देखा। सपने में मुझे पाँच दरगाह मतलब पाँच पीर दिखाई देने लगे। यह क्या चमत्कार है ? ऐसा मैने मन में विचार किया लेकिन मैं उनके बारे में कुछ समझ नहीं सका। मुझे यह आज्ञा थी कि 'औदुंबर जाओ, गुरूचरित्र की पोथी का पाठ करो और पाँच घर माधुकरी (भिक्षा) मांगो।''मगर मुझे सपने में पाँच पीर दिखाई दिए। इसी संभ्रम में मैं सेवा करता रहा। कुछ दिनों बाद मैंने और एक सपना देखा। सपने में एक पहाड़ देखा। फिर धीरे धीरे उस पहाड पर मुझे एक विशाल दरगाह दिखाई दिया जो मैने पहले कभी नहीं देखा था। फिर मुझे सिर्फ एक आवाज सुनाई दी कि, "पिछले जन्म में तुम मुस्लिम थे और उस समय फकीर थे, इतनी ही याद बहुत है, और ज्यादा खोज में मत जाना"। यह सुनने के बाद मैं जग गया और जिस कम्बल पर सोया था उसी पर बैठकर मैने प्रार्थना की, तब कान में फिर से धीरे धीरे आवाज सुनाई दी, "इन्सान जाग उठा। अपना काम हो गया। इन्शाअल्लाह"।

कुछ दिनों बाद मेरे मन में यह सवाल आया कि इस सेवा का लाभ कैसे प्राप्त किया जाए ? इस सवाल का जवाब किससे पूछें ? पहले घर रहते समय ऐसे सवाल जब आते थे तब मैं पिताजी से उनके जवाब पूछता था। लेकिन अब आज्ञा के अनुसार औदुंबर की सीमा लांघना उचित नहीं था। एक दिन श्रीदत्तगुरू की महापूजा के बाद सब लोग आरती और मंत्र पुष्पांजली गा रहे थे तब मैं भी आंखे बंद करके, "।।श्री गुरूदेव दत्त।। " ऐसा स्मरण कर रहा था। तब डंडे के आधार से चलते चलते एक बुजुर्ग मेरे पास आए और मेरे समीप खड़े रहे। फिर मेरे हाथ पर पाँच छुहारे रख कर उन्होंने मुझे कहा कि, 'यह श्रीदत्तगुरू का प्रसाद है। इनकी और 'ख' अक्षर से शुरू होने वाली और चार चीजों की प्राप्ति करनी है। वह प्राप्ति जब हो जाएगी तब कार्य का प्रारम्भ करो।" इतना कह कर वे बुजुर्ग मेरी समझ में आने से पहले ही मेरी आंखों से ओझल हो गए। मेरे हाथ में उनके दिए पाँच छुहारे थे। वह श्रीदत्तगुरू का प्रसाद है, ऐसा मान कर मैने उन्हें अपने आवास में रख कर फिर भिक्षा मांगने गया। उसी दिन किसी भक्त ने उसकी मन्नत पूरी होने के कारण चालीस किलो पंच खाद्य का (ख से शुरू होने वाली पाँच चीजों का) प्रसाद सबको बांटने के लिए

पुजारी के पास दिया था। मुझे भी वह प्रसाद प्राप्त हुआ। उस दिन सुबह मुझे छुहारे देते समय उस बुजुर्ग ने कहा था कि, ये और 'ख' अक्षर से शुरू होने वाली चार चीजें इनकी प्राप्ति हो जाने के बाद कार्य आरंभ करो, उस समय मैं विचार कर रहा था कि वे चार चीजें कहाँ से प्राप्त होगी ? भविष्य में मुझे वे चीजें कौन देगा ? यह विचार करते करते रात हो गई। सोने के पहले मैं नियमित रूप से ग्यारह सौ बार गुरूनामस्मरण किया करता था। उस समय रात के तकरीबन आठ का समय हुआ होगा। मंदिर बंद हुआ था, तब एक भक्त अपने तीन बच्चों के साथ दर्शन करने आया। दर्शन करके उदी लगाने के बाद उन बच्चों ने अपने पिताजी से कहा कि, 'हमें केवल उदी का प्रसाद नहीं चाहिए। हमें छुहारों का प्रसाद चाहिए।' तब उनके पिताजी ने उन्हें कहा कि, अब इतनी रात को छुहारे कहाँ मिलेंगे ? जब उनका यह संभाषण मैने सुना तब मैने आगे होकर सुबह उस बुजुर्ग से प्राप्त हुए पाँच छुहारों में से, तीन बच्चों को तीन छुहारे और उनके पिताजी को एक छुहारा इस प्रकार उन्हें चार छुहारे दिए और मेरे पास एक ही छुहारा बाकी बचा। वे सब चले गए। तब मुझे ऐसा लगा कि यह आभास है। लेकिन फिर मुझे लगा कि यदि यह आभास है तो मेरे पास के चार छुहारे किसने खाए ? तब मुझे याद आया कि यह अवस्था ही ऐसी होती है कि जिसमें संभ्रम होता है। सामने कुछ होकर भी कुछ दिखाई नहीं देता है। इस घटना का मतलब यह था कि, 'सेवा का लाभ केवल स्वयं के लिए नहीं होता है, वह सेवा फिर से ईश्वर को अर्पण करना आवश्यक होता है। सेवा का यह अर्थ समझ आने के लिए 'माध्यम' के रूप में कुछ चीजों की आवश्यकता होती है, इसलिए पाँच छुहारे देकर उनमें से चार छुहारे वापिस लिए गए। एक छुहारा बाकी बचा था, सोने के पहले मैने श्रद्धापूर्वक वह छुहारा खाया। ऐसा छुहारा मैने फिर कभी नहीं खाया। वह खाते समय कान में आवाज आई, "अरे, यह छुहारा कहाँ का है इसका तुझे पता है ? यह छुहारा अरबस्तान का है।" वह छुहारा खाने के दूसरे दिन से मुझे औदुंबर, नंदनवन (स्वर्गलोक का बगीचा) जैसा प्रतीत होने लगा। स्वर्ग में और क्या अधिक होगा ? जो भी कुछ इस जगत में नहीं है वह सब इन्ही चरणों में है। ऐसा कह कर मैं शांति से सो गया।

5. साधक अवस्था-
हाजीमलंगबाबा से मार्गदर्शन

"साधक अवस्था में दैनंदिन आचरण किस प्रकार करना होता है यह बात साधक हुए बिना समझ नहीं आती है। दुनिया में, हर गांव में बहुत सारे 'बाधक' (तकलीफ देने वाले) होते है। बाधक बनना यह भी एक अवस्था है। अगर बाधक जन्म नहीं लेते तो साधक अवस्था का कुछ मूल्य नहीं होता। हर एक साधक को 'साधक' होने के पीछे का मूलभूत उद्‌देश्य समझ लेना आवश्यक है। "हमारे इर्द गिर्द के दुनिया के लोग किस प्रकार जीवन बिता रहे हैं? इस दुनिया में किस बात की कमी है ? और क्या अधिक (ज्यादा) है ?" इन दोनो विषयों का विचार करना यह साधक के लिए आवश्यक है। इस जगत में लोगों का एक समूह ऐसा होता है कि उनकी आंखे होकर भी वे अंधे होने के बराबर हैं और दूसरे समूह के लोग इतनी बड़ी बड़ी आँखें करके देखते है कि तब यह डर लगता है कि मानो उनकी आँखे अब फट जाएंगी। पहले समूह के लोगों को उन्हें जिस मार्ग का अनुसरण करना है, उस मार्ग का ज्ञान पहले प्राप्त कर लेना आवश्यक है। केवल दादा परदादा करते आए हैं इसलिए वह कार्य करने वाले बहुत से लोग होते हैं। उनमें बहुतों का विषय केवल 'बहस करना' ही होता है। लेकिन उनकी अनुभव प्राप्ति शून्य होती है। वास्तव में 'शून्य' की जितनी कीमत होती है उतनी भी कीमत इस दुनिया की नहीं है यह मेरा अपना अनुभव है। लोग यह भूल जाते है कि, 'ईश्वर' एक स्वतंत्र विषय है। 'मानव और उसके जीवन की मीमांसा (स्पष्टीकरण)' और ' ईश्वर और उनका कार्य' ये दो अलग अलग विषय हैं। इनमें जो मनुष्य अपने स्वयं का जीवन नहीं समझ पाता उसके लिए ईश्वर और उसका कार्य यह विषय समझना बहुत कठिन है। साधारणत: आज लोग ईश्वर से संबंधित विचार केवल खुद की कठिनाईयों के निवारण के लिए करते हैं और वे कठिनाईयां दूर होने के लिए ईश्वर को प्रसन्न कर लेना, यही विषय अपनी नित्य साधना का उद्‌देश्य समझते हैं। लेकिन क्या आज तक किसी ने साधना का सच्चा अर्थ बताया है ? शरीर को उल्टा सीधा करके रास्ते पर किए

गए खेल को 'सर्कस' कहा जाता है। उसे 'व्यायाम' या 'प्राणायाम' नहीं कहते क्योंकि व्यायाम या प्राणायाम ये शास्त्र है और यदि उनका अभ्यास 'गुरू' के मार्गदर्शन अनुसार नहीं किया गया तो उनसे लाभ नहीं हो सकता। उसी प्रकार ' साधना ' यह एक गहन विषय है। 'साधना' ईश्वर के प्रति या ईश्वर को प्रसन्न कर लेने के लिए नहीं होती है। 'साधना' इस केवल तीन अक्षरों के शब्द के अर्थ का ज्ञान होना आवश्यक है। 'साधक' और 'साधना' ये दोनों शब्द समान लगते होंगे तो भी 'साधक' शब्द में अंतिम शब्द 'क' है और साधना में अंतिम शब्द 'ना' है। इन दो शब्दों की उत्पत्ति आसान नहीं है। अगर गुरू भेंट नहीं हुई तो ये दो शब्द संपूर्ण जिंदगी व्यतीत करने के बादभी बाकी रहेंगे।"

यह संपूर्ण उपरोक्त संभाषण अथवा मार्गदर्शन परम पूज्य हाजीमलंगबाबा ने किया है। उनके बोलने की भाषा उर्दू थी और उस समय मैं केवल 'मराठी' भाषा ही बोल सकता था। तब मुझे औदुंबर की सीमा लांघने की आज्ञा नही थी। औदुंबर में सेवा करने वाले जो अन्य लोग थे, वे मेरे जैसे केवल मराठी भाषा ही जानते थे। हाजीबाबा जो उर्दू भाषा बोलते थे उसका निश्चित अर्थ समझ आने से ही उनके कहने का मतलब समझ आकर ज्ञान प्राप्त होगा यह सोचकर आखिर मैने उनसे यह प्रार्थना की कि, 'आप मुझे इस उर्दू भाषा का ज्ञान दीजिए'। तब मुझे उनका यह मार्गदर्शन हुआ कि, 'सात दिन के बाद जब तुम्हारा गुरूचरित्र की पोथी का यह पाठ पूर्ण होगा तब तुम सिर्फ एक दिन, फिर से गुरूचरित्र की पोथी का पाठ आरंभ करने के पहले तुम्हारे मामाजी से मिलने भिलवड़ी गांव उनके घर जाओ। उन्हें मेरी इस भाषा का ज्ञान है। इसलिए मैं जो मार्गदर्शन तुम्हें करना चाहता हूँ वह तुम्हें वहाँ समझ आएगा और बाद में तुम इस भाषा में बोल भी सकोगे। मैं तुम्हारे शरीर में 'मेरा आगमन' करने वाला हूँ लेकिन उसके लिए एक साल की अवधि तक रूकना आवश्यक है। यह जो साधना है उसे 'परकाया प्रवेश' कहते हैं। लेकिन इसमें डरने की कोई बात नहीं है। सबसे पहले 'मेरा आगमन' इसका अर्थ क्या है ? यह सवाल महत्वपूर्ण है। जब तक इस परकाया प्रवेश के शास्त्र का ज्ञान तुम्हें नहीं होगा, तब तक तुम भी अन्य दुनियावाले जैसा कहते हैं वैसा ही

कहोगे कि 'मेरा आगमन होगा' इसका मतलब 'भूत का संचार होगा'! लेकिन यह अवस्था वैसी नहीं है। मैं सांतवे लोक में वास्तव्य करता हूँ। अन्य विभूति भी वहीं वास्तव्य करती हैं और वहाँ से ही ये विभूति अपने भक्तों का योगक्षेम (चरितार्थ और कल्याण) का कार्य करती हैं। जिस प्रकार सूरज दुनिया से अनेक योजन दूरी पर होकर भी दुनिया को उसकी रोशनी प्राप्त होती है लेकिन सूरज कभी भी धरती पर नहीं आता है उसी प्रकार हमारी जैसी विभूति भी इस धरती पर कभी नहीं आती हैं। हमने हमारे जीवन के काल में इस धरती पर जो साधना की थी, उस साधना से हमने शक्ति प्राप्त की है और उस शक्ति का उपयोग हम 'परकाया प्रवेश' के लिए करते हैं। लेकिन उसके लिए हमें योग्य माध्यम की आवश्यकता होती है। इस दुनिया में ऐसे योग्य माध्यमों की बहुत कमी है। हमारे लिए आवश्यक माध्यमों को इस धरती पर जन्म लेने ईश्वर भेजते हैं लेकिन ऐसे साधक का जन्म यह ईश्वर का प्रसाद होकर भी जब तक हमें उस साधक से 'साद '(बुलावा) प्राप्त नहीं होता तब तक वह साधक जीवित (जिंदा) होकर भी हमारे लिए मृत ही है। मेरा यह कहना सुन कर तुम नाराज मत होना।''

"मनुष्य इस धरती पर जन्म लेता है पर जन्म लेना आसान नहीं हैं। मनुष्य के जन्म के कारण दो प्रकार से कार्यान्वित (क्रियाशील) होते है। पहले प्रकार का जन्म, कर्मो के कारण होता है। दूसरे प्रकार का जन्म, आत्मा की कर्मो के बंधनों से स्वयं को मुक्त करा लेने की इच्छा के कारण होता है। इन दो अवस्थाओं में स्वयं के जन्म कारण का मनुष्य को ज्ञान हुआ तो मनुष्य की जन्म से मुक्तता होती है, नहीं तो जन्म प्राप्त न होना यही हित की बात है। जन्म लेने के बाद कर्म और आत्मा इनका कार्य इन दोनों के हित में होना आवश्यक है। लेकिन कर्मों से स्वयं को मुक्त करा लेने के लिए जन्म प्राप्ति की इच्छा जिन आत्माओं को होती है, ऐसी आत्माएं बहुत कम होती है। ऐसी आत्मा ने जन्म लिया तो इच्छा अनुसार, जीवन का उपभोग लेने के बजाय प्राप्त जन्म से मुक्तता कैसे कर लेनी है ?" यही विचार वह आत्मा करती रहती है। इसके विपरीत जो आत्माएं कर्मो के कारण जन्म लेती है वे उन कर्मो से मुक्तता प्राप्त करने की

कोशिश नहीं करती है बल्कि इस दुनिया में मैं ज्यादा से ज्यादा उपभोग कैसे ले सकूंगा इसी चिंता में वे आत्माएं रहती हैं। इसलिए ऐसी आत्माओं के लिए स्वयं मुक्तता प्राप्त कर लेना बहुत ही कठिन होता है। समझ लो कि किसी आत्मा को उसके पूर्व जन्म के किसी अच्छे कर्म के कारण 'गुरूमार्ग' का लाभ प्राप्त हुआ तो भी ऐसे बहुत से लोग इसे 'दुख' कहते हैं क्योंकि आत्मा को यह एहसास होता है कि पूर्व जन्मों के कर्मो के कारण जन्म लेने में उससे गलती हुई है लेकिन उसके कर्मों को यह एहसास नहीं होता है। यह एहसास होकर प्राप्त जन्म से मुक्तता हो जाए इसके लिए कोई कर्म मनुष्य के जीवन में आपत्ति निर्माण करके उसे सही रास्ते पर लाने की कोशिश करता है। वास्तव में कर्म द्वारा निर्माण किया वह संकट (विपत्ति), देह को संकट (विपत्ति) जैसे लगता हो तो भी आत्मा के लिए वह संकष्टी (एक व्रत) है। हमारे इर्द गिर्द जो दुनिया है वह भी कर्मो से निर्माण हुई है। यह कर्मो से निर्माण हुई दुनिया मनुष्य को सही मार्ग पर लाने वाले उसके अच्छे कर्म को उसका कार्य करने नहीं देती है। मतलब मनुष्य को सच्चे पथ पर चलने नहीं देती है। इस संसार के सब लोगो की यही स्थिति है। इसलिए गुरूमार्ग का दर्शन हुआ, मार्गदर्शन हुआ, गुरूभेंट हुई तो भी ऐसे लोग 'गुरू के गुरू' बनते है और सच्चे पथ पर चलने के बजाय गुरू से दूर हो जाते है।

6. ज्योतिष्मती – श्रीगुरूचरित्र विमोचन साधन – श्रीशक्तिपीठ कार्य योजना

जब मुझे जीवन के संबंधित तत्वज्ञान का शुभारंभ प्राप्त हुआ तब मैने खुद को बड़ा भाग्यवान मान लिया। इसका अर्थ मेरे समझ में तब आया जब एक रात परमपूज्य बाबा ने मुझे नींद से जगाया। उस समय प्रातःकाल के चार बजे थे। छह महिने से मैं, गुरू आज्ञा के अनुसार हर रोज नित्य नियम से, 'श्रीगुरूचरित्र की पोथी का पाठ करना, माधुकरी (भिक्षा) मांगना' आदि सेवा कर रहा था। वे, पूर्णिमा के बाद के कृष्णपक्ष के दिन थे। सभी ओर अंधेरा था। तब किसी ने मुझे आवाज दी और कहा, 'बेटा उठो'। यह सुनकर जब मैं उठा तब मुझे सितारों की रोशनी नजर आई। नदी किनारे मैंने नदी के पानी से मुँह धो लिया। फिर मैंने विचार किया कि, चार दिन के बाद ही अमावस है। अब इस भोर के समय चंन्द्रमा दिखता नहीं फिर भी सब जगह प्रकाश है यह क्या चमत्कार है ?, किसी ने मुझे आवाज दी थी और अब सितारों की रोशनी नहीं होकर भी यहाँ स्पष्ट रूप में प्रकाश नजर आ रहा है। तब बाबा ने मुझे कहा कि, 'बाबा, इसे आत्मा अधिक प्रकाश यानि 'ज्योतिष्मती' कहते है।" मुझे पहली जो आज्ञा मिली थी कि, "औदुंबर जाओ, श्रीगुरूचरित्र की पोथी का पाठ करो और माधुकरी (भिक्षा) मांगो' उसका अर्थ यही था कि विहार, विचार और आहार इनकी एकरूपता होकर जीवन प्रकाशमय हो। बचपन में श्रीभैरवनाथ जी ने जब मुझे यह कहा था कि, 'मुझे प्रकाश में लाओ 'तब मैंने उनके मंदिर में दिया जलाया था। लेकिन' दिया 'या' निरांजन 'इसका अर्थ केवल ज्योत जलाने का बर्तन ऐसा नहीं है। 'निरांजन' का मतलब जिसे तीनों लोकों के स्वामित्व का 'ज्ञान' है, वह ज्ञान और इस निरांजन अवस्था का लाभ प्राप्त कर लेने के लिए मुझे तीर्थक्षेत्र औदुंबर में लाया गया था ताकि वहाँ दुनियाँ से तकलीफ न हो! यहाँ के सेवेकरी गुरूचरित्र की पोथी का जो पाठ करते थे उसे मैं पहले पढ़ रहा था। बाद में मुझे यह आज्ञा हुई कि अब इसके आगे, तुम्हें यह 'गुरूचरित्र' पढ़ना नही है बल्कि तुम्हें 'जिंदा गुरूचरित्र पढ़ना है'। जिसका मतलब यह है कि, 'मनुष्य जन्म लेकर इस

जगत् में क्यों आता है ? मनुष्य की, जन्म मरण से मुक्तता कैसे करनी है ?' इसका ज्ञान, जो इह जगत् में नहीं हैं, वह ज्ञान तुम्हें यहाँ बिठाकर श्रीगुरू तुम्हें बताएंगे, वह ज्ञान तुम्हें सुनना है और इसी का अर्थ है 'गुरूचरित्र'। इस जगत् की उत्पति, स्थिति, लय ये जो तीन अवस्थाएं है वे अवस्थाएं तुम्हें समझ लेना आवश्यक है। इसलिए आज तुम्हें यह प्रकाश दिखाया है। अब इसके आगे इहजगत देखने के लिए तुम्हें अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं है।

साधक को जब कोई इष्ट कार्य करना होता है तब उसे 'साधना' यह विषय निश्चित करना आवश्यक होता है क्योंकि साधक अवस्था में जब कार्य के कारण साधक को कीर्ति मिलती है, उसका नाम होता है, तब दुनियावाले उसके इर्द गिर्द भीड़ करने उपस्थित होते है। उनमें से अंत तक उसके साथ कितने बाकी रहते हैं मतलब कुल कितने आए और कि़तने बाकी रहे यह देखने से यह समझ आता है कि केवल भीड़ इकट्ठा होने से कुछ नहीं होता है। जो बाकी रहते हैं उसका यह अर्थ है कि उन्हें इस विषय से हमदर्दी है और वे इस विचार से यहाँ बाकी रहे हैं कि ' हमें इस मार्ग से कुछ प्राप्त करना है। '**"साधना !"** यह विषय इतना विशाल है कि जीवन की पूर्णता (अंत) हुई तो भी यह विषय पूर्ण नहीं होता है। अन्य लोगो को यह विषय ' विष' (जहर) जैसा लगता है और इसलिए वे लोग यहाँ से यह कह कर भाग जाते है कि,' इस विषय में कुछ अर्थ नहीं है'। उनका कहना भी सही ही है क्योंकि यह विषय समझने के लिए उस व्यक्ति में पात्रता (योग्यता) का होना आवश्यक है। हर एक को यह लगता है कि जन्म लेने वाले सभी पात्र (योग्य) ही होते है। लेकिन इस जगत में देखा जाए तो यहाँ पात्रता (योग्यता) रखने वाले कितने हैं और पात्र (अभिनेता) कितने हैं ? इसका पता ही नहीं चलता है। उनके बारे में 'आए क्या और गए क्या' ऐसा कहना पड़ता है। इतने मनुष्य जन्म लेते हैं लेकिन यहाँ से जाने के (मरने के) बाद कितने याद रहते हैं ? बहुत ही कम या करीबन कोई भी नहीं। यदि उस मनुष्य ने धन, दौलत, घरबार पीछे रखा होगा तो उसके बच्चे और रिश्तेदार उसे याद रखते हैं। लेकिन वह याद उस मनुष्य की नहीं होती है, उसने जो संपत्ति पीछे रखी है

उसकी याद होती है। यह विषय यहाँ बताया क्योंकि आगे के विषय में जीवन संबंधी मीमांसा महत्वपूर्ण है और साधना इस विषय का अर्थ है, 'जीवन के संबंधित तत्वज्ञान'। इसलिए 'साधना' विषय पच्चीस प्रतिशत ईश्वर के प्रति और पचहत्तर प्रतिशत हमारे इर्दगिर्द की इस दुनिया के प्रति होता है जिसका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

मनुष्य को जब जन्म प्राप्त होता है तब उसके मूल शरीर में 'चेतना' धारण होती है जिस के कारण मनुष्य चल सकता है, बोल सकता है। मनुष्य के शरीर में चेतना का अस्तित्व रहता है पर जब चेतना केवल वासनापूर्ति के लिए जन्म लेती है तब वह 'जीव' अवस्था में जन्म लेती है। अतः मूल अवस्था प्राप्त होकर भी वासना के कारण निचले स्तर का जन्म प्राप्त होता है। यदि जन्म का कारण 'वास' (अस्तित्व) होगा तो जन्म के बाद मनुष्य से सत्कर्म होते रहते है। तब यह चेतना ' जीवात्मा' अवस्था में जन्म लेती है और जन्म के बाद ' साधना ' का लाभ प्राप्त होने पर जीवात्मा का ' आत्मा ' रूप उदय होता है। इस अवस्था में चेतना होती है और पच्चीस प्रतिशत साधना करने से चैतन्य अवस्था प्राप्त होती है। मतलब मनुष्य ' मानव ' यह संज्ञा (नाम) प्राप्त कर लेता है। मानव का अर्थ है जिसे काया वाचा मन इस अवस्था का लाभ प्राप्त हुआ है, वह जिसे मन है, वह मानव है। यदि पच्चीस प्रतिशत साधना करके भी मनुष्य की स्थिति में बदलाव नहीं आया तो उस मनुष्य को हर एक के सामने 'हाँजी हाँजी' करके गर्दन झुकानी पड़ती है या फिर अज्ञान के कारण ऐसा लगता है कि उसका सर ऊँचा हुआ है। इसलिए कहा गया है कि ' विद्या विनयेन शोभते'। {नम्रता से विद्या की शोभा है} फिर उस ज्ञान के कारण उस विनयशील (विनम्र) मनुष्य का दुनिया में सब सम्मान करते है। इसीका मतलब है कि दुनिया में 'पात्र' (अभिनेता) बहुत हैं लेकिन पात्रता (योग्यता) रखने वाले कम होते हैं।

उपरोक्त विषय के बारे में कहने का कारण यह है कि आगे' विमोचन' यह साधन सिद्ध करना है। उसके पहले विमोचन इस साधन का महत्व समझ लेना आवश्यक है क्योंकि भविष्य में जो लोग इस कार्य का

लाभ लेने आएंगे उन्हें भी, "विमोचन यह साधन और विमोचन साधन का जीवन में क्या उपयोग है" इसके बारे में ज्ञान मिलना आवश्यक है। केवल लोग,' जिन विपत्तियों के कारण परेशान है वे विपत्तियां गुरूकृपा से दूर करना है' इतना ही इस कार्य का उद्देश्य नहीं है। अगर लोगों को उनके दुख के बारे में ज्ञान होता तो उन्होंने उस दुख को दूर करने का उपाय ढूंढ कर उसे दूर करने की कोशिश की होती। लेकिन, "क्या आज जीवन में आया यह दुख वास्तव में दुख ही है ?" यह बात कोई नहीं समझता है। मनुष्य के दुख का एक कारण, उसके कर्म हैं और दूसरा कारण, 'दुख के कारणों के बारे में अज्ञान है'। बहुत से लोगों को अज्ञान के कारण ही दुख भुगतने पड़ते हैं। इस तरह मनुष्य के दुख के जो दो प्रकार होते है उन में से आए हुए मनुष्य का दुख किस प्रकार का है ? यह साधक को समझ नहीं आता है। इसलिए भक्त जब साधक के पास दुख लेकर आता है, तब साधक को उसके दुख का कारण अज्ञात होने के कारण वह साधक उस भक्त के दुख का निराकरण नहीं कर पाता है, क्योंकि मनुष्य के दुख के मूल विषय का गुरूमार्गी हुए साधक को ज्ञान नहीं होता है और इसके कारण साधक और भक्त इन दोनो की दिशाएं अलग अलग होती है अतः दोनों का मिलाप कब और कैसे होगा ? ईश्वर और भक्त के लिए 'युक्ति' की आवश्यकता होती है। गुरूमार्ग में 'गुरू' यह माध्यम है। 'गुरू' का उपयोग कैसे कर लें, इसका ज्ञान होना आवश्यक है। 'गुरू' यह एक विषय और 'मार्ग' यह दूसरा विषय है। ' गुरू ' यह विषय आरंभ से अंत तक एक ही होता है लेकिन साधक के इस विषय का या मार्ग का केवल अनुकरण करने से उसे, उसका लाभ नहीं होगा परंतु इस विषय का सदैव अनुसरण करके उसका सदैव स्मरण रखना आवश्यक होता है। साधक को इसलिए सदैव तत्पर रहना चाहिए कि जो साधन सिद्धता वह कर रहा है, उसका हित संबंध हितकारक होने के लिए साधक अवस्था में कौन से बंधनों का पालन करना है, इस अवस्था में क्या परहेज रखना आवश्यक है, साधक को यह सब समझ लेना चाहिए। इसलिए परम पूज्य बाबा ने यह कहा कि, 'अगर कार्य करना है, तो सबसे पहले 'निराकरण' सिद्ध होना आवश्यक है'। उसके बाद 'निवारण' सिद्ध होना आवश्यक है। और उसके लिए संकल्प करने की आवश्यकता है क्योंकि जो साधन सिद्ध

करना है वह साधन संपूर्ण संसार के लिए उपयुक्त और लाभदायक होना आवश्यक है। मिसाल की तौर पर जैसे – डोरा (धागा) इसका उपयोग मनुष्य की तकलीफ और बीमारी दूर करने के लिए जैसे होता है, वैसे ही वहीं ड़ोरा जानवर के गलें में पहनाने से उस जानवर को भी उससे वहीं लाभ होना आवश्यक है।

यह जो चराचरमय (चर अचर से भरा हुआ) जगत् हम देखते है, या हमें जिस चराचरमय जगत् का आभास होता है, उस जगत् का निर्माण पांच तत्वों से हुआ है। जगत् का कार्य इन पांच तत्वों पर निर्भर है। इन तत्वों का कार्य और निसर्ग के पांच तत्वों का कार्य एक दूसरे के पोषक (पूरक) होना आवश्यक है तो ही निसर्ग का और जीवन का कार्य सुख, शांति समाधान से कार्यान्वित होगा। इसके विपरीत अगर इनमें से एकाध् तत्व ज्यादा होगा और दूसरा कम होगा तो इन तत्वों के कार्य में बिगाड़ होगा। जन्म लेने का कारण अणुरेणु से ब्रह्माण्ड तक इसलिए निरंतर चलता रहता है कि एक से पाँच तत्व एक दूसरे के पोषक (पूरक) होते है। जब इन तत्वों में विषमता निर्माण होती है, तब इस सृष्टी पर या मानवों के जीवन में विपत्ति आती है वास्तव में आपत्ति का धर्म या उद्देश्य जग में दुख और अशांतता निर्माण करना ऐसा कभी नहीं होता है। हम 'मानव' जन्म लेते है – यह हम पर ईश्वर की कृपा हैं। लेकिन मानव, जन्म लेने के बाद मानव होकर भी जब दानव (राक्षस) जैसे जीते हैं तब उसके हिस्से आपत्ति और संकट आते हैं और यह दोष उसके स्वयं के अज्ञान के कारण है यह वह स्वीकार नहीं करता है। इसलिए श्रीगुरू ने तीर्थक्षेत्र औदुंबर में जो साधना करने के लिए कहा था उसमें 'विमोचन' साधन सिद्ध किया गया। जन्मतः मूल तत्व में जो धारणा होती है, उसमें मनुष्य के गलत ज्ञान के कारण बिगाड़ आने से उस धारणा में कमी या अधिकता का निर्माण होता है। ऐसे समय हम मानवों को फिर से मूल धारणा की प्राप्ति करा देना यही 'विमोचन' है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच तत्वों से परिपूर्ण ऐसा निसर्ग (प्रकृति) हम मानवों के कल्याण के लिए सदैव प्रयत्नशील है।

लेकिन निसर्ग का (प्रकृति का) यह कार्य इतनी शांति से होता रहता है कि हम मानवों को अनायास (सहजता से) उसका अहसास नहीं होता है। ब्रह्माण्ड के इन पाँच तत्वों का कार्य जब तक समतोल संतुलित (योग्य) प्रमाण में जारी रहता है तब तक ब्रह्माण्ड़ में या निसर्ग में (प्रकृति में) सुख शांति समाधान रहता है। लेकिन जब इनमें से किसी भी तत्व का संतुलन (योग्य प्रमाण) बिगड़ जाता है तब निसर्ग (प्रकृति) अपनी अशांतता, आँधी, बाढ़ या भूचाल ऐसी नैसर्गिक विपत्ति द्वारा व्यक्त करता है। उसी प्रकार निसर्ग के पांच तत्वों में जब फिर से संतुलन (योग्य प्रमाण) बन जाता है, तब वही निसर्ग अपना आनंद ' इंद्रधनुष ' द्वारा व्यक्त करता है।

मनुष्य भी निसर्ग का ही (प्रकृति का ही) एक भाग है अर्थात जो पाँच तत्व, ब्रह्माण्ड के निर्माण का कारण हैं, उन्हीं पाँच तत्वों से पिंड का यानि मनुष्य का निर्माण हुआ है। जब मनुष्य के जीवन के इन पाँच तत्वों का संतुलन (योग्य प्रमाण) बिगड़ जाता है, तब मनुष्य को, जीवन में दुःख, अशांतता, तकलीफ, असमाधान आदि अवस्थाओं का अनुभव होता है। मनुष्य के देह के इन पाँच तत्वों में हुआ बिगाड़, कौन से तत्व की कमी या अधिकता के कारण है ? यह जान कर फिर से उसके देह को उन सब तत्वों का संतुलन (योग्य प्रमाण) प्राप्त करा देना यही 'विमोचन' है। 'विमोचन' ! यह साधना तीर्थक्षेत्र औदुंबर में सिद्ध हुई। यह साधना सिद्ध करते समय हर रोज पांच घर माधुकरी (भिक्षा) मांगने की सेवा भी मैंने की। 'माधुकरी '(भिक्षा) का मतलब है – 'मांगना'। नित्य साधना सेवा और उनके लिए आवश्यक परहेज करना इनसे मेरे देह के पृथ्वी और तेज तत्वों में जब संतुलन (योग्य प्रमाण) निर्माण हुआ, तब सेवा जारी रखते हुए मैंने श्रीगुरू से निसर्ग के (प्रकृति के) तेज, वायु, आकाश इन तत्वों की मांग की और इस प्रकार पिंड की (मनुष्य की) अशांतता और दुख दूर करने का साधन सिद्ध किया गया'। जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड़ में है और जो ब्रह्माण्ड़ में है वही पिंड में है' इस सिद्धान्त के अनुसार निसर्ग में (प्रकृति में) जो पाँच तत्व है उनका संतुलन (योग्य प्रमाण) निरंतर रहे, इसलिए बाद में इस पृथ्वी पर श्रीशक्तिपीठ की स्थापना की गई।

मनुष्य की बुद्धि का विकास होतेसमय, उसी के साथ उसके अज्ञान की व्याप्ति (मात्रा) भी बढ़ रही है। इस अज्ञान के कारण मनुष्य निसर्ग से (प्रकृति से) संतुलन रखने के बजाय निसर्ग के (प्रकृति के) विरोध में जाकर प्रदूषण से निसर्ग के (प्रकृति के) पाँच तत्वों में बिगाड़ निर्माण करता रहा है। प्रदूषण से हुए इन पाँच तत्वों के बिगाड के कारण निर्माण हुई अशांतता नष्ट करने के लिए और विश्व में तथा मानवी जीवन में सुख शांति समाधान का इंद्रधनुष निर्माण करने के लिए श्रीसदगुरूकृपा से गोवा में श्रीशक्तिपीठ की स्थापना की गई। श्रीशक्तिपीठ की स्थापना यद्यपि अभी हुई है तो भी श्रीशक्तिपीठ की कार्ययोजना तीर्थक्षेत्र औदुंबर में कि सेवा से निर्धारित हुई है।

7. मानवी जीवन - वंशविमोचन

विश्व की धारणा इहलोक, परलोक और स्वर्गलोक इन तीन लोको में हुई है। जन्म के पहले मनुष्य का अस्तित्व कर्म अधिक आत्मा ऐसा होता है। लेकिन जन्म के समय तीन अधिक ऋणानुबंधों को जोड़े बिना मनुष्य जन्म नहीं ले सकता है। इसका मतलब यह है कि जन्म लेने के लिए पाँच तत्व यानि पांच ऋणानुबंधों का मनुष्य के प्राप्त जन्म से संबंध होता है। मनुष्य का कर्म, जो अव्यक्त रूप में होता है वह कर्म जन्म के बाद व्यक्त होता है। कर्म की यह व्यक्त अवस्था 'जीवन' है। 'जीवन' इस शब्द में मूल शब्द 'जीव' है। 'जीव' यानि जो जी रहा है वह। इससे भी और सरल अर्थ यह है कि, 'जिसका कार्य इस जगत से संबंधित है वह 'जीव' है और जीव का कार्य जीवन है। मनुष्य जीवन को साथ लेकर जन्म लेता है। जन्म के बाद से आखिरी (मृत्यु के) क्षण तक जीवन आवश्यक है, तो भी इस जन्म के भोग भोगने में मनुष्य का खुद का कितना भाग होता है ? यह सवाल है। जब तक भोग भोगकर उनका अंत नहीं होता है, तब तक आत्मा की मुक्तता नहीं होती है। इसलिए हम मानवों के लिए इहलोक और परलोक इन दो लोकों का विचार करना आवश्यक है। यदि मनुष्य इहलोक और परलोक इन दोनों से बंध गया तो उसके जीवन का 'प्रवाह' जारी रहता है। वास्तव में जीव का जन्म लेना यह एक 'यात्रा' है, मतलब पिछले जन्मों के जो कर्त्तव्य बाकी रहे थे, वह ऋण चुकाने के लिए आत्मा जन्म लेती है। लेकिन जन्म लेने के बाद अज्ञान के कारण कर्त्तव्यों का ऋण चुकाना वैसे ही बाकी रह जाता है और मनुष्य और कर्म जोड़ लेता है। उसके कारण जो 'प्रवास' यानि यात्रा थी, वह 'प्रवाह' यानि धारा बनती है और मनुष्य उसकी गति में बहता जाता है। वास्तव में, "गतकाल में जो हुआ उसकी पुनरावृत्ति जन्म प्राप्ति के बाद ना हो, इसलिए जन्म लेने के बाद कर्म का ऋण चुकाना आवश्यक है," यह जब मनुष्य समझ जाता है, तभी श्रीगुरू उस मनुष्य को प्रवाह से छुटकारा दे सकते है। इसी का अर्थ 'सद्‌गति' है। ऐसी सद्‌गति प्राप्त न होने के कारण ही मनुष्य की अनेक जन्मों तक इहलोक और परलोक की यात्रा जारी रहती है। और उसके कारण उसके कर्मो में इतनी बढ़ोतरी हो जाती है कि जन्म प्राप्त

होने के बाद जो कर्मो की लेनदेन शुरू हो जाती है उससे मनुष्य को छुटकारा नहीं मिल सकता और इस जन्म का ज्ञान प्राप्त होने के बजाय ज्ञान की कमी रहती है। ऐसी अवस्था में, आत्मा की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है। क्योंकि देहिक अवस्था इतनी जड़वादी (उपभोग लेनेवाली) होती है कि मनुष्य को दया, क्षमा, शांति ये शब्द सुनाई नहीं देते हैं। ऐसी अवस्था प्राप्त होने के बाद जब उसकी मृत्यु हो जाती है तब उसके मरने के बाद भी उसकी वह अवस्था जिंदा ही रहती है। ऐसे मनुष्य की मृत्यु के बाद भी वासनाओं से मुक्तता नहीं होती है। मृत्यु के बाद भी वासनाएं बाकी रहने के कारण उसे फिर से जन्म लेना पड़ता है। ऐसे भवचक्र में जो आत्मा बंध जाती है, उसकी मुक्तता कब मुमकिन है ? यदि आत्मा को, 'स्वयं मुक्त हो' ऐसी इच्छा हो गई तो भी केवल देवतार्चन, पोथी के पाठ, पूजा, अर्चना इत्यादि सेवा से आत्मा की मुक्तता नहीं होती है। हम दिन में केवल एक घंटा ईश्वर के साथ रहते है। बाकी रहा पूरा दिन हमारा समय कर्मरूपी राक्षस के साथ यानि वासनाओं के साथ गुजरता है। जब उन वासनाओं से मुक्तता होगी, तभी हमें ईश्वर के वास का और ईश्वर के अस्तित्व का लाभ कैसे प्राप्त करना है, यह समझ आएगा। श्रीगुरू ने यह तत्वज्ञान बता कर उसका प्रत्यक्ष अनुभव भी मुझे दिया। इतना ही नही तो औदुंबर तीर्थक्षेत्र में सैकड़ों सालों से मुक्तता की प्रतीक्षा कर रहे सैकड़ों जीव और जीवात्मा मुझे दिखाए और आखिरकार मुझे यह आज्ञा दी कि "तुम्हे जो कार्य करना है वह इह् जगत् के लिए पच्चीस प्रतिशत और परलोक में आगे की अवस्था प्राप्त न होने के कारण प्रतिक्षा कर रहे आत्माओं की मुक्तता के लिए पचहत्तर प्रतिशत करना है। ऐसा जो मार्ग है वही' वंशविमोचन' है। आज जो लोग जन्म ले चुके हैं, उनके कोई न कोई संबंधी वंश अवस्था में बाकी रहे हैं। उनको सद्गति प्राप्त न होने के कारण मनुष्य को जो तकलीफें उठानी पड़ती हैं वे तकलीफें दूर होकर उनकी जगह मनुष्य को सुख शांति समाधान की प्राप्ती होना, यह 'वंशविमोचन' है। तुम्हें दिखाई देने वाले जगत् में जो दुख है उस दुख का मूल परलोक में है। और परलोक के बारे में ज्ञान प्राप्त करने से ही उस दुख का निवारण प्राप्त होगा। इसलिए जो साधन सिद्ध करना है, उसका संबंध परलोक से होना आवश्यक है।"

एक दिन भोर के समय हमेशा की अपेक्षा जरा जल्दी उठकर, प्रातः विधि करके मैं स्नान के लिए नदी किनारे गया। वहाँ का दृश्य आज भी याददाश्त् के रूप में मेरी आँखों में बसा हुआ है। नदी का जो किनारा था वहाँ हमेशा की अपेक्षा, समय से पहले ही मैं स्नान के लिए गया। तब मैने देखा कि वहाँ लाखों आत्माएं मेरे आने का इंतजार कर रही थी। मेरे वहाँ जाने के बाद सबने गर्जना की, "श्रीगुरूदेवदत्त! हमें इस नर्क यातना से मुक्ति दीजिये " हम सैकड़ों सालों से अपने कर्मों का प्रायश्चित भुगत रहे है लेकिन हमें यह श्रद्धा थी कि एक न एक दिन यह सुनहरा अवसर जरूर आएगा। आखिरकार श्रीदत्तप्रभू को हम पर तरस आया और आपका यहाँ आगमन हुआ। अब हमारा जन्म कृतार्थ हुआ है। हे प्रभु, अब हमें फिर से जन्म नहीं चाहिए। अगर हमें देह होता तो हमारे देह की यातना (दुख) देख कर दुनिया को हम पर दया आती लेकिन अब हमें देह नहीं है और इसलिए सारे कष्ट हमारी आत्मा को हो रहे हैं और ऐसे कष्ट सहते सहते हम सैकड़ों सालों से प्रतिक्षा कर रहे हैं। सामने गंगा है लेकिन उसमें स्नान कर सकें इतना हमारा पुण्य नहीं हैं। आप अपने स्नान के बाद श्रीदत्तमहाराजजी का यह तीर्थ हम पर सिंचित कीजिए (छिड़किये) उससे अधिक मुक्ति क्या हो सकती है? जो कार्य भगीरथजी ने किया वही कार्य आज आपको करना है। आप उस कार्य में हमें भी शामिल कीजिए। तथास्तु। श्रीगुरूदेवदत्त !"

यह दैनिक आचरण हर रोज मेरे हाथों नित्य नियम से होता रहे यह श्रीगुरू का संकेत था। उसका अर्थ यह था कि मेरा देह 'मध्यस्थ 'बनने के लिए योग्य हो जाए तो ही 'परकाया प्रवेश' यह साधना साध्य होगी। इसके पूर्व लिखे अनुसार परमपूज्य हाजी मलंग बाबा ने मुझे यह आज्ञा दी थी कि 'तुम अपने मामाजी से मिलकर, मैं जिस भाषा में बोल रहा हूँ वह उर्दू भाषा सीख लो'। लेकिन मैंने उनसे एक दिन प्रार्थना की कि, 'अगर मैं यह उर्दू भाषा सीखने लगा तो बहुत समय लगेगा और यह भाषा सीखने के लिए उतना समय कहाँ है? इसकी अपेक्षा अगर आप मराठी बोलेंगे तो वह आपके लिए नामुमकिन नहीं है और फिर बाद में, मैं भी धीरे धीरे उर्दू भाषा बोलने लगूंगा"। उन्होनें यह प्रार्थना स्वीकार की। एक

दिन मेरे मामाजी के घर उनका आगमन हुआ। उस दिन उन्होनें मेरे मामाजी को उनकी इच्छा के बारे में सब कुछ बताया। उन्होंने कहा कि," इस कार्य से परलोक का ज्ञान होगा। हम विभूति जिस कार्य में शामिल होंगें वह कार्य भविष्य में इस प्रकार होगा कि," आज यह सब जगत् जो अस्तित्व में है वह जगत् अंधश्रद्धा से पूर्वजों के आचरण की नकल कर रहा है, जगत के उस आचरण में हम, मूल से, शिखा तक यानि पूर्णतः बदलाव लाना चाहते हैं। यह बदलाव करना इह जगत के हित के लिए आवश्यक है। यह कार्ययोजना हम विभूतियों ने, निश्चित नहीं की है बल्कि यह कार्य यह एक आज्ञा है। इस सृष्टि का जो नियंता है उसकी यह इच्छा है कि इस जगत का अधःपतन न हो। मनुष्य ने कितनी भी अज्ञानी अवस्था में जन्म लिया हो तो भी ईशतत्व सज्ञानी होता है। उस तत्व ने कृपा की तो भेद नष्ट होकर नर नारायण बनेगा। आज इस जगत् का इतना उत्कर्ष (प्रगति) होकर भी मनुष्य पिछड़ा हुआ है। फिर जो मनुष्य इस तत्व की प्राप्ति करना चाहता है उसने अपना देवधर्म, जातपात, 'मैं फलां धर्मका' आदि विचारों के अनुसार पूर्वजों के आचरण की नकल करने से इस जगत् की उत्क्रांती नहीं होगी। सिर्फ मानव और मानव का जीवन यानि 'मानवी जीवन' ऐसी परिभाषा जब तक निर्मित नहीं होती, तब तक इस जगत् को सुख शांति नहीं मिल सकेगी। ईश्वर ने मनुष्य को जन्म के समय उनके स्वयं के आकृति (आकार) जैसी आकृति (आकार) बना कर जन्म दिया है। लेकिन मनुष्य ईश्वर की कृति (आचरण) नहीं करता हैं, वह राक्षसो की कृति करता है इसलिए जगत् दुखी है। अतः सैकड़ों सदियों तक मनुष्य जन्म की प्राप्ती होकर भी मनुष्य गुलाम हुआ है। मनुष्य जब तक इतनी ही गीता पढ़ता रहेगा कि, 'कर्मों के कारण जन्म होता है 'तब तक उसकी मुक्तता नहीं होगी। इसके बाद इस तत्व ज्ञान में यह बदलाव होना आवश्यक है कि, "मुझे धर्म के लिए जीवन प्राप्त हुआ है कर्म के लिए नहीं'। मेरे हाथों धर्म की सेवा होती रहे। कर्म की गीता पढ़ना बंद होकर मेरी वाणी से जगत् के कल्याण का गीत कब गाया जाएगा यह आस मुझे लगी है और उसके लिए ईश्वर मुझ पर कृपा करेंगे ऐसी सद्‌बुद्धि मुझे दीजिए। ऐसा बदलाव जगत् के तत्वज्ञान में हो यह हम सब विभूतियों की इच्छा है। इसके लिए सबका सहकार्य है। जगत् का कल्याण हो इस व्रत

का यदि तुम पालन करोगे तो इस कार्य के विरोध में कोई भी शक्ति नहीं आएगी यह ध्यान में रखो। यह ईश्वर की आज्ञा है। इसमें जाति भेद, अलग अलग धर्म इनका बीज मत बोना। यदि इसके अनुसार हमने आचरण नहीं किया तो इसी बद्दुआ का असर हमें भुगतना पड़ेगा''।

8. कर्म विमोचन
गुरूअंश प्राप्ति

'वंशविमोचन' के बाद का, यह दूसरा अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है 'कर्मविमोचन'। कर्म के जो परिणाम भुगतने पड़ते हैं वे इस प्रकार हैः– पिछली कुछ सदियों में जिस मनुष्य का निर्माण हुआ और उस मनुष्य में जो दोष निर्माण हुए उनका विचार सूज्ञ लोगो ने नहीं किया इसके कारण 'सुख' में बढ़ौतरी होकर भी शांति का निर्माण नहीं हुआ। मनुष्य के एक मार्ग की प्रगति हुई लेकिन क्या वह सुखी हुआ? सुख के मार्ग के साधनों का आविष्कार हुआ, सुख का आविष्कार हुआ फिर भी क्या मनुष्य सुखी हुआ ? यह सवाल आज दुनिया के सामने खड़ा है। केवल ऐहिक जीवन में ही सुख की प्राप्ति में अधिकाधिक बढ़ोतरी हो रही है इस बात का कारण, इस बात का मूल रहस्य, विश्व में अन्य जगह ढूंढने से नहीं मिलेगा। इसका मूल कारण मनुष्य में ही है। बाजार में जाकर मांगने से एक किलो शांति समाधान नहीं मिलता है। यह अवस्था बाजार में बेची नहीं जाती है। यदि इस अवस्था की खोज की गई तो यह समझ आएगा कि इस अवस्था की कमी मनुष्य के काया वाचा मन इस मूल देह में ही होती है। आज गरीब आदमी, लखपती आदमी से गरीब नहीं है, बल्कि वह अमीर है क्योंकि गरीब आदमी का जीवन परिपूर्ण है और लखपती आदमी का जीवन अपूर्ण है। आज अगर यह पूछा गया कि 'जग को क्या चाहिए'? तो लोग सुख के पहाड़े दोहराएँगे! वैसे ही लोग अधिकाधिक ऐहिक प्राप्ति कैसे होगी इसकी खोज करते है लेकिन इस जगत् के बहुत से लोगो में क्या कमी है इस बात का विचार कोई नहीं करता है। जब मूल जन्म की धारणा होती है, तब उसमें जो कमी रहती है वह अवस्था कोई समझता नहीं है। आज वैज्ञानिक लोगों ने सब आविष्कार करके हर एक को मीटर (यन्त्र) लगाया है लेकिन वे स्वयं के जन्म का हिसाब लगाना भूल गए है।

जो कोई जन्म लेता है उसे स्वयं के जीवन का इष्ट कार्य करने के लिए जैसे काया वाचा मन की आवश्यकता है वैसे ही उन्हें स्थूल देह, सूक्ष्म

देह और कारण देह इनकी जोड़ भी आवश्यक है। हमारे अनजाने में ही इन छह माध्यमों से जो परिपूर्ण क्रिया होती है वह क्रिया 'विचार' है और यदि देह द्वारा इन छह माध्यमों से हुई क्रिया परिपूर्ण नहीं होगी तो उस क्रिया को ' विकार ' कहा जाता है।

''हमारे जन्म के समय ही हमारे बिना मांगे ये छह माध्यम ईश्वर ने हमें दिए है। उनका मूल्य अनमोल है। ईश्वर की यह देन हमें दुबारा प्राप्त नहीं होगी ''इसके अहसास से इन माध्यमों का योग्य उपयोग करना इतना ही हमारा कर्त्तव्य है। सभी के जीवन में, भेंट (मिलना) क्षणिक होती है और गांठ भेंट (मिलाप) हो जाती है। वास्तव में जिसने यह जन्म दिया उसका वह ऋण चुकाने का कर्त्तव्य यही है कि, ''मुझे मेरे इस अत्यंत मूल्यवान जीवन को साकार करना है, उसकी कृपा से मेरे इस जीवन को आकार प्राप्त हो '' ऐसी लगन सदैव लगी रहे। जो सुख यही छोड़ कर जाना होता है उस सुख की हमें आस है तो भी ' हमारा आखिर (अंत) अच्छा हो' यह इच्छा हमें सदैव करना आवश्यक है।

देह के, ''स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देह, काया, वाचा और मन'' ये जो छह अंग है उनमें से चार अंगो का उपयोग करना यह इस जन्म की सार्थकता के लिए आवश्यक है। इनमें से कारण देह और मन ये दो अंग पिछले जन्म में थे, इस जन्म में है और अगले जन्म के लिए भी वे दो अंग आवश्यक है तथा इस जन्म के लिए आवश्यक चार अंग, ' स्थूल देह, सूक्ष्म देह, काया और वाचा ये है। इन चार अंगो से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरूषार्थो की प्राप्ति होना आवश्यक है और बाकी अन्य दो अंग जो मन और कारण देह है उनसे इस जन्म की मुक्तता कर लेना, आवश्यक है। ऐसा यह देह धर्म निसर्ग ने (प्रकृति ने) निश्चित कर दिया है। आज कुछ सदियों से मनुष्य अत्यंत हीन (नीचे के) स्तर पर जी रहा है। उसका खुद का अपने आहार, उच्चार और विचार इन पर काबू नहीं है और उसे ऐसा लगता है कि खाना, पीना, कपड़ा और ऐश आराम ही जीवन है। "क्या आज यह चारों ओर बेफिक्र होकर बर्ताव करने वाला मनुष्य ही गत काल का मानव है ?" यह सवाल सूज्ञ लोगो के सामने है।

आज का यह दृश्य देख कर मनुष्य के जन्म पर तरस आता है। साधु संतो ने अपने स्वयं के जीवन का बलिदान देकर जन्म लेने वाले मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाया है और ' इस सन्मार्ग से जाने से जीवन सार्थक होगा ' यह गर्जना करके लोगो को बताया है। लेकिन उस काल में स्वयं को 'सूज्ञ' कहने वाले, आज पश्चाताप से यह कह रहे है कि, ' हमने अंहकार के कारण उस समय उन साधु संतो की निंदा की थी फिर भी उन संत पुरूषों ने अपने मार्ग का त्याग नहीं किया। आज उन साधु–संतो के मार्गदर्शन की इतनी कीमत है कि मनुष्य दस बार जन्म लेकर भी उनकी इस धरोहर का ऋण नहीं चुका सकता है। आज समाज की स्थिति की ओर देखते हुए यह लगता है कि, "समाज को हुआ यह रोग क्षय रोग से भी महा भयंकर रोग है और वंशपरंपरा, देव धर्म, नीति, न्याय व राष्ट्र आदि समाज के मूल्यवान तत्वों की बली लेकर ही यह रोग शांत होगा, पर कब ?" इसी प्रश्न में यह जगत् डूब गया है। इस जगत् में जो दूसरे को डूबने से बचने का उपाय बता रहा है उसके पैरो तले क्या है ? अपना नाश ! ऐसी भीषण परिस्थिति को देखकर ही श्रीगुरू ने ' कर्मविमोचन' यह साधन सिद्ध करने के लिए कहा था।

किसी भी मनुष्य को जन्म लेते समय काया वाचा मन यह त्रिपुटी (तीनों की एकरूपता) होना आवश्यक है। आत्मा को जन्म प्राप्त करने से पहले काया की प्राप्ति कर लेनी होती है। गर्भावस्था में हड्डियाँ, मांस, मज्जापेशी और मज्ज़ा तंतु इनसे काया की धारणा का आरंभ होता है। प्राप्त जन्म के हड्डियों का संबंध पिछले जन्म से होता है और हड्डियां ये पिछले जन्म को आकार देने की नींव होती है। मतलब ये हड्डियां पिछले जन्म में चाहे देव, मानव या दानवों की होंगी लेकिन अब इस जन्म में उनकी आवश्यकता यह है कि उनकी नींव पर इस जन्म के जीवन का मंदिर बनाना है। गर्भधारणा में जीव का पालन पोषण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जो आत्मा जन्म लेती है, उसको इस जन्म में पचास से पचहत्तर साल तक का जो जीवन व्यतीत करना है उसका प्रबंध गर्भधारणा के समय माता का आहार, उच्चार और विचार पर निर्भर होता है। पहले जमाने मे जन्म की धारणा संस्कारों से होती थी लेकिन आज किसी को भी उन संस्कारों की

चाहत नहीं है। इसलिए यदि जन्म लेने की इच्छा 'जीव' में धारण हुई तो भी संस्कारों के बिना, जिस बीज की धारणा मानव में होना आवश्यक होता है उस बीज की धारणा मानव में नहीं होती है। आज जन्म प्राप्ति, कर्मो के कारण है और देह में कर्मो की धारणा होती है लेकिन जन्म के समय संस्कारों से धर्म के बीज की धारणा होना आवश्यक होता है वह न होने से हमारे अज्ञान के कारण ' वंशपरंपरा' नष्ट हो गई है। समाज में या परिवार में लोग जन्म लेते है और जीते हैं। लेकिन पिछली कुछ सदियों से संतति में वंशपरंपरा के जो भाग नजर आते थे वे अब नजर नहीं आते है। इसके कारण प्रत्येक पीढ़ी में जन्म के बाद आचार, विचार और उच्चार भिन्न भिन्न होने लगे है, जिसके कारण मानवी जीवन में कोई एकसूत्रता नजर नहीं आती है। इसके अलावा 'जन्म प्राप्ति के समय, "वाचा और मन इनका उच्चार और विचारों से संबंध होना" यह संपत्ती हमें आनेवाली पीढ़ी को प्राप्त करा देना आवश्यक है। मनुष्य के इस जन्म के देह के हड्डी मांस आदि से गतकाल के पीढ़ीयों का संबंध होता है। इस सत्य को आज विज्ञान ने मान्य किया है। इसी का अर्थ, ' अनुवंशिकता ' को वैज्ञानिकों ने मान्यता दी है। अच्छे गुणो से युक्त जन्म प्राप्त होना यह निर्माण करने के लिए 'सेवा' करना आवश्यक है। लेकिन ऐसे गुण निर्माण न होने के कारण मनुष्य को संपूर्ण जग से 'ईर्षा' होने लगती है क्योंकि मनुष्य के जन्म की धारणा हड्डियों पर निर्भर होती है। इसलिए श्रीगुरू ने यह आशीर्वाद दिया है कि, ' भविष्य में जन्म लेने वाले मनुष्य को 'अंश' होकर जन्म लेना हितकर है। मनुष्य को 'वंश' अवस्था में जन्म लेना हितकर नहीं है। इसके लिए हम सबको श्रीगुरू से जिस साधन का लाभ हुआ, उनके उन उपकारों का ऋण हम कभी नहीं चुका सकेंगे।

मूल मानव के इस तरह से निर्माण के बाद समाज में उसे भीषण परिस्थिति का सामना न करना पड़े, इसलिए 'वंशविमोचन 'साधन से जन्म लेने की मूल अवस्था ही कृपाशीर्वाद से बदल दी गई है। पहले जन्म लेते समय मूल धारणा प्रथम काया और वाचा और आखिर में मन की थी। मतलब उसमें काया और वाचा प्रमुख और मन दुय्यम ऐसी अवस्था थी। इस अवस्था के कारण जन्म लेकर भी अपना ईष्ट (योग्य) कर्त्तव्य करने की

इच्छा किसी को नहीं होती थी बल्कि जीवन का अधिकाधिक उपभोग लेने के लिए औरों को 'इस्तेमाल करना' जारी रहा है, इसलिए अब जन्म की मूलधारणा में यह बदलाव किया है कि मन को प्रमुख करके काया और वाचा को दुय्यम किया गया है। पहले जमाने में सत्कर्म संचित करना (सत्कर्मो का संचय करना) ऐसा जो कहा जाता था उसमें बदलाव करके सत्कर्मो का सेवन (पूर्णतः स्वीकार–अंगीकार) करके उसका सद्‌उपयोग जन्म लेने के लिए अगली पीढ़ी को होना आवश्यक है। इस जन्म में एक बार गुरू भेंट हुई है तो वह भेंट हमें जन्म जन्म तक सहायता देने वाली है इतना आत्मविश्वास खुद में निर्माण करना आवश्यक है। देवधर्म और दानधर्म ये सत्कर्म केवल स्वयं मुक्ति पाने के लिए है इतना संकुचित विचार न करके इन कर्त्तव्यों द्वारा हमें दुखी लोगो की विपत्ति और अज्ञान से मुक्तता करनी है ऐसे पर–उपकार का (परोपकार का) विचार अब हमें दृढ़ करना चाहिए।

प्रथम अवस्था में आप भक्तों ने इस कार्य का लाभ खुद की कठिनाईयां दूर करने के लिए किया था। उस समय 'सुख की प्राप्ति' कैसे होगी इस विषय को ध्यान में रखकर, बार बार केन्द्र पर आकर आप सवाल पूछते रहते थे और आपके जीवन के प्राप्त हुए सुखों का विचार न करके, इस प्राप्त जीवन में किन किन सुखों की कमी है ? यह खोज करने के लिए आप केन्द्र पर आते थे। मनुष्य कठिनाईयाँ लेकर गुरूमार्ग में आता है तो भी श्रीगुरू को उसके जीवन के कर्मों का ज्ञान होता है और उसके अनुसार वे उस मनुष्य को मार्गदर्शन सूचित करते है। इसलिए यदि भक्त का सवाल निरर्थक हो तो भी उस सवाल को निमित्त बनाकर श्रीगुरू भक्त को यह बताना चाहते हैं कि उसके जीवन का क्या 'अर्थ' है ? इसका मतलब 'बिना मांगे सुख प्राप्ति के मार्ग का लाभ आपको हो और भविष्य में आपके बाल बच्चों को भी, उसका लाभ प्राप्त हो' ऐसा कृपाशीर्वाद श्रीगुरू ने आपकी ओर दिव्य दृष्टि से देख कर आपको दिया है।

9. साधक का कर्त्तव्य–
कर्मविमोचन

विपत्ति के कारण जब आप कार्यकेन्द्र पर उपस्थित हुए तब, 'आपकी अवस्था क्या थी ?' यह श्रीगुरू ने देखा था। वह विपत्ति चाहे क्षणिक हो या गंभीर स्वरूप की, उसके लिए आपको संरक्षण देकर श्रीगुरू ने समय समय पर आपकी विपत्तियों का निवारण किया है। इन विपत्तियों के निवारण के लिए आपको जो कुछ निश्चित सेवा सूचित की गई थी, उसकी वजह से आपके जीवन में जो कमी थी वह कमी पूरी हो गई। अपने जीवन का उपभोग लेते हुए भी आपके अपने इस जीवन में क्या कमी है ? इसकी ओर झाँका तक नहीं था। इसके विपरीत, औरों को हमसे अधिक सुख की प्राप्ति हुई है और उनके जैसा सुख हमें क्यों प्राप्त नहीं होता इसी विचार से आप कार्यकेन्द्र पर आ गए। उस समय ऐहिक सुख की प्राप्ति का जो विचार आप कर रहे थे, उसकी अपेक्षा यदि आपने स्वयं को यह सवाल किया होता कि, 'मुझ में क्या कमी है ?' तो आपको अधिक लाभ हो जाता। गुरूमार्ग में भक्तभाविक, समय समय पर गुरूमाध्यम का लाभ लेने आते हैं, तब उनको यह समझ लेना आवश्यक है कि, "गुरूमार्ग में उनका स्वयं का क्या कर्त्तव्य है ? और आने वाले भक्तों के प्रति श्रीगुरू का क्या कर्त्तव्य है ?" वरना समय समय पर गुरूवाणी से भक्तों के बारे में जो निवेदन या भविष्य कथन होता है उसकी प्रचीति का अनुभव न आने के कारण बहुत से लोग बिना वजह इस मार्ग पर दोष लगाते हैं। भक्त यह न सज्ञानी और न अज्ञानी ऐसी अवस्था में होता है। ऐसे समय श्रीगुरू को उनके बारे में छोटा बड़ा, गरीब अमीर, ज्ञानी अज्ञानी ऐसा विचार न करते हुए उनके संबंधित इष्ट कर्त्तव्य करके उसे उसके जीवन की कमियां और अधिकता के बारे में स्पष्ट शब्दों में कहना आवश्यक है, नही तो भक्त का मूल्यवान जीवन व्यर्थ होकर ' न घर का न घाटका ' ऐसी उसकी अवस्था हो सकती है। भक्तों को जो भी कुछ प्राप्त होने वाला है वह परमेश्वर के अधीन है। वह सामर्थ्य और किसी में नहीं होता इसलिए भक्त को फलां चीज प्राप्त होगी, ऐसी आशा दिखाकर फुसलाना गलत है, बल्कि साधक

को सर्वप्रथम गुरूकृपाशीर्वाद की प्राप्ति का मार्ग भक्त को दिखाने का कर्त्तव्य करना आवश्यक है।

जगत में अनेक जगह अनेक साधक भक्तों को मार्गदर्शन करते रहते हैं, अतः विपत्ति के कारण कार्यकेन्द्र पर उपस्थित होते समय भक्तों के मन में अन्य जगह चल रहे कार्य की कार्यपद्धति के बारे में विचार आते हैं। लेकिन यह मार्ग अन्य मार्गों से सर्वथा अलग है। भक्तों की विपत्तियां, भूत वर्तमान भविष्य इन कालों पर निर्भर नहीं होती हैं। इसलिए मार्ग में पहले ही स्पष्ट लफ्ज़ों में यह स्पष्टीकरण किया जाता है कि, ' यहाँ भविष्य नहीं कहा जाता'। जीवन में विपत्ति या सुखदुख जैसे आते हैं वैसे जाते भी हैं, लेकिन विपत्ति का आना और जाना इसके बीच का काल दुखदायी है ऐसा ही हम सोचते रहते हैं इसलिए इस काल में हमें क्या लाभ प्राप्त होता है इसकी ओर हम ध्यान नहीं देते हैं। वास्तव में विपत्ति या दुख इनका निवारण करना श्रीगुरू के लिए बहुत आसान है लेकिन विपत्ति के कारण तंग आ जाने के बाद हम श्रीगुरू की खोज करने लगते है और खोजने से श्रीगुरू का शोध पूर्ण नहीं होता है। इसकी अपेक्षा यदि हम यह विचार करें कि हमें गुरूमार्ग से क्या बोध लेना है ? तो हमारे जीवन में 'बोधामृत' की वर्षा होगी।

आप भक्तों को जो 'गुरूमार्ग' बताया है वह 'तत्वज्ञान' है। साधक अवस्था में इस तत्वज्ञान का रूपांतर सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में होना आवश्यक है। इसलिए इस तत्वज्ञान का विषय केवल शब्दिक होना उचित नहीं है। जैसे 'वंशविमोचन' और 'कर्मविमोचन' ये दो अलग अलग विषय और उनके कार्य इनका तत्वज्ञान में संपूर्ण स्पष्टीकरण करने से ही उनके लाभ का प्रत्यक्ष अनुभव मानवी जीवन में प्राप्त नहीं हो सकता। उसके लिए इस तत्वज्ञान का शोध लेकर उसका बोध भक्तभाविकों को देना आवश्यक है। वैसे ही जिस तत्वज्ञान का शोध लिया गया उसके बारे में यह कहना उचित नहीं कि, 'यह साधना मैने की है'। आज सृष्टि में अनेक आविष्कार किए गए है, लेकिन वे अविष्कार आज ही नहीं किए गए बल्कि हजारों साल पहले इस प्रकार के आविष्कार सिद्ध किए गए थे यह सर्वज्ञात है।

"कोई भी साधना सिद्ध करने के लिए साधक अवस्था में उस साधक की देहिक और आत्मिक इन दो अवस्थाओं का उसके नामी तत्व (गुरूतत्व) के साथ एकरूप होना आवश्यक होता है इसका मतलब उसके देहिक माध्यम का 'मध्यस्थ' बनना आवश्यक है ऐसा परम पूज्य बाबा ने पहले ही मुझे बताया था। उनके इस मार्गदर्शन के अनुसार जब मुझे इस अवस्था की प्राप्ति हुई तब बाबा ने मुझे यह चेतावनी दी कि, "इस अवस्था के कारण तुम भूत भविष्य व वर्तमान यह सब समझ सकोगे लेकिन वह क्षणिक लोभ है। भविष्य के अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य के लिए तुम्हारा देहिक माध्यम योग्य बनना आवश्यक है इसलिए भूत, भविष्य व वर्तमान इन तीनो कालों के बारे में कुछ कथन करने का पाप तुम मत करो। तुम्हें साधक अवस्था में इसके आगे की "स्थल काल और समय इनका ज्ञान होना" यह अवस्था प्राप्त करनी है और उस अवस्था से जगत् की कार्ययंत्रणा में अदल बदल करनी है। ऐसी अदल बदल सृष्टि में हुई तो ही मनुष्य को सुख शांति समाधान का लाभ होगा। इसलिए आज भविष्य बता कर उसमें केवल भविष्य कथन करना इससे भविष्य न कहना ही बेहतर होगा।

गुरूमार्ग में क्या प्राप्त करना है? इसका ज्ञान सर्वप्रथम होना आवश्यक है। हम सब जगह 'दीक्षा' शब्द सुनते हैं। लेकिन दीक्षा की जिम्मेदारी श्रीगुरू की होती है, और केवल "गुरू आज्ञा का पालन करना" यही भक्तों का कर्त्तव्य है। उपासना दीक्षा, नामस्मरण दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा, गुरूदीक्षा, कारण दीक्षा, महाकारण दिशा ये जो गुरूमार्ग की दीक्षाएं है, इन दीक्षाओं का कार्य क्या है और उन दीक्षाओं का संबंध कहाँ से है यह समझ लेना आवश्यक है। इस दीक्षा विधि का आरंभ ढ़ाई हजार साल पहले हुआ है और समय समय पर जिस जिस दीक्षा की आवश्यकता थी उसके अनुसार उन दीक्षाओं की सिद्धता की गई है। श्री गोरक्षनाथजी का देहिक माध्यम भस्म से निर्माण हुआ इसलिए उनमें काया, वाचा, मन इन तीन तत्वों की कमी थी और, श्रीमीननाथजी का जन्म वासना से होने के कारण उन्हें धो डालने की जब आज्ञा हुई तब श्रीगोरक्षनाथजी ने श्रीमीननाथजी की चमड़ी निकालकर धोकर सुखाने के लिए टांग दी थी। जगत् में आने वाले कठिन काल में समाज 'अनाथ ना हो' इसलिए ईश्वर ने नवनारायणों

को (नवनाथों को) जन्म देकर लोगो को सनाथ किया और उस कार्य में अनेक प्रकार की साधन सिद्धता की। यह सब सिद्धता पहले ही की गई है और समय के अनुसार जैसे जैसे उस साधन सिद्धता की आवष्यकता होती है उसके अनुसार साधक माध्यम कार्य करते है। आज विपत्ति आने के बाद जब हम ईष्वर है या नही इस बात का शोध करते है, तब ईष्वर कहते हैं कि 'तुम मुझे आज याद कर रहे हो लेकिन तुम्हारे जन्म के पहले मैं था, आज हूँ और आगे भी तुम्हें मेरी आवष्यकता होगी।'

कार्य के आरंभ में परमपूज्य हाजी बाबा की यह आज्ञा थी कि, 'जगत् के सामने कार्य करो। ' तब मैने ये संवाल पूछे थे कि'' कार्य का मतलब क्या है ?, साधक अवस्था में क्या प्राप्त होना आवष्यक है, जिससे साधक के कार्य को 'कार्य' कहा जाएगा ?, 'कर्म' का पाँच ऋणानुबंधों से किस प्रकार से संबध होता है ?'' जिनका जवाब इस प्रकार है, "कर्म का जीवन में कार्य और उसकी फल प्राप्ति इनका साधक को ज्ञान होना आवष्यक है। कभी कभी कर्म की फल प्राप्ति अनिष्ट होता है। उस समय यह ज्ञात होना आवष्यक है कि कर्म का अस्तित्व होते हुए भी उसे उस समय कार्य करने देना चाहिए या नही। वैसे ही उस कर्म को इष्ट फल प्राप्त हो जाने तक उस भक्त को सेवा सूचित करना महत्वपूर्ण है। इसका मतलब, साधक अवस्था में कार्य इस प्रकार का है कि, कर्म के अनुसार जो होने वाला है उसे न होने देना, या कर्म के प्रवृत्ति के अनुसार कार्य न होने देना। इसके लिए भक्त को कर्मवलय से बाहर निकाल कर उसे गुरुवलय में धारण कराना होता है, वैसे ही जो सेवा सूचित की जाती है वह करना भक्त के लिए मुमकिन है या नही इसका विचार करना भी साधक का प्रथम कर्त्तव्य है। कार्यकेन्द्र यह ' सेवाधाम ' (सेवा का घर) है, आनेवाले भक्तों को सेवा की लगन लगना आवष्यक है, वैसे ही भक्त को सेवा बताने के बाद भक्त से ' सेवाधाम ' (सेवा का घर) न छूटे यह देखने की जिम्मेदारी भी साधक की है।

'कर्मविमोचन' यह साधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह साधन इस प्रकार है :- मनुष्य द्वारा जन्म प्राप्ति करने के बाद उसका संबंध इहलोक और

परलोक इन दो लोको से होता है। मनुष्य के जन्म लेने के पहले आत्मा और कर्म परलोक में होते है, ऐसे समय दो अवस्थाओं के विचार के बाद जन्म प्राप्ति होती है। प्रथम अवस्था में, आत्मा को जन्म प्राप्त करने की इच्छा होती है। दूसरी अवस्था में गत कर्मो की (पिछले जन्मों के कर्मो की) वासनाओं के कारण जन्म प्राप्ति होती है। प्रथम अवस्था आत्मा के प्रवृत्त होने के कारण है। उसमें आत्मा का यह उद्‌देष्य होता है कि पूर्व जन्मों मे हुए अच्छे बुरे कर्मो के बंधन से मुक्तता हो जाए। इस मुक्तता की प्राप्ति जन्म लिए बिना नही होती है। दूसरी अवस्था में गत जन्मों के इच्छावासनाओं के कारण यदि उपभोग अपूर्ण रहने के कारण मृत्यु के बाद भी उपभोग लेने की इच्छा वासनाएं बाकी रह गई तो उन वासनाओं के कारण कर्म, आत्मा को जन्म लेने के लिए मजबूर करते हैं। उस मनुष्य का जन्म उसकी आत्मा की सहज प्रवृत्ति नहीं होती है। जब आत्मा को परलोक से ईहलोक में आना होता है तब उसे तीन ऋणानुबंधो का संबंध जोड़ लेना आवष्यक होता है। ये तीन ऋणानुबंध जुड़े बगैर वह कर्म जन्म का कार्य नहीं कर सकता है। इन तीन ऋणानुबंधों में प्रथम संबंध मातृ पितृ ऋणानुबंध से (माता पिता से) जोड़ना आवष्यक है क्योंकि जन्म प्राप्ति के लिए माता पिता के माध्यम की आवष्यकता है। जन्म के समय देह का, मतलब काया वाचा मन या पिंड इसकी धारणा होते समय जो संस्कार होंगे उन पर कर्म का कार्य निर्भर होता है। गर्भधारणा के समय होने वाले संस्कार या इच्छावासना का छप्पा पिंड पर होता है। इस प्रकार जन्म की धारणा मातृ पितृ ऋणानुबंधो से जुड़ जाती है। मातृ पितृ ऋणानुबंध के बाद इह जगत् में जन्म देने वाले माता पिता के जो आप्त स्वकीय (रिष्तेदार) होते है उनका संबंध भी अनजाने और अनचाहे जुड़ जाता है। इसको शास्त्रों में 'इतरेजन ऋणानुबंध' कहा जाता है। 'इतरेजन' का यह संबंध जीव की धारणा को कुछ भी हित–संबंध जोड़ता नहीं है। उनकी उपस्थिति अनावष्यक रूप से, मतलब बिना मांगे और मानो जान लेने के लिए (हानि करने के लिए) मनुष्य के कर्मो में शामिल होती है।

पूर्व कर्म यह काया वाचा मन से घटित हुआ होता है। उस पूर्व कर्म के जिम्मेदार आत्मा और कर्म होते है और इन दोनो की उपस्थिति इह

जन्म में आवष्यक होती है। पर मातृ पितृ और इतरेजन ये दो ऋणानुबंध जन्म प्राप्ति के समय 'कर्म' के रूप में मनुष्य के कर्म में शामिल नहीं होते है। इसलिए यह जन्म कर्म के अनुसार व्यतीत होते समय कर्म इस अवस्था में न होने के कारण मातृ पितृ और इतरेजन इन ऋणानुबंधों से उस कर्म के कार्य में अटकाव होता रहता है तथा जीवन में इन ऋणानुबंधो की मदद होने की अपेक्षा इनसे अटकाव निर्माण होता है।

मनुष्य के कर्म में प्रबंध होता है, मतलब आत्मा को अपनी मुक्तता कर लेने के लिए आवष्यक कर्म होता है, फिर भी मातृ पितृ और इतरेजन इन दो ऋणानुबंधो के कारण मनुष्य को मोह के आधीन होना पड़ता है। इसलिए मातृ पितृ और इतरेजन इन दो ऋणानुबंधो का हितसंबंध कर्म के रूप में आए बिना मनुष्य उनका लाभ नहीं उठा सकता है। मनुष्य के जीवन में मातृ पितृ और इतरेजन ऋणानुबंधो का लाभ प्राप्त होने के लिए मनुष्य के जीवन में देवादिक ऋणानुबंध जुड़ा हुआ है। देवादिक ऋणानुबंध में मनुष्य के घराने की जो कुलदेवदेवता है उनकी उपासना पूर्वापार (पहले की) पद्धति से की गई तो उस सेवा के लाभ से जीवन में कारणमात्र रहे मातृ पितृ और इतरेजन ऋणानुबंधों का रूपांतर 'कर्म' में होता है, ऐसा प्रबन्ध कुलाचार और कुलधर्म में किया गया है। इस कुलाचार में कुलस्वामीनि और कुलस्वामी ऐसे दो देवता हैं। कुलस्वामीनि (कुलदेवी) का कार्य मनुष्य के जीवन में माता का ऋणानुबंध जोड़ने के लिए, कारण होता है और कुलस्वामी (कुलदेव) का कार्य मनुष्य के जीवन में पिता का ऋणानुबंध जोड़ने के लिए कारण होता है। शास्त्रानुसार ऐसी योजना मनुष्य के जन्म के पहले ही की गई है। जन्म लेने वाले मनुष्य को कर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करना पड़ता है इसलिए मनुष्य के जन्म को 'नरजन्म' कहते है लेकिन यदि संस्कारो से पिंड का पोषण किया गया तो उस का ' नारायण ' होना नामुमकिन नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि, ईष्वर ने हमे जन्म देते समय हम पर जो इतने उपकार किए है कि अपने शरीर का निरीक्षण करने से ही हमें उसका पता चलता है, औरों को हमें उनका बोध करा देने की आवष्यकता नहीं है। हमारे सिर से पांव तक जिन माध्यमों का हम अक्सर उपयोग करते रहते है उन माध्यमों क़े दो दो अंग हमारे बिना मांगे

हमें ईष्वर ने दिए है और इन माध्यमों के अंगो का उपयोग करना ध्यान में रखो, बिना उपयोग किए उन्हें वापिस मत करो ऐसी चेतावनी भी दी है। ईष्वर के दिए इन माध्यमों के अंगो में देह की दाहिनी बाजू यह ' ब्रह्माण्ड' और बांई बाजू 'पिंड' की है और इन दोनो का पोषण होने के लिए अन्ननलिका और श्वासनलिका एक जगह दी है। इसीका मतलब जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में है और जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड मे है। "देह का पोषण अन्ननलिका द्वारा लिए अन्न और पानी से और आत्मा का पोषण श्वसननलिका द्वारा लिए वायु और आकाषतत्व से," इस नैसर्गिक धर्म के अनुसार होता रहता है। ये चार तत्व जुड़ने से शरीर के मध्य भाग में तेज प्रगट हो ऐसी धारणा है। यानि तब 'नर से नारायण' की यह क्रिया पूर्ण होती है। लेकिन जन्म लेने के बाद हम इस तरह जीव का पालन पोषण नहीं करते है, बल्कि केवल पिंड़ का पालन पोषण करते है। ईष्वर द्वारा हम मानवों की इतनी अच्छी रचना करने पर भी उन अंगो का या माध्यमों का योग्य रूप से सद्उपयोग नहीं किया जाता। यह जन्म फिर से प्राप्त होगा या नही यह कहा नहीं जा सकता है इसलिए "जो संस्कार होना आवष्यक है वे संस्कार योग्य समय पर कर लेना हम मानवों का धर्म है और इस धर्म का पालन करना" यह आधुनिक पद्धति का पहनावा और आचार विचार और आहार के कारण यदि हम भूल गए हैं तो भी श्रीगुरू हमें नहीं भूले है। यद्यपि हमारी जन्म प्राप्ति इच्छा वासना के कारण हुई है फिर भी आगे जो मृत्यु हमें प्राप्त होगी वह मृत्युरूप में न आए बल्कि हमें 'अमर' यह अवस्था प्राप्त हो जाए, यह प्राप्ति 'गुरूकृपा' के बिना नहीं होती है। इसलिए गुरूमार्गी होना इसका मतलब ' जेविता खेळिता चित्त दत्तमय झाले 'यानि खाते समय, खेलते समय चित्त दत्तमय (श्री दत्तगुरू के विचारों में लीन) होना आवष्यक है। अपने बेफिजूल ज्ञान के हठ के कारण हम मानवों को यह लगता है कि हमने केवल भोगो का उपभोग लेने के लिए ही जन्म लिया है। फिर भी हमें सुख मिले इसलिए, हम से अन्य कोई साधना न होते हुए भी श्रीगुरू ने हमें श्रीपंतमहाराजजी के पद के अनुसार साधना सेवा कुछ किए बिना ही 'निजधाम' के दर्षन कराए है, यह अवस्था हमें प्राप्त करा दी है, इसीका अर्थ 'कर्मविमोचन' हैं।

10. मानवी जीवन
पांच ऋणानुबंध

इतरेजन ऋणानुबंध से मुक्तता प्राप्त कर लेना यह अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि सौ लोगों में से केवल एक दो लोगो के लिए ही यह ऋणानुबंध उपयुक्त हो सकता है। वास्तव में यह ऋणानुबंध निंदा करने वाले पड़ोसी जैसा होता है और जिससे उससे लाभ प्राप्त कर लेना है। यदि ईष्वर मिलने आए और हमारे कर्म में उनसे मुलाकात लिखी है यानि ईष्वर से मुलाकात होनेवाली है, तो भी यह ऋणानुबंध हमें ईष्वर से मिलने नहीं देगा बल्कि ईष्वर को ही रास्ता दिखाएगा। इतरेजन ऋणानुबंध की मिसाल इस प्रकार है मान लो कि आपको यह इच्छा हुई कि आप अपने घर में अपने हाथों सत्यनारायणजी की पूजा करें, फिर भी आप अपनी इच्छानुसार सत्यनारायणजी की पूजा नहीं कर सकेंगे क्योंकि आपके मन में यह विचार आएगा कि 'लोग क्या कहेंगे' तो ऐसे ये इतरेजन होते हैं। इन इतरेजन को भगाने की अपेक्षा उन्हें प्रेम से विदा करने का जो आसान उपाय शास्त्रों मे सूचित किया है वह है ' वास्तुषांति' । आप जिस घर में रह रहे है उस घर से यानि वास्तु से आपको संरक्षण मिलना आवष्यक है। आज आपकी भावना यह होती है कि, "अपना घर हो, लोग आपकी प्रषंसा करे कि ' इसने घर बनाया है'। घर के लिए आप लाख डेढ़ लाख रुपये खर्च करते है लेकिन जिसके लिए केवल पांच सौ रूपये खर्च होंगे ऐसी वास्तुषांती आप नहीं कराते है और फिर जब आप उस घर में रहने लगते है तब शांति की बहन अषांति हमेषा के लिए आपके हिस्से आती है। मानवी जीवन के पचास प्रतिषत दुख का निवारण इस वास्तुषांती से हो सकता है लेकिन शास्त्र के अनुसार वास्तु की स्थापना ही नहीं की जाती। इसी प्रकार हमारे शरीर में भी ' वास्तु ' है और वह वास्तु हमारे आचार विचार उच्चार इनमें है। वह वास्तु सदैव शांत रहने के लिए किसी और के कहने से नहीं बल्कि खुद की आंतरिक इच्छा से हमेषा नित्य साधना और सेवा करते रहना आवष्यक है।

जन्म के बाद प्रत्येक मनुष्य में इन पांच ऋणानुबंधों का हित

संबंध कम अधिक प्रमाण में होता है। मनुष्यों के जीवन बिताने में जो विषमता नजर आती है उसका मूल कारण किसी की समझ में नहीं आता है और इसलिए भौतिकवाद के, सब मनुष्यों को एक ही स्तर पर लाने की लाख कोषिषों के बावजूद भी मनुष्यों का जीवन एक ही स्तर पर नहीं आ सकता है। जिस मूल तत्व में जीवन धारणा हुई है उसकी उत्पत्ति और कारण समझकर उसके अनुसार जीवन का लाभ प्राप्त करना इस कर्त्तव्य का लाभ केवल पारमार्थिक जीवन में ही प्राप्त हो सकता है, इसका कारण मातृ पितृ और इतरेजन ये ऋणानुबंध है। इन ऋणानुबंधों की आवष्यकता इस जीवन में है भी और नहीं भी। यह सही है कि जीवन जीने के लिए 'कर्म' आवष्यक है और शास्त्रों में इस कर्म संबंधित चर्चा बार बार की गई है, और यदि इन ऋणानुबंधो का हित संबंध मनुष्य के कर्म पर निर्भर है तो उनका विचार करना अत्यन्त आवष्यक है। अगर जन्म प्राप्ति के बाद अपने जीवन के उत्पत्ती का ज्ञान प्राप्त हुआ तो हम इन ऋणानुबंधों का ऋण चुका सकेंगे और इन ऋणानुबंधों को 'भोग' यानि समस्या या 'अड़चन' के रूप में हमें भुगतना नहीं पड़ेगा। "जन्म का ऋण 'कर्त्तव्य' समझकर चुकाना ' यह आसान मार्ग शास्त्रों ने दिखाया है लेकिन यदि हम आँखे बंद करके जीए तो हमें कोई लाभ नहीं होता है। जीवन जीने के लिये और उस जीवन का समाधान प्राप्त हो, इसके लिए हमारा जीवन विकसित नहीं है और ऐसे अविकसित जीवन में केवल अपेक्षा करने से सुख शांति समाधान का लाभ प्राप्त नहीं होता है। इसलिए जो जीवन प्राप्त हुआ है उसका बारीकी से शोध करके, उस शोध से बोध लेकर सर्वप्रथम यह विचार करना आवष्यक है कि मेरे इस जीवन में क्या कमी है और क्या अधिक है। मनुष्य को, उसके सामने सुखों का उपभोग लेने वाले लोगों को देख कर, वैसे सुख प्राप्त करने की इच्छा हुई तो भी उस मनुष्य को वैसी सुख की प्राप्ति उन लोगो का अनुकरण करके नहीं होती है और इसके विपरीत वैसे सुखों के लिए कर्जा लेने से बढ़ते ऋणों के कारण वह सबका ' कर्जदार ' हो जाता है।

आज प्रत्येक मनुष्य देवधर्म का विचार करके उसके अनुसार धर्माचरण करता है। पहले जमाने में खाना पीना बहुत था, समय पर्याप्त

था। इसलिए उस काल में लोगो ने ईष्वर भक्ति और धर्माचरण करने में अनेक तप (1 तप = 12 साल) बिताए लेकिन उस समय उन्हें ईष्वर–भक्ति और धर्माचरण के बारे में यथायोग्य मार्गदर्षन ना मिलने के कारण पचास साल तंक की गई साधन सेवा का लाभ उनके परिवारवालों को या अन्य लोगो को प्राप्त नहीं हुआ। उपासना मार्ग में योग्य मार्गदर्षन प्राप्त होना अत्यन्त आवष्यक है। 'गुरूमार्ग', अंधश्रद्धा का मार्ग नहीं है, तो यह अत्यंत गहराई से, वैज्ञानिक तरीके से समझ लेने का मार्ग है। अगर अब तक गुरू मार्ग का ज्ञान प्राप्त किया होता तो आज जैसी परिस्थिति देखने की नौबत नही आती। मनुष्य के जन्म के पहले केवल कर्म का अस्तित्व होता है। लेकिन जन्म लेने के बाद कर्म के अलावा मातृ पितृ इतरेजन और देवादिक ये तीन ऋणानुबंध मनुष्य के हिस्से में आते है। मनुष्य के जीवन में इन तीन ऋणानुबंधों का संबंध आने के कारण उन ऋणानुबधों में समाए हुए अच्छे बुरे गुण दोष भी मनुष्य के हिस्से में आते है। ऋणानुबंधों में समाए हुए दोषों का विचार उचित समय पर करके उनका विमोचन करना आवष्यक है।' विमोचन' का अर्थ उनका ' निर्मूलन' करना (नाष करना) ऐसा नहीं है बल्कि, "ईष्वर की कृपा से वे ऋणानुबंध अनुकूल करा लेना" यह विमोचन का अर्थ है। अगर ऋणानुबंधों के दोषों का विमोचन नहीं किया गया तो उन दोषों की प्रखरता (तीव्रता) इतनी बढ़ जाती है कि उन दोषों के कारण घराने में विद्यानाष, संपत्तिनाष, संततिनाष आदि दोषों का समावेष होकर देखते देखते मनुष्य के जीवन की परिस्थिति आम आदमी की तरह नहीं रहती। उसे ऐसे लगने लगता है कि ' क्या मैने ऋण चुकाने के लिए ही जन्म लिया है ? ' ऐसे दोषों के विमोचन के साधन, – ' वंषविमोचन ' और ' कर्मविमोचन', ये दो साधन अत्यन्त दुर्लभ (प्राप्त करने के लिए कठिन) है और उन्हे प्राप्त करने के लिए साधक को सर्वसंग परित्याग यानि सबका त्याग करना आवष्यक होता है।

गुरूमार्ग में बहुत से लोग यह कहते है कि, ' हमने बारह साल तपष्चर्या की है '। लेकिन सर्वप्रथम ' तपष्चर्या' इस शब्द का अर्थ समझना आवष्यक है। बहुत से लोग अपने मन से सालो साल कोई सेवा करते रहते हैं और उस सेवा को 'तपष्चर्या' कहते हैं। वास्तव में ऐसी सेवा

तपष्चर्या नहीं तो 'तप' है और इसका अर्थ यह है कि ऐसा मनुष्य ईष्वर या गुरू का भक्त कहलाकर संपूर्ण घरबार को तपाता (तकलीफ देता) रहता है। तपष्चर्या इस शब्द का अर्थ न समझने के कारण, तथा मनुष्य अपने अज्ञान के कारण, समाज में ऐसी इच्छा व्यक्त करता है कि की गई सेवा का लाभ प्राप्त हो जाए। लेकिन तपष्चर्या शब्द का अर्थ समझ आएगा तो सुननेवाले को पसीना छूटेगा और वह गलती से भी इस मार्ग की ओर नहीं जाएगा। 'तपष्चर्या' इस शब्द का अर्थ यह है कि, "गुरू की आज्ञा के अनुसार आचरण करना"। मुझे मेरे जीवन में तप करने की इच्छा नहीं थी तो श्रीगुरू को मेरे माध्यम से तपष्चर्या करा लेनी थी इसलिए परम पूज्य बाबा ने मुझे तीर्थक्षेत्र औदुंबर जाने के लिए कहा। औदुंबर जाने के बाद मुझे जो आज्ञा हुई उसका लाभ भविष्य में भक्तों को प्राप्त हो इसलिए वहाँ 'वंषविमोचन' और 'कर्मविमोचन' ये साधन सिद्ध हुए।

11. परमपूज्य मुहंमद जिलानी बाबा का आगमन– मृत्यु उपरान्त जीवन, कर्म

जीवन के प्रारम्भ में मार्गदर्षन के लिए मुझसे मिलने अनेक लोग आते थे लेकिन उस समय उनसे मिलना व्यक्तिगत (personal) था। ऐसे मिलने से 'मोह' बढ़ता है इसलिए परमपूज्य हाजीबाबा ने यह आज्ञा दी कि, "दुनिया को जो बताना है उसमें किसी व्यक्ति का वैयक्तिक हितसंबंध नहीं होना चाहिए बल्कि की गई सेवा का रूपांतर कार्य में होना आवष्यक है।" 'कार्य' और कार्यपद्धति तुम परमपूज्य जिलानीबाबा से प्राप्त कर लो। उसके लिए तुम्हें सेवा करना आवष्यक है। परमपूज्य जिलानीबाबा का दर्षन और भेंट तुम्हें पहले ही प्राप्त हुई है। परमपूज्य जिलानीबाबा की मज़ार हिंदुस्तान में नहीं है, बगदाद में है। उनके दर्षन के लिए तुम वहाँ गए थे लेकिन उस वक्त तुम्हें यह ख्याल नहीं था कि बाद में इन महान विभूति के कृपाषीर्वाद का संबंध जीवन में आनेवाला है"। परमपूज्य हाजीबाबा के यह कहने के अनुसार उस सप्ताह की गुरूचरित्र की पोथी का मेरा पाठ समाप्त होने के बाद, मैं गुरू आज्ञा से जब मेरे मामाजी के घर गया तब वहां संचार अवस्था में परमपूज्य मुहंमद जिलानीबाबा इन महान विभूति का आगमन हुआ। उस समय परम पूज्य मुहंमद जिलानीबाबा ने यह कहा कि, 'मेरा यहाँ आगमन इसका मतलब यह है कि, "परमेष्वर ने इस कार्य के लिए मुझे नियुक्त किया है"। आपकी तीर्थक्षेत्र औदुंबर में वास्तव्य (निवास) की मुद्दत गुरू आज्ञा से पूर्ण होने के बाद जब आप अपने घर जाएंगे तब मैं आपको योग्य मार्गदर्षन और भविष्य में दुनिया के लिए आवष्यक कार्य स्थापन करने का मार्गदर्षन करुंगा। इस कार्य में महत्वपूर्ण विषय, वंषविमोचन और कर्मविमोचन है। इन विषयों का ज्ञान पूर्णतः प्राप्त करना आवष्यक है ताकि आगे इसके बारे मे किसी भी मनुष्य को, कोई भी आषंका न रहे। यह विषय कितना व्यापक है इसका विचार करो। जन्म लेने वाले हर मनुष्य के साथ ईष्वर होते हैं लेकिन उनका विचार ना करके प्रत्येक मनुष्य, उसके पेट के साथ जो कर्म

होता है उसीका विचार करता रहता है।। ऐसे विचारों के कारण 'मैं अभागी हूँ, अनाथ हूँ' ऐसा सोचकर परमेष्वर को कोसने के अलावा अन्य कार्य इस जगत् में कोई भी मनुष्य नहीं करता है।

परमपूज्य मुहंमद जिलानीबाबा के आगमन के बाद उनके आषीर्वाद से मैने औदुंबर में फिर से वंषविमोचन विषय का अध्ययन प्रारम्भ किया। जैसे पहले ही बताया था उसके अनुसार आत्माओं के बारे में यह स्पष्टीकरण है कि, पिषाच योनी में (भूत योनी मे) जो अनेक आत्माएं भ्रमण करती रहती है, वे आत्माएं देह धारण कर सकती है लेकिन वे पंचमहाभूत तत्वात्मक देह की धारणा नहीं करते है, बल्कि हम मानवों में जो अंषमात्र (जरा सी मात्रा में) अेक्टोप्लाझम (□ctoplasm होता है, वहं लेकर उससे स्वयं का मृत देह फिर से साकार करने की कोषिष करती हैं। इन आत्माओं के अलावा हमारे चारों ओर कुछ आत्माएं ऐसी भी होती हैं जो स्वयं का मृत देह फिर से साकार नहीं कर सकती है। ऐसी आत्माओं का अस्तित्व वलयरूप में हमारे चारो ओर होता है। वह वलय देखने की दृष्टि हमें ना होने के कारण हम वह वलय नहीं देख सकते हैं। वास्तव में जिसे बाधा की तकलीफ है ऐसे मनुष्य के चेहरे पर उस बाधा के लक्षण दिखाई देते है, और उसके कारण उसका चेहरा पहले जैसा ना दिखाई देकर अधिक उग्र, कठोर और अधिक विद्रुप दिखाई देता है। वंषविमोचन यह साधन सिद्ध करते समय यह आवष्यक है कि, "जो दृश्य (दिखाई देने वाली) और अदृश्य (दिखाई न देनेवाली) आत्माएँ है उन सब आत्माओं को, 'मुक्ति प्राप्त करा देना' इसका सर्वप्रथम लाभ होना आवष्यक है।" स्वयं की मुक्तता के उद्देष्य से कुछ आत्माएं इह लोक के मनुष्यों से अेक्टोप्लाझम (□ctoplasm लेकर उसका उपयोग करके लोगों को उनके दिवंगत शरीर का आकार दिखाकर अपना अस्तित्व व्यक्त करती हैं, लेकिन जो आत्माएं वलय रूप में अस्तित्व में होती है उनसे होने वाली पीडाएं और तकलीफ समझ के परे होती है। अगर आत्माओं ने किसी मनुष्य के देह में संचार करके स्वयं अपनी इच्छा वासनाओं के बारे में बताया तो उसके निवारण के लिए मार्गदर्षन किया जा सकता है। लेकिन जो आत्माएं वलयरूप में होती है वे मनुष्य के देह माध्यम में प्रवेष नहीं कर

सकती है। इसलिए वे जिन्हें पीड़ित करना चाहती हैं उनके चारो ओर, घड़ी की गति के विरूद्ध गति में मंडराती रहती है! और उनकी पीड़ा से मनुष्य को हुई आधि व्याधि का निवारण करने के बारे में कुछ समझं नहीं आता है। ऐसी आत्माओं के आचार विचारों के दुष्परिणाम उस मनुष्य पर होने के कारण वह व्यक्ति पिषाच जैसा बोल चाल करने लगता है। इस संबंध में पूर्ण अध्ययन करना यह भविष्य में लोगो के लिए हितकर होगा और इसलिए इस साधन की प्राप्ति ईष्वर की प्राप्ति से भी बढ़ कर है ऐसा कहा जा सकता है।

मरण के उपरान्त के जीवन में आत्माओं का जो जीवन होता है उस जीवन का अध्ययन आज तक किसी ने भी नहीं किया है। इन आत्माओं की योनि को (अवस्था को) 'पिषाच योनि' कहा जाता है पिषाच का (भूत का) मतलब यह है कि मरण के उपरान्त भी जिसकी इच्छा वासना बाकी रही है ऐसी आत्मा ! पिषाच योनि केवल कल्पना पर आधारित नहीं है बल्कि पिषाच योनि सत्य है, इसलिए इस योनि का अध्ययन एक शास्त्र के रूप में होना आवष्यक है। जो मनुष्य जन्म लेता है, जीवन व्यतीत करता है, उसके मरने के बाद केवल बारह दिन अषौच्य का (अछूत का) पालन कर, उसके श्राद्ध विधि करके, "उसके पिंड को कौवे ने छू लिया, "यह कह कर हम स्वयं को उस मृत व्यक्ति से छुड़ा लेते है। मिसाल की तौर पर यह देखिए कि एक मनुष्य जन्म लेता है और उसके बाद पचास से साठ साल तक जब जीवन व्यतीत करता है तब उन सालों में खाना पीना, कपड़ा, ऐश–आराम इनमें संपूर्ण जीवन का समावेष करके वासनायुक्त जीवन जीता रहता है। ऐसे व्यक्ति के मरने के बारह दिन बाद उसके श्राद्ध विधि करके उसके पिंड को कौवे ने छू लिया है यह देख कर, उसकी मुक्ति की गलत कल्पना करके हम जो कहते है कि अब उसका जीवन समाप्त हुआ है, वह सही नही है। प्रत्येक आत्मा का पच्चीस प्रतिषत जीवन इहलोक में और पचहत्तर प्रतिषत जीवन परलोक में होता है। इसलिए मनुष्य की मृत्यु के बाद उसका इहलोक का जीवन समाप्त होने से उसकी आत्मा मुक्त हुई यह कहना गलत होगा क्योंकि उसकी आत्मा के लिए परलोक में भी जीवन है। आत्मा के परलोक का जीवन उसके

इहलोक में प्राप्त किए संस्कार, ज्ञान, धर्माचरण और उनके अनुसार का कर्म इन पर निर्भर होता है। मनुष्य ने इहलोक में प्राप्त हुए जीवन का कितना हिस्सा परोपकार के लिए खर्च किया इस पर उसकी आत्मा के परलोक का जीवन निर्भर है। इस तरह मनुष्य का जीवन इहलोक से यानि जो जगत् हम देखते है उससे केवल पच्चीस प्रतिषत हितसंबंधित होता है। मनुष्य ने उसके बाकी पचहत्तर प्रतिषत जीवन का उपयोग अगले जन्म की धरोहर के रूप में करना आवष्यक है। इसका अर्थ न समझने के कारण हम यह मानते हैं कि मृत व्यक्ति की आत्मा को मुक्ति यानि सद्गति प्राप्त हुई है और उसे ' कैलाषवासी ' आदि नामों से संबोधित करके उसका सम्मान करते रहते है। मनुष्यों की मृत्यु के बाद उनकी आत्माएं परलोक के पांच लोको में संचार अवस्था में भ्रमण करती रहती है। आत्मा की पांच लोको की यह यात्रा मृत्यु के तुरंत बाद आरंभ नहीं होती, बल्कि पहले आत्मा उसकी इच्छा वासना के कारण इहलोक और परलोक इनके बीच के अवकाष (vacuum) में भटकती रहती है और उस समय उसे (earth bound spirit) 'पृथ्वी से बंधी आत्मा' कहते है। यहाँ से मुक्तता कर लिए बिना आत्मा की पांच लोको की यात्रा आरंभ नहीं होती। इसलिए मनुष्य की मृत्यु के तुरंत बाद उसकी आत्मा की पांच लोको की यात्रा आरंभ नही होती है और आत्मा की इस पांच लोको की यात्रा का प्रबंध मनुष्य को इहलोक में जीवन जीते समय ही करना आवष्यक है।

प्राप्त जीवन में अगले जीवन के प्रबंध के साथ इस जीवन में भी सुख शांति समाधान का लाभ हो, इसके लिए कोई बड़ी धार्मिक विधि या प्रखर साधना या देवदेवतार्चन या देवताओं का पूजन इनकी आवष्यकता नहीं होती है। अपना दैनंदिन जीवन व्यतीत करते समय उस जीवन का सिंहावलोकन (पीछे देखकर विचार) अगर किया गया कि आज जीवन कितना इच्छानुसार और कितना वासना अनुसार व्यतीत किया है, तो वह भी पर्याप्त है।

वास्तव में देह को, इच्छा होना और वासना होना ये दोनो धर्म है। लेकिन वासना क्या है ? और इच्छा क्या है यह पढ़ा लिखा इन्सान भी

समझ नहीं सकता है। यदि वासना और इच्छा इन दोनों शब्दों का अर्थ समझ कर उसके अनुसार योग्य आचरण किया तो इह जगत में और परलोक में क्या होता है यह सवाल किसी और से या गुरूमार्ग मे, पूछने के लिए ही बाकी नहीं रहता है।

जन्म लेने वाले हर व्यक्ति का जीवन इहलोक और परलोक से हितसंबंधित होता है। इहलोक में जन्म लेने के बाद भोगने के लिए जो कर्म हमारे हिस्से आता है वह कर्म परलोक में होता है और उस कर्म को आवाहनित (आमंत्रित) करना होता है। केवल हमें विपत्ति है या हमे उस कर्म की आवष्यकता है इन कारणों से कर्म आवाहनित (आमंत्रित) नहीं होता है। अड़चने या विपत्ति आने के बाद उन्हें निवारण करने के लिए मनुष्य सब प्रकार के प्रयत्न करता है लेकिन उस समय उसका ध्यान, उस अड़चन या विपत्ति की ओर लगा रहने के कारण यदि उसके हाथों सेवा होती है तो भी वह सेवा केवल काया और वाचा इन दो माध्यमों से ही होती है। उसका मन उस सेवा से एकरूप नहीं होता है और कर्म का निर्माण तो काया वाचा मन इनकी एकरूपता से ही होता है। इसलिए काया वाचा मन इनकी एकरूपता ना होने के कारण आज जिस कर्म की आवष्यकता है वह कर्म आवाहनित (आमंत्रित) या प्रवाहित नहीं होता है।

जन्म प्राप्ति के बाद कर्म का लेन देन जारी रहता है। कर्म का इष्टफल प्राप्त हो ऐसी अपेक्षा की तो भी केवल कर्म है इसके कारण उस कर्म के इष्ट फल की प्राप्ति नहीं करा सकते है। जब तक कर्म आसानी से कार्यान्वित होता रहता है तब तक कोई भी मनुष्य यह विचार नहीं करता है कि मेरे इस जीवन में क्या कमी है? मनुष्य के जीवन में कर्म होकर भी जब वह कर्म कार्यान्वित नहीं होता है, तब उस कर्म का विचार जीवन में विपत्ति के रूप में किया जाता है। लेकिन जीवन में विपत्ति, कर्म के कारण नहीं आती है। विपत्ति का कारण यह होता है कि कर्म को कार्य करने के लिए आवष्यक माध्यम यानि देह विकसित नही होना यानि देहिक अवस्था अविकसित होने के कारण कर्म उसका फल नहीं दे सकता है।

देह धारणा, काया वाचा मन से होती है। मगर जन्म का कार्य होने के लिए इन तीनों अवस्थाओं में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय ये पांच कोष अंतर्भूत होते है। इन पांचों कोषों में से अन्नमय, प्राणमय, और मनोमय इन तीन कोषो से कर्म की ईष्ट क्रिया (योग्य) करना आवष्यक है और किए गए कर्म से जो फल प्राप्त होता है उस फल से सुख शांति और समाधान की प्राप्ति विज्ञानमय और आनंदमय इन दो कोषो से कर लेना आवष्यक है। जब इस जन्म में विज्ञानमय और आनंदमय इन दो कोषों का कार्य होने लगता है तभी इस जन्म के कार्य को ' जीवन ' कहा जाता है, नहीं तो जीवन एकतरफा ही रह जाता है। जीवन की धारणा होते समय काया वाचा मन का निर्माण, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाष इन पाँच तत्वों से होता है और ऐसा देह प्राप्त होकर वह क्रिया करने के लिए कार्यतत्पर होना इसे 'चेतना' या 'देह की शक्ति' कहते है। देह की आत्मा की जो शक्ति देह के जरिए कार्यान्वित होती है उसे' आत्मिक शक्ति 'या' चैतन्य ' कहते है। देहिक शक्ति और आत्मिक शक्ति इन दोनो शक्ति का कार्य एक ही समय देह से होता रहता है तो भी कर्म, वासना या आत्मा इनके कारण प्राप्त हुए इस जन्म का कार्य यह है कि जिन पूर्व (पहले जन्म के) कर्मो से यह जन्म प्राप्त हुआ है उन कर्मो की मुक्तता हो और जब यह कार्य देहिक शक्ति करती है तब यह क्रिया देह के जरिये कार्यान्वित होती है और उसमें यदि देह कर्म करता है तो भी देह की उस क्रिया को 'कर्म' नहीं कहा जाता है। मतलब यदि देह के जरिए क्रिया होती है और उस क्रिया के बारे में हम कहते है कि कर्म कर रहे है तो भी उस क्रिया में केवल काया का ही समावेष होने के कारण उस क्रिया को कर्म नहीं कहा जाता है। जैसे प्यास बुझाने के लिए चांदी के बर्तन से पानी पीने के बजाय, हम बिना पानी ड़ाले चांदी के बर्तन का इस्तेमाल करना चाहे तो प्यास नहीं बुझेगी। इसी तरह यदि देह संपूर्ण जीवन क्रिया करता रहा तो भी उस क्रिया की पूर्णता या उससे कर्म की मुक्तता होने के लिए उस क्रिया में आत्मा का उपस्थित होना आवष्यक होता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 'कर्म' यह क्रिया, देह कर रहा है इसलिए देह से कर्म होगा ऐसा नहीं है। जब तक उस क्रिया में काया, वाचा, मन इन तीनों का समावेष नहीं होगा तब तक यदि देह को कर्म

करने की इच्छा या वासना हो गई तो भी उस इच्छा या वासना की निर्मिती को 'कर्म' नहीं मान सकते है। पुनष्चः जन्म प्राप्ति के लिए कर्म का संचय करना आवष्यक होता है और अगले जन्म में यही कर्म कार्य करता है। इसलिए इस जन्म में अपने हाथों हो रहा कर्म, सच में कर्म हो रहा है या नही इसका विचार करके जीवन व्यतीत करना आवष्यक है। इसका अर्थ यह है कि इस जन्म में जो क्रिया करनी है उस क्रिया में 'विषय' होना आवष्यक है और हमें जो विषय प्राप्त करना है उसके अनुसार क्रिया करते समय अगर वह क्रिया निरासक्त (निरपेक्ष) बुद्धि से हुई तो उस क्रिया मे अंतर्भूत हुआ विषय हमारे बिना जाने ही कर्म की धारणा कर लेता है। नित्य जीवन में धान, पानी में भिगोकर बाद में कपड़े में बांधकर रखने से धान से अंकुर उगते हैं और जिस धान से अंकुर नहीं उगते उसे 'चाड़' कहते हैं। उसी प्रकार का जीवन हम व्यतीत करते हैं। कर्मों का पूर्व जन्मों के जीवन का विषय और उसके इस प्राप्त जन्म के जीवन में नये से आनेवाले विषय इनमें साम्य न होने के कारण हमें जीवन में सुख शांति समाधान का लाभ नहीं होता है। नये विषय की धारणा होने के लिए और उसके कार्य का अनुभव प्राप्त होने के लिए समय लगता है। लेकिन तब तक इंतजार करना मनुष्य को मंजूर नहीं होता है। इसलिये परम पूज्य साईबाबा ने सब भक्तों को यह निवेदन किया (बताया) है कि " श्रद्धा एक ही भगवान पर, एक ही तत्व पर कायम रखो, उसकी फल प्राप्ति के लिए जल्दबाजी मत करो। जो कर्म है उसका निर्णय क्या है ? इसका ज्ञान न होने से और कर्म के विषय की पहचान न होने के कारण तुम्हारे माँगने से शायद उस कर्म में पीड़ा या अड़चन निर्माण हो सकती है। इसलिए सेवा करने के बाद तुरन्त उस कर्म का फल माँगना हितकर नहीं है। जब सदगुरू उस कर्म का फल देना चाहते है तब वे उस कर्म का विमोचन करके हमें वह फल देते हैं। इसी का अर्थ 'सबुरी' है।"

12. जीवन – उन्नीस माध्यम

जन्म लेने के बाद जीवन उन्नीस माध्यमों से व्यतीत करना होता है। पूर्वजन्मों के कर्मो से मुक्तता होने के लिए इन उन्नीस माध्यमों से नौ माध्यम यानि पांच कर्मेन्द्रिय, दो कोष (अन्नमय और प्राणमय), और बुद्धि और स्थूल मन इनकी आवष्यकता है और अगले जन्म का प्रबंध करने के लिए बाकी नौ माध्यम यानि पांच ज्ञानेंद्रिय, तीन कोष (मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय) और चित्त इनकी आवष्यकता होती है। लेकिन उसके लिए ये नौ माध्यम विकसित होना अत्यंत आवष्यक है। पहले नौ माध्यमों से कर्म का उपभोग लेने के कारण जीवन विकारमय होता है और बाकी नौ माध्यमों का विकास करने की जिम्मेदारी निभाने के लिए सबसे पहले इन विकारों को कम करना आवष्यक है। लेकिन इसके विपरीत यह होता है कि सद्गुरू कृपा से परिस्थिति में अच्छा बदलाव आ जाने से विकार बढ़ जाते है और संपूर्ण देह विकारमय होता है। देह के विकास के लिए देह के कोष महत्वपूर्ण है। पहले दो यानि अन्नमय और प्राणमय कोषों का धर्म वासना निर्माण करना है तो बाकी के तीन यानि मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोषों का धर्म इच्छा निर्माण करना है।

इस स्पष्टीकरण से यह स्पष्ट होता है कि परमेष्वर ने प्राप्त जन्म केवल भोग उपभोग के लिए नहीं दिया है, बल्कि जन्म लेने से जीवन का सार्थक हो इस उद्देष्य से दिया है। लेकिन हम अपने जन्म का यथार्थ (योग्य) उपयोग नही करते हैं और इस अवस्था का कारण हमारा अज्ञान है। जीवन की संपूर्ण धारणा और उसका कार्य यह पांच कोषों पर निर्भर है। नर जन्म की प्राप्ति कर्मानुसार होने के लिए अविकसित कोष जिम्मेदार है तो विकसित अवस्था में ये कोष, 'प्राप्त जन्म में नर से नारायण होना' यह अवस्था प्राप्त करा देते है इसलिए हमारे जीवन में इन कोषों का कार्य कितना महत्वपूर्ण है यह साधक को समझ लेना आवष्यक है। पहले अन्नमय कोष का विचार करे। अन्नमय कोष का कार्य केवल 'देह का भरणपोषण करना' इतना ही नही है। मनुष्य को जीने के लिए जो विषय आवष्यक होते है उन सब विषयो का समावेष अन्नमय कोष में होता है

और उन विषयों का अहसास, यह कोश ' उनकी भूख लगना' इस क्रिया के जरिए मनुष्य को देकर मनुष्य को जागृत करता है। व्यवहारिक जीवन में हम लोग 'भूख' इस शब्द का उपयोग शरीर में जिनकी कमी होती है ऐसे 'अन्न' और पानी इन्हीं के संबंध में करके, शरीर को अन्न और पानी इन्हीं की भूख लगती है ऐसी अवस्था शरीर में निर्माण करते हैं। लेकिन देह को और अन्य विषयों की भी आवश्यकता होती है और उन विषयों की भूख को 'भाक' कहते हैं। लेकिन इस 'भाक' का अहसास हमें नहीं होता, केवल 'भूख लगी है ' इतना ही हमें अहसास होता है। 'भाक' यह बुद्धि का गुणधर्म है और उसका अहसास आनंदमय कोष से होता है लेकिन उसमें बुद्धि अंतर्भूत होती है। इसका अर्थ 'भाक ' का अहसास होने पर हम सज्ञानी हो सकते है। जीवन में इस ज्ञान का लाभ प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्राप्त जन्म में कर्म ने हमें जो अन्न दिया है उस अन्न में औरों का भी भाग है और वह भाग हमें उन्हें यथायोग्य स्वरूप मे देना आवश्यक है।

दूसरा कोष 'प्राणमय' कोष है। यह कोष हममें धारण हुआ है। इस कोष का कार्य एक तरफा नहीं होता है। मूल कोष यानि आत्मा इस प्राणमय कोष में होती है यह आत्मा चैतन्यमय होती है। आत्मा, कार्य के लिए अन्य कोषों में चेतना निर्माण कर देती है। लेकिन आत्मा का यह कार्य दिन रात हमारे बिना जाने चलता रहता है। आत्मा का यह कार्य केवल इस प्राप्त जन्म के लिए ही है ऐसा नहीं है। प्राणमय कोष प्राप्त होना इसका अर्थ इसप्रकार है कि, मनुष्य की उत्क्रांति के समय उसके संपूर्ण शरीर में चौरासी लाख योनी धारण होती है और इन चौरासी लाख योनि द्वारा मानवी जन्म का कार्य कार्यान्वित होता है। इसलिए ये चौरासी लाख योनि (organs) विकसित करना यह हम मानवों का धर्म है। प्राणमय कोष के माध्यम से संपूर्ण शरीर में कार्य जारी रहता है। इस माध्यम का उपयोग केवल खुद के लिए ना होकर उसका उपयोग औरों के लिए भी होना आवश्यक है। वैसे ही इस माध्यम का उपयोग उसके ' दया क्षमा शांति 'इन गुणधर्मो के लिए करना आवश्यक है। इस दुनिया में हमे' मानव 'जैसा आचरण करके इस दुनिया में हमारे इर्द गिर्द जो अन्य जीवन है उनका

सम्मान करना यह हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। और इस कर्त्तव्य के लिए हमारे हाथों जन्म प्राप्ति के बाद कुछ सत्कृत्य हो इस इच्छा से यह प्राण यानि आत्मा जन्म लेने के लिए उत्सुक रहती है। जीवन के आखिर में (अंतसमय मे) यह प्राण मूलतत्व में (परमेश्वर के तत्व में) वापस आता है लेकिन यदि किसी कारणवश मनुष्य की वासना बाकी रह गई हो तो वह वासना पूर्ण होने तक आत्मा को अंतिम गति प्राप्त नहीं होती है।

तीसरा कोष मनोमय कोष है। आज इस मनोमय कोष से जो कार्य चल रहा है वह केवल 'अट्टाहास' (जिद) है। सारी दुनिया मेरे ही मन के मुताबिक चले इस इच्छा से मनुष्य इस मनोमय कोष का उपयोग करता है। वास्तव में इस जन्म में यह मनोमय कोष प्राप्त होना कठिन है। इस कोष के विकसित होने से मनुष्य के ध्यान में और मन में सदैव ये विचार रहने चाहिए कि, ' जो दुखी और परेशान है उन्हें गले लगाना है ' और जो मनुष्य इस प्रकार का आचरण बोलने चालने के जरिए करता रहता है उसकी मनोमय कोष की प्राप्ति अत्यंत सराहनीय है। इस कोष का विकास होने के बाद मनुष्य के काया वाचा मन से उसके बिना जाने जो क्रियाएं होती रहती है उसे ही कहते है कि 'सत्कर्मयोगे वयघाल बावे, सर्वामुखी मंगल बोलबावे (जीवन सत्कर्म करते हुए बीते और सबके मुंह से मंगल वाणी का उच्चार होता रहे)।' यह लाभ क्षणिक विषय से प्राप्त होने वाले आनंद से अनेक गुना बढ़कर है। यह आनंद मनुष्य के संपूर्ण काया वाचा मन में प्राप्त होता है। इसी अवस्था को' सत् चित् आनंद' ऐसा कहा गया है।

चौथा कोष विज्ञानमय कोष है। दुनिया में ज्ञान यह एक अवस्था है और इस अवस्था की प्राप्ति बोध रूप में करनी होती है। विज्ञानमय कोष का संबंध मस्तिष्क के, 'बड़ा दिमाग और छोटा दिमाग' इनसे होता है और इन दोनो का कार्य शरीर की नसों से होता है। शरीर को 'स्पर्श होना, आवाज सुनाई देना' आदि सब ज्ञान, विज्ञानमय कोष से होता है। हमारे देहिक माध्यम, मतलब पाँच कर्मेन्द्रिय, और पॉच ज्ञानेन्द्रिय इनके यथायोग्य कार्य के कारण हमें विज्ञानमय कोष के अस्तित्व का अहसास नहीं होता

है लेकिन अंधा, गूंगा, बहरा इनको होने वाले अहसास विज्ञानमय कोष से ही होते है। अंधा, गूंगा, बहरा इनमें एक ज्ञानेन्द्रिय की कमी होती है तो भी उनके देह की दूसरी अवस्था के कार्य करने से वह कार्य 'खोज' इस अवस्था में उनके जीवन में जारी रहता है।

यह कार्य हमारे बिना जाने होता रहता है। अगर विज्ञानमय कोष का कार्य नहीं होता तो हम मिठाई की जगह जहर खा लेते। जंगली फल देख कर, भी जिनका ज्ञान प्राप्त नहीं है ऐसी चीजें हम नहीं खाते है। यह ज्ञान हमे कैसे होता है ? खोज यह एक अत्यंत सूक्ष्म अवस्था हमारे देह में है, इसलिए हम जीवन जी सकते है। सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक का हमारा काल, विज्ञानमय कोष पर निर्भर है जीवन में हम केवल जड़वादी यानि भौतिक तत्वों का ही उपभोग लेते रहते हैं और उसके कारण, 'ईश्वर तक कैसे पहुंचना ?, ईश्वर है या नही' इस विवाद में ही जीवन व्यर्थ गंवाते है। जैसे आंखे बंद करने से ऐसा लगता है कि संपूर्ण दुनिया में अंधेरा ही है उसी प्रकार विज्ञानमय कोष विकसित ना होने के कारण जगत् का केवल आभास होता रहता है। जब हम विज्ञानमय और आनंदमय इन कोषों का लाभ ले सकेंगे तभी हम इस जगत को नश्वर (नाश होने वाला) जगत् न कह कर, हम यह कहेंगे कि यह जो जगत् हम देख रहे है वही ईश्वर है।

पहले जमाने में हमारे पूजन करने के प्रतिकों में ईश्वर की मूर्ति, ताँक, तस्वीरें आदि का समावेश था। लेकिन पूजन करना यानी क्या करना यह न समझ न पाने के कारण अनर्थ हो गया और इस अनर्थ का कारण ईश्वर नहीं, हम स्वयं हैं।

ईश्वर ने बिना मांगे हमें अत्यंत मूल्यवान माध्यम दिए हैं जिनकी कीमत लाखों रूपयों से भी अधिक है। फिर भी हम यह कहते है कि हमारे पास लाख रूपयें कहाँ है ? प्राप्त जीवन की कीमत अनेक लाख रूपये है यह समझ न लेने के कारण ऐसा मूल्यवान जीवन प्राप्त होकर भी हमारे हिस्से केवल राख आती है। हमारे सामने जो जगत् है वह जगत्, दृश्य

(दिखाई देनेवाला) है और अदृश्य (दिखाई ना देने वाला) भी है। लेकिन हम केवल दृश्य जगत् देख सकते है। उस जगत् का दूसरा भाग नहीं देख सकते है। इसलिए सामने वाला मनुष्य हमें ठग रहा है इसका ज्ञान उस समय ना होकर वह ज्ञान हमें बाद में होता है। वैसे ही ईश्वर हम सबका कैसे पालन करता है यह भी हमें बाद में समझ आएगा, घर में केवल दो चार बच्चे ही होने पर भी हम उनका पालन नहीं कर सकते है और ईश्वर हम सबका पालन करते है। पहले मेरी यह श्रद्धा थी कि मुझे ईश्वर का दर्शन अपने जैसे सगुण रूप में होगा लेकिन कुछ अनुभवों के कारण मुझे परमेश्वर के अस्तित्व का अहसास हुआ। जैसे वातावरण में हवा चलती है और हमें अहसास होता है, उसी प्रकार हमारी साधना से वातावरण में लहरें पैदा होती हैं और उन लहरों से जो नाद होता है उसका अर्थ 'ईश्वर' है।

केवल पूजा पाठ अर्चना करने से ईश्वर की प्राप्ति नही होती है या ईश्वर नहीं मिलते है। ईश्वर की प्राप्ति मनोमय और विज्ञानमय कोषों के विकास पर निर्भर है।

पांचवा कोष आनंदमय कोष है। उसका अर्थ बहुत आसान है। उस के अर्थ के ज्ञान के लिए वेदांत या तत्वज्ञान कहना निरर्थक है। दैनंदिन आचरण में ही वह जीवन है जिस जीवन का आखिर (अंत) सुखदायी हो सकेगा। आखिरी क्षण में आत्मा जिस अवस्था में होती है उसी अवस्था में परलोक गमन करती है लेकिन मरते समय भी अगर वह मनुष्य, ' गाय का बच्चा झाडू खा रहा है ' ऐसे ऐहिक विचारों में बंध गया तो पूरा जीवन ईश्वर के सामने बैठे रहने से क्या लाभ प्राप्त हो सकेगा? इन कोषों का उपयोग किए बिना हम हर रोज जीवन जीते हैं इसलिए हम दुखी होते हैं। रोज सुबह हम जब खाना खाते हैं तब अपने सामने परोसा गया खाना देख कर एक क्षण खुद से पूछो कि इस समय इतना अच्छा खाना कितने लोगों को मिला होगा ? इस सवाल का आप स्वयं ही यह जवाब दे सकोगे कि 'मैं बहुत भाग्यवान हूँ'। अज्ञान के कारण कर्म को कोसना सही नही है। कर्म को जरूर कोस सकते हो लेकिन जिस कर्म के बारे में कहते है क्या उसका ज्ञान आपने प्राप्त कर लिया है, या आप केवल दूसरों का सुख

देखकर खुद के कर्म को कोसते है ? कर्म यानि क्या है ? यह अनेक जन्म लेकर भी समझ नहीं आता है। केवल ईश्वर या गुरू ही तुम्हारा कर्म समझने के पहले ही तुम्हारा वर्म (अंदरकी बात) समझ लेते हैं। इसलिए कर्म से जो जन्म प्राप्त हुआ है वह जन्म किस लिए है और किन के लिए है यह सवाल खुद से पूछना आवश्यक है। कोई किसी को बद्दुआ (श्राप) नहीं देता है क्योंकि आनंदमय कोष सदैव अच्छी इच्छा करता है। मतलब आनंदमय कोष सदैव ' तथास्तु तथास्तु 'ऐसा ही कहता है। वैसे ही खाना खाते समय यह कहना है कि, यह खाना केवल पेट भरने के लिए ही नहीं है, यह तो ' यज्ञकर्म ' है, यह समझना आवश्यक है। इसके अनुसार आचरण करके मनुष्य स्वयं आनंद प्राप्त करें और औरों को भी आनंद देता रहे इसके लिए आनंदमय कोष धारण हुआ है।

13. गुरूमार्ग - साधन पद्धति

गुरूमार्ग में अब तक यह विषय किसी ने अध्ययन के लिए चुने होंगे या नही यह एक समस्या है, क्योंकि यह विषय, कोई पकड़ना चाहे तो सम्भाल नहीं सकता और यदि यह विषय छोड़ दिया तो साधना में कुछ अर्थ नहीं रहता है। तो इस विषय से कैसे मेलजोल बन पाएगा ? जब कोई भी मनुष्य किसी शास्त्र का अध्ययन करता है, तब उसे उस अध्ययन के लिए अपनी प्रयोगशाला निर्माण करनी होती है और वैसे ही वह प्रयोग सिद्ध हो जाने के बाद उस प्रयोग का यह कार्य निश्चित करना होता है कि आगे क्या निर्णय लेना है। मनुष्यों के जीवन का बहुमूल्य समय व्यर्थ गंवाया जाता है और उनके जीवन में कठिनाईयों का निर्माण होकर उनका जीवन दुखी होता है यह मैने सब जगह देखा, इतना ही नही बल्कि दुनिया को मार्गदर्शन करने वाले साधकों के साथ भी मैने घंटो तो क्या दिन रात भी खर्च किए। उन साधको के पास लोग जब स्वयं की विपत्तियों के बारे में पूछने के लिए आते थे तब उन्हें साधको से यही जवाब मिलता था कि, ' तुम्हें, ' करनी ' की तकलीफ है', या 'ईश्वर का श्राप' है इसलिए तुम्हें सुख की प्राप्ति नहीं हो रही है। साधको के पास आने वाले बहुत से लोगो को यही बताया जाता था कि, ' तुम 'करनी' से पीड़ित हो'। लेकिन ' करनी ' का क्या मतलब है और ' करनी ' को कैसे निवारण करना है इसका कोई जवाब नहीं था, ऐसी परिस्थिति थी। साधको के पास आनेवाले लोगो को सुख की प्राप्ति होने की अपेक्षा हर सप्ताह साधको की आमदनी में ही बढ़ोतरी हो रही है यह भी मैने देख लिया। जो आदमी परेशान है उनसे ये साधक इतना पैसा मांगते थे कि डर के मारे घर के गहने बेच कर लोग इनके चंगुल में फंस जाते थे यह मैने खुद देखा था। जब गुरू आज्ञा से दुखी और परेशान लोगों को मार्गदर्शन करने के इस मार्ग का मैने आरम्भ किया तब इस मार्ग का अध्ययन इतना परिपूर्ण था कि आनेवाले दुख का निवारण हो सकता था। केवल 'करनी की गई है ' यह कहने से ये दुख दूर नहीं होते हैं। जो लोग दुखी हैं उनके दुख का कारण क्या है और उसके लिए निराकरण क्या है यह जानना जरूरी है और वह ज्ञान शास्त्रानुसार होना आवश्यक है। वैसे ही इसका केवल ज्ञान होने से कार्य

नहीं होता है तो उस ज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव होना भी आवश्यक होता है। इसलिए, इस कार्य के लिए मैने जो प्रयोगशाला निर्माण की उसमें यह विचार था कि कोई भी सिद्धान्त सिद्ध करने वाले साधक को उस सिद्धान्त का स्वयं अनुभव लेना चाहिए और उसके बाद उस सिद्ध सिद्धान्त साधना का औरों के लिए उपयोग करना चाहिये।

इस साधना पद्धति में दूसरो के जीवन से खेल खेलना होता है इसलिए यदि सिद्धान्त यशस्वी हुआ तो ठीक है, नही तो सिद्ध करने का साधन ही साधक के विनाश का कारण बन सकता है। आज आप सब लोग ' सेवक ' अवस्था तक नहीं पहुंचे हैं तो भी आपके माध्यम से अन्य लोगों को लाभ हो रहा है। इसका यह अर्थ है कि दुखी लोगो को आप जो निराकरण सूचित कर रहे है वह सब निराकरण सिद्ध है और गुरू शक्ति से उन निराकरणों का कार्य हो रहा है। इन निराकरणों की प्राप्ति केवल नामस्मरण या श्रीगुरूचरित्र पोथी का पाठ या कोई अन्य सेवा करने से नहीं होती है। और ऐसे दुखों के लिए केवल निराकरण सूचित करने से काम नहीं चलता है तो उनके लिए 'निवारण करने का सामर्थ्य 'भी आवश्यक है।' निवारण ' यह अवस्था इस तरह होती है कि हम जो साधना करते है, उसमें, उस का भाग औरों को सुख प्राप्ति हो इसलिए देना आवश्यक है। कभी कभी ऐसा दुख लेकर दुखी मनुष्य आता है कि जिसके दुख का निवारण होने के लिए वह दुख तुम्हारी बारह साल की साधना भी ले जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रथमतः जो सेवा हमे करनी है वह सेवा हमारे नामीतत्व को (गुरूतत्व को) मान्य होना और उसके लिए जो सेवा करनी है वह करने से पहले उस सेवा के विषय के लिए अनुरूप (योग्य) संकल्प करके यह संकल्प सिद्ध करना। मतलब दुखी मनुष्य के दुख निवारण के लिए ऐसे सिद्ध संकल्प का उपयोग करके, स्वयं की साधना से प्राप्त शक्ति की बचत करना साधक के लिए आवश्यक है। इस साधना के आरम्भ में परम पूज्य बाबा की यह आज्ञा थी कि, ' प्रथम ज्ञान प्राप्त करो, फिर साधना ' और बाबा की इस आज्ञा के अनुसार, "वंश विमोचन और कर्म विमोचन में जीवन की प्राप्ति कैसे होती है, जीवन कैसे अविकसित होता है और उस जीवन को साधना मार्ग के जरिए कैसे विकसित करना है," यह अमृत बोधरूप में प्राप्त हुआ।

इह जन्म में जीवन की प्राप्ति होने के बाद बहुत से लोगों को यह लगता है कि उन्हें पारमार्थिक जीवन का लाभ हो और उनका जीवन सार्थक हो। ऐसी आकांक्षा मन में लेकर बहुत से लोग गुरू मार्ग को अंगीकार करने की इच्छा से गुरू की खोज करते हैं। लेकिन गुरूमार्ग क्या है ? यह न समझने के कारण वे गुरू की खोज करते करते थक जाते है या योग्य गुरू न मिलने के कारण गुरूमार्ग की लगन त्याग देते हैं। इसका कारण यह है कि ऐहिक जीवन यह प्रापंचिक जीवन है। और इस प्रापंचिक जीवन के कर्त्तव्यों की पूर्णता किए बिना पारमार्थिक जीवन प्रारम्भ नहीं हो सकता है। पारिवारिक जीवन में जैसे जैसे हम जन्म लेने के कर्त्तव्यों की पूर्णता करते हैं, वैसे वैसे हम बिना जाने पारमार्थिक जीवन के नजदीक जाते हैं। शास्त्रों ने पारमार्थिक जीवन में जिन देव देवताओं का समावेश किया है उन इष्ट देव देवताओं की कृपा के लिए मनुष्य को पात्र (योग्य) होना आवश्यक है और वह पात्रता (योग्यता) प्राप्त होने के बाद यही देवदेवता मनुष्य को उसके गुरू की खोज करा देते है। लेकिन गुरूमार्ग यह ऐहिक सुखों का मार्ग ना होकर पारमार्थिक मार्ग की सीख देने के लिए है यह ना समझने के कारण गुरूमार्गी होकर भी ऐहिक माँगे समाप्त ही नहीं होती है। इसलिए पारमार्थिक जीवन का लाभ प्राप्त होने के बाद स्वयं की माँगे कम करके, ' ईश्वर ने जैसा रखा है वैसे ही रहना है 'इस वचन के अनुसार प्राप्त परिस्थिति में समाधान से रहना आवश्यक है। जब माँगने से भी नहीं मिलता है ऐसी परिस्थिति आती है तब हर एक को यह कहना ही पड़ता है कि ईश्वर ने जैसे रखा है वैसे ही रहना है लेकिन ऐसे समय यह कहने की अपेक्षा यदि पहले ही समाधान से यह कह सके तो, जीवन का सार्थक हुआ ऐसा कह सकते है।

जीवन के आरम्भ में आपके जैसी मुझे भी इस आंतरिक इच्छा की तीव्रता से अहसास हो रहा था कि मुझे गुरूमार्ग की सीख प्राप्त हो। हर साल नित्य नियम से आने वाली 'गुरूपूर्णिमा' का पूजन यह एक 'विधि' है। लेकिन यह बात अनेक ज्ञानी लोग भी भूल जाते है कि' गुरूपूर्णिमा 'यह विधि करना आवश्यक है वह समारोह नहीं है। यह बात ना समझने के कारण बहुत से साधक संपूर्ण साल इस दिन का इस इच्छा से इंतजार

करते रहते है कि इस दिन मेरे शिष्य औपचार के स्वरूप में मुझे गुरूदक्षिणा अर्पण करेंगे और मैं उस गुरूदक्षिणा को स्वीकार करूंगा।

गुरूपूर्णिमा की विधि शास्त्रों के अनुसार करना आवश्यक है। "कभी भी किसी को भी गुरू के रूप में स्वीकृत करना" ऐसा नही होता है। यह विधि होमहवन के साथ करना आवश्यक है। उस दिन जो 'गुरूमंत्र' देना होता है वह गुरूमंत्र गुरू को पहले खुद सिद्ध करना आवश्यक है जिसके लिए गुरू का गुरूमंत्र देने के पहले बारह साल तक हर रोज ग्यारह सौ की संख्या में उस मंत्र का पुरश्चरण (पठन) करना आवश्यक है। इसके बाद गुरूपूर्णिमा के दिन संपूर्ण साल किए गए मंत्र पठन की संख्या के दसवें भाग का हवन करने के बाद इस मंत्र की दीक्षा भक्तों की दी जाती है और तब भक्तों को गुरूपूर्णिमा से मकर संक्राति के दिन तक कोई भी एक फल न खाने का परहेज करना (वह फल नहीं खाना) आवश्यक होता है। मकर संक्राति के दिन जो पुण्य काल होता है उस दिन फिर से भक्त के लिए हुए मंत्र का, तिल और घी इनकी आहूती देकर हवन करना आवश्यक है।

गुरूपूर्णिमा के दिन सूर्य कर्क राशि में होता है और मकर संक्रांति के दिन संक्रमण होकर सूर्य मकर राशि में जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरूपूर्णिमा को जो विधि की गई उस विधि की पूर्णता मकर संक्रांति के दिन होती है। गुरूपूर्णिमा का हवन भक्त के 'जीव' अवस्था के लिए यानि काया वाचा मन के लिए होता है और मकर संक्राति का हवन भक्त की 'शिव' अवस्था के लिए उद्‌देशीत होता है। इस तरह शास्त्र के अनुसार यह संपूर्ण विधि की गई तो ही गुरूकृपा से 'जीव' 'शिव' रूप होता है, नहीं तो गुरूपूर्णिमा की विधि, विधि न होकर केवल एक समारोह बन कर रहता है।

आरम्भ में मुझे ऐसा लगता था कि मैं गुरूमार्ग को अंगीकार करूँ। उस समय गुरूपूर्णिमा के दिन मुझे ख्वाब में यह आज्ञा प्राप्त हुई कि, तुम्हारे गुरू ने इस जगत में जन्म नहीं लिया है इसलिए तुम गुरू का शोध मत करो। आज गुरूपूर्णिमा का दिन है तो तुम आज शाम को

श्रीभैरवनाथजी के मंदिर में आओ। वहाँ तुम्हें 'गुरू' शब्द का विस्तार से अर्थ समझ आएगा। उस दिन शाम को बारिश हो रही थी फिर भी हमेशा की तरह पहाड़ पर जाकर स्नान करके मैं श्रीभैरवनाथजी के मंदिर गया। वहाँ श्रीभैरवनाथजी का पूजन किया। फिर मनःपूर्वक प्रार्थना करके आंखे बंद करके इंतजार में बैठा रहा। तब मुझे पहले जैसी ॐकार की ध्वनि सुनाई दी तो मैं भी उस ध्वनि के साथ ॐकार करने लगा। उस समय श्री भैरवनाथजी ने मुझ से पांच स्थानों से ॐकार करवाया। पांच स्थानों से वह ॐकार होने के बाद मैने यह वाणी सुनी, "जो ॐकार आज तुमने किया है वह ॐकार पांच स्थानों से करना होता है। और वह करते समय उन स्थानों से स्वर में ॐकार संथा कहना आवश्यक है। बाद में ये पांच स्थान सिद्ध होने के बाद इस स्वर का उच्चार इन स्थानों से ना करके एक ही ' सूर ' का उच्चार करना है। उस समय वाणी से जो 'सूर' का उच्चार होगा वह उच्चार न होकर उसमें स्वर का रूपांतर निनाद में होगा मतलब तब यह नाद, सिंहनाद (सिंगनाद) होता है और यह सिंहनाद ब्रह्माण्ड की पहचान है"। जब हम जन्म लेते है तब गर्भावस्था में यह वाचा हमें दी होती है लेकिन तब हमें उसका उच्चार करना नहीं आता है। जन्म के बाद जब डॉक्टर या जन्म कराने वाली दाई बालक को उलटा करके उसके कुल्हे पर चपत लगाती (मारती) है तब बालक वाणी से प्रथम उच्चार करता है उसका अर्थ ॐकार ही है और उस ॐकार में तीन तत्वों में के, उत्पत्ति तत्व का आरंभ होता है। "आज तुमने जो 'सिंहनाद' सुना है इसका अर्थ यह है कि अब ॐकार साधना पूर्ण हुई है। यह ॐकार साधना भविष्य में जगत् को तारने वाला एक ही मार्ग, एक ही मंत्र और एक ही तंत्र है। इस मंत्र की त्रिपुटी यानि तीन अवस्था होती है और भविष्य में तुम्हें इसकी चौथी अवस्था प्राप्त करनी है। इसलिए अब इसके आगे बहुत सारे प्रयत्न करना आवश्यक है, यह बात मन में ठान कर आगे चलो। तुम्हें प्रकाश यानि ज्ञान देने वाले तुम्हारे साथ होंगे। तुम आज से ही इस कार्य का आरम्भ करो, इसे करने के लिए यदि तुम्हारा जीवन पर्याप्त नहीं होगा तो भी कोई हर्ज नही, जितना ज्ञान तुम्हारे हिस्से आएगा उतना ज्ञान जगत् को देकर जगत् को ज्ञानी करो। लेकिन पीछे मत हटो। तुम्हारे पिताजी ने जिनके नाम से तुम्हें फकीर किया था वे तुम्हें आगे का मार्गदर्शन करेंगे। तब तक तुम

ऐसा मत कहो कि तुम्हारे गुरू नहीं है। गुरू ही तुम्हें खोजते हुए आएंगे ऐसा सुमंगल क्षण तुम्हारे आयुष्य में आएगा। आज पाँच स्थानों से किया गया यह ॐकार यह भविष्य में होने वाली आकाशवाणी होगी। और उस दिन का तुम और तुम्हारे सहकारी इंतजार करेंगे। लेकिन एक बात ध्यान में रखो। यह ॐकार साधना और यह महामंत्र इनका भक्तों की संख्या बढ़ाने के लिए भक्तों पर प्रयोग मत करो। जिन भक्तों में ईश्वर के प्रति आस्था पैदा हुई है उन्हें ही यह भक्ति के रूप में दे दो। लेकिन किसी को भी 'भक्त' मत कहो, सबको कार्य के ' सेवक ' कहो, उससे आगे का कार्य दुनिया के अंत तक जारी रहेगा। तथास्तु।''

बाद में जब मैं श्रीक्षेत्र औदुंबर में वास्तव्य करके मार्गदर्शन के अनुसार सेवा कर रहा था, तब एक दिन गुरूपूर्णिमा के दिन भोर के समय से पूजन, पारायण शुरू था तब उस दिन मुझे ऐसी इच्छा हुई कि आज मैं कुछ उपदेश ग्रहण कर सकूँ। तब वैसी प्रार्थना मैने श्रीदत्त गुरू से की और उस समय मैने यह वाणी सुनी " आज रात बारह बजे परमपूज्य हाजीमंलगबाबा मुलाकात लेने वाले है तब वे तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण करेंगे।" ' मुलाकात ' यह शब्द मैने पहली बार सुना था। बहुत से लोग निरूपण, पुराण, कीर्तन आदि शब्दों का उच्चार करके श्रोताओं को उपदेश पर बोध करते है।' 'मुलाकात' शब्द की पहचान न होने के कारण मैं इस शब्द का अर्थ समझ नहीं सका था। आखिर में हाजीबाबा की आवाज सुनाई देने लगी। उस दिन इस मुलाकात में उन्होंने इस विषय के बारे में कहा था कि गुरूमार्ग और गुरूमार्ग की प्राप्ति कौन करा सकता है। 'मुलाकात' शब्द का अर्थ इस प्रकार है कि, "साधक को साधना करते समय जो अनुभूति प्राप्त होती है वह स्वानुभव (स्वयं का अनुभव) साधक ने अपने भक्तों को कथन करना है। उस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए, बल्कि जो बात बतानी है उनका अनुभव पूर्णतः यानि सौ प्रतिशत नही तो पचहत्तर प्रतिशत समझेगा इस तरह बता कर उसका कार्य भक्त के जीवन में होगा ऐसे होना चाहिए, । जिससे भक्तों की शंकाए बढ़ती जाएगी ऐसा संभाषण उनसे नहीं करना चाहिए। इसका अर्थ मुलाकात हैं मतलब 'मुलाकात' सुनते समय परमेश्वर हमारे सामने खड़ा है ऐसा अनुभव भक्तों को होना चाहिए।

साधक के द्वारा अनुभूति के बारे में बताते समय बड़े बड़े शब्दों का इस्तेमाल किया तो वह ज्ञान है ऐसा नहीं है। मुलाकात कहते समय आम आदमी के समझ में आएंगे ऐसे शब्द चाहिए लेकिन उन शब्दों में ममता, प्रेम, अपनापन इनका होना अत्यन्त आवश्यक है। नही तो, एकादशी के व्रत के दिन घर में कोई भिक्षा माँगने आने से दोनो को व्रत करना पड़ें इस प्रकार का कथन नहीं चलेगा। "

पहले भी यह बताया गया है कि गुरूमार्ग यह पारमार्थिक मार्ग है। इस जगत् में कितने लोगों को गुरूमार्ग की भूख लगी है और उन लोगो की खोज गुरू प्राप्ति के लिए है या नहीं इस बात की जानकारी आवश्यक है। ऐहिक जीवन का लाभ लेते समय प्राप्त सुख में कुछ कमियाँ आने के कारण मनुष्य ईश्वर के और गुरू के पीछे जाता है। बहुत से गुरू जब गुरू का कर्त्तव्य भूल जाते है तब कुछ कालावधि के बाद उनके भक्त ही उनके गुरू बनते है। इसलिए शिष्य को गुरू अपने जैसा करते है' इस वचन के अनुसार यदि भक्त ऐहिक प्राप्ति की इच्छा से गुरू को मिलने आए तो भी गुरू को यह समझना आवश्यक है कि हमारा यह मिलाप केवल ऐहिक प्राप्ति के लिए नहीं है। गुरू से मिलने आये भक्त को गुरू शिष्य मिलाप का ज्ञान नहीं होगा तो भी गुरू को यह ज्ञान होना आवश्यक है कि यह भेंट, आम भेंट नहीं है, यह भेंट 'गांठ भेंट' है। मतलब इसमें गांठ (मिलाप) यह अवस्था परलोक की है और भेंट (मिलना) यह अवस्था इहलोक की है। इसलिए इस गांठ भेंट में उस व्यक्ति को कोई आमीष (लालच) दिखा कर मार्ग से हटाने के बजाय उसका मार्गदर्शन करना आवश्यक है और फिर आगे उसे धीरे धीरे गुरू मार्ग की चाह होने तक गुरू को सबुरी रखनी आवश्यक है।

पारमार्थिक मार्ग और गुरू मार्ग ये दो अलग मार्ग है। प्रथमावस्था में पारमार्थिक अवस्था प्राप्त करना आवश्यक है। जो जीवन प्राप्त हुआ है, वह जीवन 'परम अर्थ' (बहुत अर्थ) है। केवल खाना पीना इसमें जीवन व्यर्थ गंवाने की अपेक्षा यह जीवन सत्कारण के लिए व्यतीत हो ऐसी इच्छा निर्माण होना इसका मतलब परमार्थ है। इस जीवन का सत्कार्य (अच्छा

कार्य) हमारे समझ में नहीं आता है। जिसका उपयोग औरो के लिए करना है वह जन्म–कारण गुरू मार्ग में ही समझ आता है। इसलिए गुरूमार्ग में, गुरू जो बताएंगे उसे आज्ञा मान कर उसी के अनुसार आचार उच्चार विचार हो ऐसा आचरण करना आवश्यक है। इसी का अर्थ यह है कि Do And Die And Not to question why अर्थात, करना और मरना लेकिन 'क्यो' यह नहीं पूछना।

14. गुरूमार्ग – दीक्षा

साधना सिद्ध होने की स्थिति में बहुत से लोग मिलने मिलाने के लिए आने लगते हैं। लेकिन साधना सिद्ध करते समय और साधना सिद्ध होने के बाद भी, गुरूआज्ञा के बिना औरों को दीक्षा देना, उन पर कृपा या अनुग्रह करना या उनका प्रणाम स्वीकार करना आदि मोह पर काबू करना आवश्यक है। खास करके जिस मोह पर काबू करना अत्यन्त आवश्यक है वह यह है कि भक्तों ने उनकी अपनी इच्छा से भी धन या गुरुदक्षिणा दी, तो भी बारह साल तक उसको स्वीकार नहीं करना चाहिए। यह बारह साल का बंधन क्यो हैं ? इसका कारण इस प्रकार है – हर साल हम सृष्टि में गर्मी, बरसात और ठंड ये जो तीन मौसम देखते हैं इन तीन मौसमों में उत्पत्ति, स्थिति और लय ये तीन तत्व कार्य करते हैं यदि इन तीन तत्वों से हमारी साधना सिद्ध हुई तो भी वह साधना सुदृढ़ होने के लिए बारह साल लगते हैं। जिस प्रकार मनुष्य के जन्म के बाद बारहवां साल यह सज्ञान होने की उम्र है और उस समय देह के घटकों की निर्मिती पूर्ण होती है उसी प्रकार साधक को अपनी साधना का लाभ औरों को देने के लिए साधना का सुदृढ़ होना आवश्यक है। साधक की साधना सुदृढ़ होने के बाद साधक के पास दीक्षा लेने के लिए जो व्यक्ति आएगा उनका प्रथमतः विमोचन करना आवश्यक है। जन्म लेते समय मनुष्य पाँच ऋणानुबंध लेकर आता है लेकिन मरणोपरान्त जाते समय केवल आत्मा और कर्म जाते हैं और वही अवस्था जन्म के पहले होती है। बीच के काल में यदि तीन ऋणानुबंधों का विमोचन नहीं किया होगा तो साधक भक्त पर जो कृपा करता है उस कृपा का लाभ भक्त की आत्मा को प्राप्त ना होकर उस कृपा का लाभ भक्त के ऋणानुबंधों को प्राप्त होता है जिसके कारण वे ऋणानुबंध और ही प्रखर होते हैं। इसलिए गुरूमाध्यम को यह समझ लेना आवश्यक है कि दीक्षा लेने वाले भक्त का विमोचन अत्यंत महत्वपूर्ण है। विमोचन होने से पहले यदि दीक्षा प्राप्त हुई तो भी भक्त से उस दीक्षा का केवल उच्चार होता रहता है, भक्त दीक्षा को ' कृपा ' रूप में स्वीकार नहीं कर सकता है। दीक्षा लेने वाले भक्त के ऋणानुबंधों का विमोचन हुए बिना भक्त के दीक्षांत विधि के समय दी गई प्रार्थना से उसे लाभ प्राप्त नहीं

होता है और इसके कारण ' दीक्षा ' यह विधि होकर भी वह साधक के लिए सजा हो सकती है। इन ऋणानुबंधों का ऋण इतना होता है कि वह चुकता करने में पूरा जन्म बिताकर भी वह ऋण चुकाया नहीं जा सकता। इसलिए हमने दीक्षा ली है इसका अर्थ हम कृपा के लिए योग्य बन गए ऐसा नहीं है। ये दीक्षाएं विमोचन के लिए होती है। जब विमोचन होगा, मतलब जब केवल आत्मा और कर्म ये ही बाकी रहेंगे तभी दीक्षा देने से दीक्षा यानि आशीर्वाद की प्राप्ति हुई यह कह सकेंगे।

दैनंदिन यानि हर रोज के जीवन में तीन माध्यमों के जरिए देहिक माध्यम का कार्य होता है वह देहिक माध्यम यानि काया वाचा मन है। दीक्षा देने के समय पर काया के चारों और ऋणानुबंधों के वलय मंडराते हैं। तब साधक के सामने जो दीक्षा को स्वीकार करने वाला व्यक्ति होता है उसे दीक्षा देकर, नाम स्मरण करने के लिए कह कर ऋणानुबंधों के वलय से विमोचित करके, गुरू वलय में धारण किया जाता है। इसके लिए अलग अलग प्रकार की दीक्षाएं होती हैं और उन सब दीक्षाओं का संबंध पूर्णतः गुरू तत्व से नहीं जुड़ जाता है।

सबसे पहले दीक्षा का संबंध भक्त के घराने की कुल देवी देवता इनसे होना आवश्यक है। उसके बाद भक्त की उपास्य देवता का समावेश संकल्प रूप में दीक्षा में कराना आवश्यक है। इस क्रिया में भक्त को प्रथमतः आशीर्वाद ग्रहण करने की आदत ड़ालना आवश्यक है। इसके लिए बच्चों को बचपन से ही घर के बुजुर्गों को प्रणाम करने की आदत लगाना आवश्यक है। बुजुर्गो द्वारा बच्चों को आशीर्वाद देने के बाद उसी आशीर्वाद के माध्यम से देवी देवता और गुरू आशीर्वाद देते हैं। यदि भक्त भाविक सालोसाल आते हैं तो भी आशीर्वाद के लाभ की प्राप्ति होने तक उन पर कड़ी निगरानी रखना आवश्यक है। आज जगत् में जिन्हें 'गुरू' कहा जाता है ऐसे लोग और उनकी प्रसिद्धि और विस्तार ही अधिक है, इसलिए ऐसे समय, ऐसे गुरूमार्ग का अवलंब ना करना ही ठीक होगा।

गुरूमार्ग में जिन भक्तों को गुरू दीक्षा का लाभ हुआ है उनके जीवन का कार्य होने तक उन पर कड़ी निगरानी रख कर उनका देहिक विकास

कैसे हो रहा है ?' यह बारीकी से देखना आवश्यक है वरना दीक्षा या अनुग्रह केवल लेने के कारण उस व्यक्ति का जीवन गले में लकड़ी बंधे जानवर की तरह व्यतीत होता रहता है। अन्य गुरूमार्ग में दीक्षा लेने वाले व्यक्ति को कुछ बंधन बताए जाते है उनमें प्रमुख बंधन, व्यक्ति के आहार के लिए होता है। कुछ उपवास, कुछ व्रत या नामस्मरण की विशिष्ट संख्या इतना बता देने के बाद अपना कर्त्तव्य पूर्ण हुआ ऐसा समझ कर, 'अब दीक्षा लेने वालों को पारमार्थिक लाभ हो गया' ऐसा बहुत से साधक मानते हैं और उसके कारण दीक्षा से भक्त का विकास होना यह जो अत्यंत आवश्यक होता है उसे नजर अंदाज करके गुरूमार्ग यह केवल बंधन में रहने का मार्ग है ऐसा समझ कर बहुत से लोग गुरूमार्ग का केवल अनुकरण करते रहते हैं। वास्तव में, जिस व्यक्ति को गुरूमार्ग और गुरूदीक्षा का लाभ होता है, उस व्यक्ति को उस समय कुछ त्याग करना आवश्यक ही है ऐसा नहीं है। बल्कि उसे किसी प्रकार के बंधन में न जकड़ कर वह जिस स्वाभाविक स्थिति में जी रहा है उसी प्रकार उसे जीने देकर दीक्षा से उसके जीवन में आचार विचार आहार इनमें बदलाव आए यह देखना आवश्यक होता है। यदि आने वाले भक्तों को किसी बंधन में डाल दिया तो वह भक्त दी गई दीक्षा के लिए योग्य है या नही यह समझ नहीं आएगा। उस व्यक्ति के हर रोज के आचार विचार में दीक्षा के बाद बदलाव आया है इसका अनुभव प्रतीत होने से ही यह समझ आता है कि उसके जीवन में दीक्षा का कार्य आरंभ हुआ है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो उसे अगली दीक्षा न देकर पहली दीक्षा की सेवा जारी रखने के लिए कहना आवश्यक है।

दीक्षा देने से कोई विशिष्ट प्राप्ति होगी ऐसा निश्चित रूप से कोई भी नहीं कह सकता है। दीक्षा देने के बाद जीवन का आरंभ, जीवन में बदलाव आने से होता है। यह बदलाव पहले काया वाचा मन इनमें होना आवश्यक है लेकिन कुछ भक्त ऐसा दिखावा करते है कि वे दीक्षा लेने के बाद कुछ अलग ही जगत् का अनुभव कर रहे हैं जैसे 'सपने में बाबा आए थे' यहाँ से लेकर 'ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है' यहाँ तक। इस प्रकार के अनुभव अन्य भक्तों को बता कर ऐसे लोग उनकी श्रद्धा भक्ति में मानो जहर

घोलते है क्योंकि इसके कारण अन्य भक्तों को ऐसा लगता है कि दीक्षा लेते समय तो हम साथ थे और अब इनकी बहुत ही प्रगति हुई है और ऐसे विचारों के कारण उन्हें अपने जीवन में कुछ कमी है ऐसा लगने लगता है। इसलिए साधक को यह सावधानी रखना आवश्यक है कि गुरूमार्ग में आए दस लोगो को एक ही प्रकार की साधना बताने के बाद उनमें से नौ लोगों को साधना का अनुभव प्राप्त हुआ तो अपने जीवन में दीक्षा का कार्य कार्यान्वित हो रहा है यह निश्चित रूप से समझने के साथ साथ, साधक ने दसवें व्यक्ति को साधना का अनुभव क्यों प्राप्त नहीं हुआ इसका विचार करना भी आवश्यक है।

गुरूमार्ग में मार्गदर्शन करने वाला माध्यम एक ही होता है और साधन भी एक ही होता है। ऐसा होने पर भी यदि किसी एक को अलग ही अनुभव आकर वह यह कहे कि ' मुझे ऐसा होता है, वैसा नजर आता है ' या कोई विभूति मुझसे बात करती है तो इसका मतलब उस व्यक्ति को दीक्षा से कुछ लाभ नहीं हुआ है और उसकी यह अवस्था स्वयंचलित मोहनिद्रा (Self Hypnotism) है यह कह सकते है। ऐसे व्यक्ति से साधक को यह सीख लेनी है कि इससे सावधान रहना आवश्यक है। ऐसी व्यक्ति औरों के लिए तो खतरा है ही लेकिन गुरू प्राप्ति होकर भी उसका सर्वनाश होता है।

इससे इतना ही बोध लेना है कि हमने कभी भी ' गुरू के गुरू ' नहीं बनना चाहिए, मतलब जैसे अंग्रेजी में यह कहावत है कि Do not become master of your master' यानि अपने 'गुरू के गुरू' मत बनो।

15. गुरूमार्ग-गुरूचरित्र

गुरूमार्ग में आरंभ करने से पहले, यह जो मार्ग आप अंगीकार करना चाहते हैं उस मार्ग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। पहले ही बताया है कि प्रत्येक मनुष्य इहलोक और परलोक इन दोनो अवस्थाओं से हितसंबंधीत होता है। यह क्रिया जिस माध्यम से होती है वह माध्यम देह है, यानि काया वाचा और मन। इसका और गहराई से अध्ययन करना आवश्यक है। देह को पिंड कहते है। पिंड का निर्माण ब्रह्माण्ड जैसे ही हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य ' जीव' इस प्रथम अवस्था में जन्म लेता है। इसे अनेक साधक ' आत्मा ' कहते है। लेकिन जीव की उत्क्रांति और अपक्रांति (अधोगति) ऐसी क्रियाएं पिंड और ब्रह्माण्ड़ में निरंतर जारी रहती है। इसलिए जन्म के बाद मनुष्य काया वाचा मन ये माध्यम लेकर आने पर भी उसमें ' आत्मा ' तत्व की धारणा न होकर मनुष्य ' जीव ' अवस्था में जन्म लेता है। दीक्षा से काया वाचा मन का विकास होना जिस तरह महत्वपूर्ण है उसी तरह पिंड में धारण होने वाली दूसरी अवस्था भी महत्वपूर्ण है। यह जीव जब ' चेतना ' रूप में कार्य करता है तब वह कार्य काया वाचा मन से न होकर केवल काया से क्रिया होती है। देह की इस क्रिया को यदि हम ' कर्म ' कहते है फिर भी जब तक काया वाचा मन इनकी एकरूपता नहीं होती तब तक ' कर्म ' की धारणा नहीं होती है। यदि कोई उसे कर्म कहे तो भी वह कर्म न होकर केवल क्रिया ही होती है। इसी प्रकार जिस जीव ने जन्म लिया है, उस जीव के अस्तित्व से देह में चेतना: निर्माण होकर क्रियाएं होती है, तो भी उस पिंड का योग्य विकास करने से ही 'जन्म' प्राप्त हुआ ऐसा कहा जा सकता है। जन्म लेते समय जीव जन्म लेता है और उस जीव को मरणोपरान्त परलोकवासी होते समय ' शिव ' यह संज्ञा प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है और इसके लिए इहजन्म का ज्ञान होना आवश्यक है। जन्म लेते समय इह जन्म का ज्ञान न होने के कारण ' यात्रा ' के बजाय जन्म की ' जत्रा ' (मेला) हो जाती है। ऐसे समय यदि गुरूभेंट होकर गुरू के मार्गदर्शन के अनुसार स्वयं का जीवन गुरूचरणों में समर्पित किया तो जन्म की जत्रा (मेला) न होकर इस जन्म के प्रवास का (यात्रा का) आरंभ होता है। इसमें 'प्रवास' होने के

कारण बार बार जन्म लेकर कर्म के भोग भोगना इतना ही कार्य हमारे हिस्से न आकर हमारा अपना हिस्सा अनजाने से बाकी बचता है और फिर से जन्म के समय इह जगत् में आने के बाद गुरूकृपाशीर्वाद से उस बचे हुए हिस्से का उपयोग जगत् को 'प्रसाद' (प्रशाद) मतलब ' प्र. साद यानि (पुकार) ' यानि गुरूकृपा ' इस प्रकार होता है। इसी का लाभ दीक्षा प्राप्ति के समय दीक्षा लेने वाले भक्तों को होकर उनके बिना समझे उन्हें गुरूकृपा का लाभ होता है और जन्म लेते समय जिन भक्तों ने जीव अवस्था में जन्म लिया था उनका दीक्षा से' जीवात्मा ' इस अवस्था में स्थित्यंतर होता है। इसी स्थिति के बारे में श्रीपंतमहाराजजी ने कहा है कि, हमसे कुछ साधन सेवा नहीं होकर भी श्रीगुरू ने हमें ईश्वर के स्थान के दर्शन कराए है। ' इसकी प्राप्ति केवल संतो के सत्संग से होती है। इस प्रकार अलग अलग साधना और दीक्षा के अनुसार भक्तों को 'आत्मा' यह अवस्था प्राप्त होने तक का विकास दीक्षा और साधना से होता है। यह विकास हो इसलिए श्रीगुरू ने सर्वप्रथम जो उपासना करने की आज्ञा दी है उस आज्ञा का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए। जो दीक्षा प्रथम अवस्था में प्राप्त की गई है उस दीक्षा में भक्त की जैसी अवस्था होती है वैसे साधक का 'साधन' मतलब उपास्य दैवत यह सगुण होना आवश्यक है। जीवन आंरभ में पढ़ाई का श्रीगणेश (आरंभ) सीखने के बाद विश्वविद्यालय में उपाधिधारी होने तक की सब परीक्षा में, ' सफलता प्राप्त करना ' आवश्यक है। केवल परीक्षा देने से उपाधि प्राप्त नहीं होती है। उसी प्रकार किताबों में निर्गुण, निराकार, अनादि ॐकार आदि शब्द केवल पढ़ कर वैसी कुछ अवस्था मुझे क्यों प्राप्त नहीं होती है ऐसी आशंका अनेक भक्तों को रहती है तो भी केवल पढ़ने से वे अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती हैं। वास्तव में उपाधि प्राप्त करने की पात्रता (योग्यता) न होना यह भी एक उपाधि ही है, इसे सूज्ञों को भूलना नहीं चाहिए।

ऊपर लिखे अनुसार, जीव की धारणा काया वाचा मन में होती है। बाद में यही जीव 'आत्मा' इस स्वरूप में कार्य करता है। ऐसे समय साधना से काया वाचा मन का विकास होता है मतलब काया वाचा मन इनमें जो उन्नीस माध्यम और चौरासी लाख योनि होती है उनका पूर्ण

विकास होकर उस साधक का माध्यम, गुरू आज्ञा से कार्य करने के लिए सिद्ध होता है और ऐसी सिध्द्धता साधनों में प्राप्त होने के बाद जिन तीन अवस्थाओं का लाभ होता है, वे साधक सिद्ध साध्य अवस्था है। ऐसी अवस्थाओं का लाभ साधक को होता है। साधक सिध्द्ध साध्य इन अवस्थाओं का कार्य इस प्रकार है – पहली साधक अवस्था इहलोक के लिए, दूसरी सिद्ध अवस्था परलोक के लिए और तीसरी साध्य अवस्था स्वर्गलोक के लिए है। यह कार्य क्रमशः (क्रम के अनुसार) प्राप्त कर लेना आवश्यक है। जिस प्रकार बाल्य (बचपन), युवा (जवानी) और बुढ़ापा (वृद्ध अवस्था) ये तीन अवस्थाएं है उसी प्रकार ये साधक, सिद्ध व साध्य ये तीन अवस्थाएं होती है। यदि आज आपकी सेवा बाल्य अवस्था में है तो आपको अपनी सेवा अब वृद्ध यानि परिपूर्ण हो गई है ऐसा आभास कराके साधना की कुचेष्टा कभी भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि इन अवस्थाओं की प्राप्ति अपने मन की इच्छानुसार नहीं करा सकते है। इनमें की पहली दो अवस्थाएं, 'यानि साधक अवस्था और सिद्ध अवस्था' नैसर्गिक है। पहली साधक अवस्था में हमारे मन के अनुसार घटनाएं होने लगती है लेकिन साधक अवस्था के बाद आगे की अवस्था तक की यानि सिद्ध अवस्था तक की प्रगति होने के लिए उन अवस्थाओं के अनुसार मन की घड़न कर लेना आवश्यक होता है।

जो कोई जन्म लेता है उसे चरितार्थ यानि जीवन है। चरितार्थ का मतलब केवल 'जीना' यह नहीं है तो,' जिसको जीना है उसके जीवन में चरित्र का होना आवश्यक है, ' यह है, नहीं बल्कि खाना पीना ऐश–आराम इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने से उस जीवन को 'चरित्र' नहीं कहा जा सकता। जिन सत्पुरूषों ने इस जगत् में जन्म लिया उन्होने अपना जीवन जीते समय औरों को जीवन दिया था। यही चरित्र यानि जीवन का सही अर्थ है और प्रत्येक अवतार लेने वाले व्यक्ति का चरित्र इस प्रकार है। इन व्यक्तियों में से जो चरित्र मैंने अध्ययन के लिए लिया वह था ' गुरूचरित्र'। प्रत्येक सत्पुरूष के संबंध में ऐसा है कि उनके पश्चात् (बाद) उनके भक्तों को उस गुरूतत्व के जो अनुभव आते हैं वे अनुभव ही गुरूचरित्र है और इस प्रकार अनेक गुरूचरित्र हैं। प्रत्येक भक्त को वे

अनुभव लेना इसलिए आवश्यक है, कि भक्ति करते समय गुरू के द्वारा किए गए चमत्कारों की नहीं बल्कि गुरू की लीला की अनुभूति प्राप्त होना यह उस अवस्था की प्राप्ति है। उस अनुभूति से वह भक्त साक्षात्कारी बने ऐसा उस में उद्देश्य नही है। ' अनुभूति ' यह एक अवस्था है ! लेकिन इस अवस्था का अनुभव लेने में बहुत से भक्तों का समय खर्च होता है, वास्तव में चरित्र का जो विषय पढ़ा होगा उसके बारे में चरित्र में क्या बताया है यह बारीकी से देख कर फिर जिस चमत्कार के संबंध में लिखा है, 'उस चमत्कार में क्या विज्ञान है' यह खोज लेना आवश्यक है। केवल पाठांतर किया (पाठ करके याद किया) गया तो बाद में गुरू और भक्त इनमें अंतर आता है। इसलिए पढ़ने के बाद जो पढ़ा है उसका मनन करना चाहिए। ' मनन ' इस साधना में मन का होना आवश्यक है। लेकिन केवल मनन करने से भक्त को 'मन' की प्राप्ति नहीं होगी। साधना करते समय भक्त की अवस्था इस प्रकार होती है, 'जैसे बूंद बूंद से तालाब बनता है।' इसलिए सालों साल किसी का चरित्र पढ़ते रहे तो भी उसका मनन करना आवश्यक है। जिस प्रकार हमें हमेशा भूख लगती है उसी प्रकार 'मन' को यह अवस्था प्राप्त होनी चाहिए इससे मन सिद्ध होता है। मन अवस्था एक रिक्त स्थान है। फिर यह रिक्त स्थान ऐहिक सुख से या पारमार्थिक सुख से भरें यह सवाल महत्वपूर्ण है।

इसके अनुसार उस समय मेरी नित्य दिनचर्या ऐसी थी कि सुबह पढ़ना और दोपहर में उसका मनन करना। जो विषय पढ़ा उसमें श्रीगुरू का विषय कितना और आनेवाले भक्तों का विषय कितना इसका अनुमान लगा कर दूसरे दिन स्नान करके, पहले दिन जिस विषय का मनन किया था उस विषय का साधना में समावेश करना क्योंकि उस विषय की भविष्य में जगत् को आवश्यकता है, वह विषय केवल कथा कीर्तन में कहने के लिए नहीं होता है। गुरूचरित्र में जो बावन पाठ है, उनका सारांश यह है कि जगत् का कल्याण करने के बावन तरीके है, बावन हफ्तों से एक साल होता है। मतलब भक्त जिस विपत्ति को लेकर हमारे पास आता है, उसकी उस विपत्ति का निवारण एक साल के अंदर होना आवश्यक है। इसलिए गुरूचरित्र में बावन पाठ है और वे पाठ बार बार पढ़ने चाहिए। पेड़ को हर

साल नये पत्ते आते है और पुराने पत्ते झड़ जाते है। इसी प्रकार ज्ञान भी पुराना नही होना चाहिए। आशीर्वाद का लाभ यदि औरों को नही हुआ तो 'ज्ञान की गांठ' होना यह बीमारी होती है और भक्त अपनी ही भक्ति के कारण परेशान होता है और फिर कहने लगता है ' कि इस भक्ति में कुछ अर्थ नहीं है ' जो उचित नहीं है क्योंकि भक्ति से कभी भी जी उबता नहीं है। भक्ति यह क्रिया, यह निसर्ग का धर्म है। जैसे धूप, बारिश व ठंड़ किसी एक के लिए नहीं तो सबके लिए होते है, वैसे ही भक्ति भी सबके लिए है। इस मार्गदर्शन के अनुसार मेरी सेवा जारी थी।

16. गुरूमार्गदर्शन

पहले मैं भी औरों की तरह यही समझता था कि 'मार्गदर्शन' यह एक ही शब्द है। औदुंबर में सेवा करते एक साल बीतने के बाद एक दिन शाम को जब मैं नदी किनारे बैठा था, तब मुझे श्रीगुरूकी वाणी सुनाई दी। वह वाणी नहीं थी बल्कि वह आज्ञा थी। श्रीगुरू की वह आज्ञा इस प्रकार थी – " सामने जो नदी बह रही है, उसे प्रवाह (बहाव) कहते हैं। वह बहता रहता है। बोध हुआ तो प्रवाह (बहाव) से प्रवास (यात्रा) बनेगा और प्रवास के 'प्र' शब्द को प्रेम देने से 'वास' स्थिर होगा। नही तो तुम इस प्रवाह (बहाव) में बहते बहते समुंदर में जाओगे। यदि समुंदर में गए, तो वहाँ पानी खारा (नमकीन) है जिसका सृष्टि (प्रकृति / दुनिया) के लिए कोई उपयोग नहीं है और सृष्टि तो प्यासी है। इसलिए इसका योग्य विचार करो। नदी के जिस काठ (किनारे) पर बैठे हो, उसे मत भूलो। नदी का जो काठ (किनारा) देख रहे हो उसकी काठी (लाठी) बनाओं। बाद में दुनिया में चलने के लिए वही लाठी काम आएगी। यह जगत् जैसे दिखाई देता है, वैसा नहीं है। इसलिए जैसे हम ठगाए गए, वैसे तुम ठगाए नहीं जाओं यानि हंसो नहीं और फंसो नही। तुम्हें सेवा करते आज एक साल हुआ है तो क्या पाया क्या खोया इसका हिसाब कल बताओं। "

दूसरे दिन सुबह मेरे मन में यह सवाल था कि क्या बताए ? क्योंकि प्रपंच और परमार्थ में कर्म श्रेष्ठ या कर्त्तव्य श्रेष्ठ है, यह सवाल मन में था। आखिर श्रीगुरू ने यह मार्गदर्शन किया, 'मार्गदर्शन' में 'मार्ग' यह एक भाग और दर्शन' यह दूसरा भाग है। जब मनुष्य कर्म के कारण इहलोक में जन्म लेता है, तब उस कर्म का कारण परलोक में होता है इसलिए मनुष्य को कर्म का फल प्राप्त नहीं होता है। जब मनुष्य के जन्म का विकास होता है तब कर्म मनुष्य के आधीन हो जाता है। इस अवस्था को गुरू मार्ग में 'मार्ग' यह एक भाग और 'दर्शन' यह एक भाग ऐसा कहते है। ' दर्शन ' होने का मतलब दिखाई देना ऐसा न होकर 'ज्ञान' प्राप्त होना है तो गुरूमार्ग में मार्गदर्शन का अर्थ यह है कि जो कुछ अज्ञात था, वह ज्ञात होना, इसका अस्तित्व साधक को समझना आवश्यक है। जब कोई याचना करने वाला याचक अपना सुख–दुख बताता है, तब उसका दुख या सुख

व्यक्त (दिखाई देने वाला) कितना और अव्यक्त (नहीं दिखाई देने वाला) कितना है ? यह समझ लेकर उसे मार्गदर्शन करके सेवा बताते समय उसी के साथ उसे आशीर्वाद प्राप्त होना भी आवश्यक है। याचक दुख के निवारण के लिए जिंदगी भर सेवा कर रहा है इसका मतलब, उसे उस सेवा का फल प्राप्त नहीं हो रहा है और वह दुखी ही रहता है। दुख और सुख ये दोनो अवस्थाऐं प्राप्त हो जाए ऐसी इच्छा होगी तो भी जन्म लेते समय दुख निर्माण हो ऐसा कर्म का धर्म नहीं है। जब जीवन में विकास होने का समय आता है तब हम जिसे दुख कहते है, वह वास्तव में सुख है क्योंकि उस समय कर्म के कारण आई हुई वह विपत्ति हमें जागृत करती है और फिर उसके अनुसार दृष्टि यानि ज्ञान यह अवस्था प्राप्त होकर वह याचक यह खोजने लगता है कि 'जीवन के मायने' क्या है ? इसके विपरीत मनुष्य को यदि सदैव सुख की प्राप्ति होती रही तो मृत्यु के क्षण तक वह प्राप्त हुए दुर्लभ जीवन को नजरअंदाज करता रहता है। जब कर्म के कारण आई हुई विपत्ति के कारण मनुष्य 'जीवन के मायने क्या है' ? इस विचार की ओर जाता है तो उसी क्षण इहलोक में रहते हुए भी उसके इहलोक के जीवन का लय होता है और उसके परलोक के जीवन का आरंभ होता है। ऐसे जीवन का अनुभव इसी जन्म में लेना है। जीवन का पहला दौर कर्म के अनुसार होता है और वह कर्म, 'जीवन में जागृत होना', यह अवस्था प्राप्त कर देता है और इसके कारण जीवन का दूसरा दौर यह होता है कि 'यह जीवन केवल खुद के लिए न होकर औरों के लिए भी है 'यह कर्त्तव्य जीवन में निश्चित होता है। इसका अर्थ यह है कि प्रपंच और परमार्थ ये अलग अलग नहीं है। जिस प्रकार ईश्वर का अस्तित्व मूर्ति या प्रतिमा में दिखाई देता है लेकिन ईश्वर का आशीर्वाद दिखाई नहीं देता है, उसका अनुभव होता है, उसी प्रकार प्रपंच सामने दिखाई देता है लेकिन उसमें परमार्थ का अनुभव होता है। इस तरह 'अनुभव होना' इसी को 'कृपापात्र होना' यह कहा गया है। गुरूकृपा से ऐसी अवस्था प्राप्त करना इतना ही इसका अर्थ न होकर, हमारे जीवन में 'गुरूकृपा सम्मिलित ' होना यह इसका अर्थ है। सेवा में एक साल गंवाया इसका अर्थ जीवन व्यर्थ खर्च किया ऐसा न होकर पिछले एक साल से जो काल सेवा में व्यतीत हुआ उसका लाभ आगे प्राप्त करना है, ऐसा इसका अर्थ है।

गुरूमार्ग में साधक को ये शब्द पूर्णतः समझना और उनका ज्ञान होना आवश्यक है कि 'क्या गंवाना' ? क्या प्राप्त करना ? अगर इन शब्दों का मतलब समझ नहीं आया तो सुने हुए ये शब्द, शब्द ही रहते है और इन शब्दों का क्या संदर्भ है ? इसका बोध नहीं हो सकता। इसलिए साधक को साधना काल में पूर्णतः जागृत रहना आवश्यक है। इस अवस्था को 'जागृति' कहते है। औदुंबर में सेवा के पहले साल जो लाभ हुआ वह इस तरह हुआ कि बारह साल सेवा में व्यतीत करने से प्राप्त होने वाले फल का अनुभव बारह मास यानि एक साल में ही प्राप्त हुआ। ऐसी सेवा का लाभ, 'अनुभूती' करके जगत् को बताने के लिए स्वयं के पास बचे रहना, इसका अर्थ कृपा होना है। इस अवस्था में काया वाचा मन इनका समावेश होकर चौथी अवस्था, 'गुरूभक्ति,' यह अवस्था प्राप्त होती है। 'गुरूभक्त' इसका अर्थ गुरू की इच्छा अनुसार या आज्ञा अनुसार आचरण करना। मतलब आचार विचार और उच्चार इनकी त्रिपुटी (तीनों की एकरूपता) होकर सदैव गुरू आज्ञा अनुसार आचरण करना। गुरू मार्ग में आचरण करना इसका अर्थ नम्रता से लीन होना है। गुरू मार्ग का अनुकरण बहुत लोग करते है और उस समय जो पूंछ सच्ची नहीं होती है, उस पूंछ को, थोड़ा कुछ पढ़ कर ही हम खुदको चिपका लेते है। उस पूंछ के कारण धीरे–धीरे ज्ञान होने के बजाय, फिजूल ज्ञान के कारण अंहकार आता है। इसलिए अगली अवस्था प्राप्त करते समय, "प्रथम अवस्था प्राप्त करने के लिए जो बंधन थे उनमें कुछ अर्थ नहीं था" इस प्रकार के विचार करने के कारण प्रथम अवस्था का ही श्रीगणेश (आरंभ) नहीं लिख सकते है। तो फिर ऐसी स्थिति में, दूसरी अवस्था कब और कैसे प्राप्त होगी ? यह बताना नामुमकिन है।

किताबें पढ़ कर अनेक लोग 'जागृति अवस्था' का मतलब बताते होंगे तो भी जागृति अवस्था के अर्थ के अनेक प्रकार है। जागृति अवस्था का एक अर्थ यह है कि, 'जागृति' इस शब्द का उद्देश्य क्या है ? इसके अलावा कहने लायक, बोलने लायक या आचरण करने लायक ऐसे कितने अर्थ हम इससे निकाल सकेंगे इसका अनुभव लेना आवश्यक है। केवल बाजार में बताई गई किताबों की कीमत चुका कर विपत्ति खरीदने की

अपेक्षा जागृति अवस्था के बारे में ज्ञान न होना, यही आशीर्वाद है, ऐसा समझना ही बेहतर है क्योंकि निवेदन में जो कुछ अनुभव लिखा है उसका अर्थ स्पष्ट होना, इसका यह अर्थ है कि अगली अवस्था में, उसका अनुभव प्राप्त करना और वह अनुभव औरों को होना, और यह क्रिया दो तरफा होती है। केवल जागृति अवस्था प्राप्त होना, यह कभी भी मुमकिन नहीं है और साधक स्वयं उसका अनुभव प्राप्त नहीं कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में एक मूल अवस्था होती है। गुरूमार्गी होने से उस मूल अवस्था में बदलाव होना यह जागृति अवस्था है और इस अर्थ का बार बार अनुभव होना आवश्यक है क्योंकि मूल अवस्था में 'बनना' यह क्रिया स्वाभाविक है। इसकी अपेक्षा, अलग कुछ बनाना और उसका लाभ औरों को होना, इसका अर्थ यह है कि, जागृति अवस्था में स्वयं जागृत होना इतना ही अर्थ नहीं है बल्कि उसका अर्थ इस प्रकार है :– हम जो साधना करते है उसका अनुभव काया वाचा मन को होना इसका अर्थ 'जागृत होना' यानि 'जागृति' है। यह प्रथम अवस्था काया वाचा मन की त्रिपुटी में (तीनों की एकरूपता में) होती है और बाद में वह अवस्था साधन में होना आवश्यक है इसका मतलब यह है कि जागृति यह अवस्था प्रथम साधक को और बाद में साधक जो साधना करता है, उस साधना को प्राप्त होना आवश्यक है। ये दोनो अवस्थाएं प्राप्त होना आवश्यक है, नही तो भक्त गुरू से मिलने आने पर गुरु को उससे खुद को तकलीफ न हो इसलिए कुछ बहाना बना कर उसे जाने को कहना यह योग्य नहीं है। इसलिए साधना का 'मार्ग' यह प्रथम अवस्था और उसका 'दर्शन' यह दूसरी अवस्था है। जगत् को बहुत भूख लगी है। बहुत से लोगो में केवल पेट की भूख लगती है जिसका अर्थ भीख मांगने की इच्छा होना, यह है साधक को 'भाक' लगती है और जब तक उस 'भाक' के भूख की तृप्तता नहीं होती है, तब तक साधक को शांति नहीं मिलती और इस प्रकार ऐसे बहुत से साधकों का जीवन व्यर्थ हुआ है। ऐसे साधको की निष्ठा सराहनीय होकर भी उससे उन्हें लाभ नहीं होता है। वास्तव में केवल गुरू मार्ग में 'होना' इसमें जो धोखा होता है वह भूलने योग्य नहीं है। ध्यान धारणा करने से कर्म आधीन होता है या कर्म का निवारण हो जाता है, लेकिन धर्म का पालन होना आवश्यक है। धर्म कभी भी झूठ नहीं बोलता। धर्म में झूठी बाते या दांभिकता नहीं होती है क्योंकि

धर्म की चाल अलग होती है। धर्म की आहट हो जाए तो औरों को जागृत करने की अपेक्षा खुद जागृत होने में बढ़प्पन है। यह जागृत अवस्था प्राप्त करते समय साधना में काया वाचा मन सम्मिलित होना आवश्यक है। काया यह साधना का प्रमुख माध्यम है। उसमें पांच महाभूत तत्व यानि पृथ्वी आप तेज वायु और आकाश हैं। उसके बाद वाचा है उसमें पंच प्राणकोष यानि अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोष है। उसके बाद मन है जिसमें पंचतन्मात्रें यानि गंध, रस रूप, स्पर्श और शब्द है इस तरह इन पंद्रह माध्यमों का समावेश और कार्य जीवन में होना आवश्यक है। बाद में बुद्धि, मन (प्रज्ञा), चित्त और अहं आकार ऐसे चार माध्यम, यानि कुल मिला कर उन्नीस माध्यम यानि जीवन है। जीवन में उन्नीस माध्यमों का कार्य होना, ऐसी अवस्था प्राप्त होना आवश्यक है, नही। तो जीवन की   धारणा केवल सात ही माध्यमों से होती है और शेष बारह माध्यम होकर भी न होने के बराबर होते है। इसलिए साधना करते समय केवल ईश्वर की आराधना करने से ही फल नही मिलता। जिन माध्यमों की कमी है उन माध्यमों की प्रथमतः प्राप्ति कर लेना आवश्यक है। यदि यह प्राप्ति हो गई, तो 'ईश्वर' यह कोई अलग विषय नही है, यह ज्ञान प्राप्त होगा और जब उन्नीस माध्यम कार्यान्वित होंगे उस समय 'आत्मा' यानि 'शिव' यह अवस्था प्राप्त होगी।

ऊपर बताई अवस्था प्राप्त होने के लिए केवल चरित्र पढ़ना या मनन करना ही उचित नही है इसलिए जीवन के आरंभ में श्रीभैरवनाथजी ने मुझे ॐकार करने के लिए कहा और यह आशीर्वाद दिया कि,' भविष्य में इस ॐकार साधना से, 'जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में' इसका मतलब क्या है इसका ज्ञान तुम्हें और अन्य साधको को प्राप्त होगा। उसके लिए ॐकार, यही एक साधना है। इस ॐकार साधना में पांच अवस्थाएं है। उन में तीन अवस्थाएं पिंड के ज्ञान के लिए और दो अवस्थाएं ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त हो इसलिए है। इस प्रकार की यह जो साधना मैं सीखा रहा हूँ वह ध्यान से सुनो। अगर उन पाँच अवस्थाओं में एक भी अवस्था वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार न हुई या उसमें गलती हो गई तो भविष्य में साधना सिद्ध नहीं होगी। इसलिए साधना करते समय ध्यान देना इसका अर्थ 'सिद्ध होना'

है। साधना की पांच अवस्था यह ॐकार के पांच रूप होकर, भविष्य मे वे पांच रूप हजारों रूप होंगे। मतलब, साधना के आरंभ में यदि पांच ही लोगो को इस ॐकार की संथा सिखाओगे तो भी बाद में हजारो भक्त सिद्ध होंगे, ऐसा मेरा 'आशीर्वाद' ही नही बल्कि 'कृपाशीर्वाद' है। इसका अर्थ यह है कि प्राप्त हुआ 'आशीर्वाद' दूसरों को नहीं दे सकते है। दूसरों को दे सके इसलिए 'कृपाशीर्वाद' प्राप्त होना आवश्यक है।"

17. ॐकार साधना – अंग

ॐकार साधना उसके सूचित अंगो के अनुसार करने से ही इस साधना की प्राप्ति होगी। केवल एक ही अंग से ॐकार साधना करने से इसका, शास्त्रीय दृष्टिकोण से लाभ प्राप्त नहीं होता है।

प्रथम अवस्था

उच्चार मध्य लय

मध्य

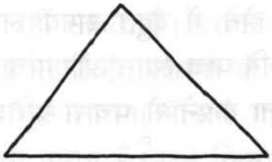

उच्चार लय

उच्चार, मध्य, लय इन अंगों से ॐकार कहते समय वह संथा पद्धति से करना चाहिए।

प्रथम यह ॐकार ढ़ाई सेंकंण्ड में करना चाहिए और बाद में साधक की प्रगति दिखाई देने के बाद पांच सेंकण्ड में करना चाहिए और उसके बाद तीसरी अवस्था में दस सेंकण्ड की ॐकार संथा कहनी चाहिए।

दूसरी अवस्था

1) उच्चार मध्य लय
2) स्वर ताल लय

इस अवस्था में प्रमाण (scale) और स्वर के साथ संथा कहनी चाहिए क्योंकि इस संथा पद्धति में वाणी से ॐकार ध्वनी का उच्चार करने से वायुमण्डल में ध्वनी–लहरी–ध्वनी का निर्माण होता है। वाणी से इस ध्वनी का उच्चार होकर जब वह ध्वनी सुनाई देती है तब 'प्रतिध्वनी' यह क्रिया

निर्माण होती है मतलब ध्वनि–लहरी–प्रकाश यह अवस्था। इस प्रकाश का अर्थ "उजाला" ऐसा नहीं है। 'प्रकाश' इस अवस्था का यह अर्थ है कि साधक को, वह जो साधना करता है उस साधना का 'अहसास' होना। साधना करते समय जिन पांच स्थानो से ॐकार होना आवश्यक है, वे नाभी, हृदय, कंठ, ललाट और ब्रह्मस्थान है। साधना करते समय इन पांच स्थानों से उच्चार करना चाहिये। इस प्रकार से साधना करने से अनायास (सहज) पांच कोषों का लाभ होता है। नाभी, हृदय, कंठ, ललाट और ब्रह्म इन पांच स्थानों में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय ये पांच कोष होते है और इन पांच कोषों पर हमारा जीवन आधारित है। इस साधना की प्राप्ति होने में बहुत समय लगता है लेकिन जब यह अवस्था प्राप्त होती है यानि पांच स्थान और पांच कोष इनका विकास होता है तब साधक को साधना करने से पचास प्रतिशत लाभ होता है।

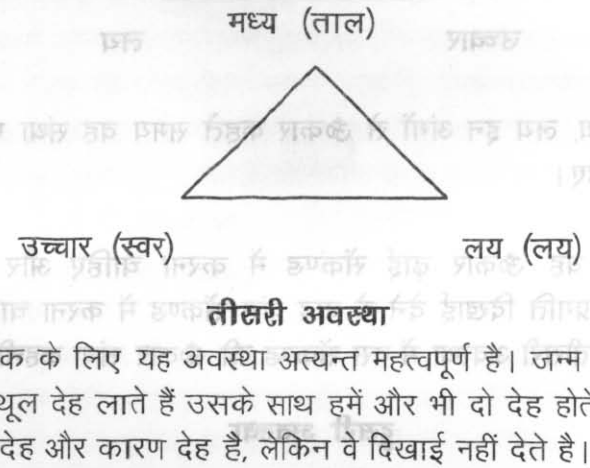

तीसरी अवस्था

साधक के लिए यह अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जन्म लेते समय हम जो स्थूल देह लाते हैं उसके साथ हमें और भी दो देह होते हैं। वे दो देह सूक्ष्म देह और कारण देह है, लेकिन वे दिखाई नहीं देते है। हमें केवल एक ही देह का अहसास होता है। जब कोशिश करके भी हमारा ईष्ट काम पूर्ण नही होता है, तो हम कहते है कि यह कर्म का फल है लेकिन ईश्वर से तीन देह पाकर भी जब हम एक ही देह से कोशिश करते है तो उसमें हमें दो देह की जो कमी महसूस होती है उसे हम 'समस्या' कहते है। 'हमारा एक देह व्यक्त (दिखाई देने वाला) है तो भी उसके पीछे जो दो देह अव्यक्त (ना दिखाई देनेवाले) है उनका लाभ प्राप्त होना 'इसमें साधना का मोक्ष और सोक्ष है, मतलब उस अवस्था की साधना की प्राप्ति

करना आवश्यक है। पहली दो अवस्था की साधना में काया, वाचा, मन इन माध्यमों की आवश्यकता थी। अब तीसरी अवस्था की साधना में स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन देह को आचार, विचार उच्चार इनके लाभ की प्राप्ति करानी है। इसके लिए यह संथा ध्यान देकर तथा उच्चार का शब्द शुद्ध स्वरूप में, कहना आवश्यक है। जब ये दो अवस्था एकरूप होगी तब मन एकाग्र होगा और इस अवस्था में स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीनों देह को साधना का लाभ होगा और बिना जाने 'अहं आकार 'यह अवस्था प्राप्त होगी। इस प्रकार साधना के प्रथम अवस्था में स्थित्यंतर (बदलाव), उसके बाद स्थिति और उसके बाद अवस्था है। लेकिन यह जो 'अवस्था' है इसका अर्थ कोई भी कह नहीं सकता है। इसका अर्थ यह है कि साधना यह क्रिया आचरण से होती रहती है। साधना के धर्म का अनुभव देह को प्राप्त होना आवश्यक है। मूल साधना में धर्म यानि 'ईश्वर' नहीं है तो 'ईश्वर' यह माध्यम सहायता करता है। जब किसी व्यक्ति को साधना की ये तीनों अवस्थाएँ प्राप्त होती है तब उस व्यक्ति को 'साधक' कहते है।

साधना की प्रथम अवस्था 'स्थित्यंतर' का मतलब यह है कि अपने मूल आचार विचार और उच्चार का एकरूप होना। उसके बाद की स्थिति अवस्था प्राप्त होना इसका मतलब है कि स्वयं के सुख या दुख इनकी अपेक्षा इनसे बढ़ कर प्रेम औरों के प्रति निर्माण होना और उसके बाद की अवस्था, इसका मतलब है जगत् पर परोपकार करना। इसलिए जो साधना श्रीगुरू ने सिखाई है उसका स्पष्ट रूप में अर्थ अहं (मैं), त्वं (तुम) व इदं (वह) यह है। इसीका मतलब कृपाप्राप्ति होना है।

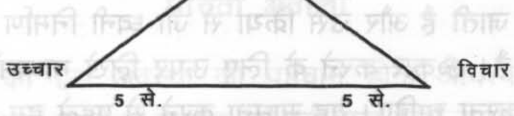

चौथी अवस्था

प्रथम तीन अवस्था में काया वाचा और मन इनकी एकरूपता, और उसके बाद पांच स्थान और पांच कोष इनकी प्राप्ति हुई है। जन्म लेने वाले

जीव का कार्य केवल खाना पीना इतना ही ना होकर जन्म लेने के बाद प्राप्त जन्म का विकास होना आवश्यक है। ॐकार साधना की प्रथम तीन अवस्था में जीव और जीवात्मा इन अवस्थाओं की प्राप्ति होती है। यानि हममें जो आत्मा है उसके अस्तित्व की अब प्राप्ति होती है, जो पंचप्राण है वे केवल अन्नमय कोष में न रह कर ॐकार साधना में से जीव→जीव त्मा→आत्मा यह क्रिया होती रहती है और पांच कोषोंमें चेतना अवस्था के बजाय 'चैतन्य' अवस्था निर्माण होती है। इसका अर्थ यह है कि आत्मा को ईह जन्म में कार्य करने की जो इच्छा होती है उसकी वह इच्छा इस अवस्था में पूर्ण होती है। इसलिए साधना का उच्चार यह 'स्वर 'में होना आवश्यक है और 'स्वर' कहते समय 'ताल' का ध्यान रखना भी आवश्यक है। अगर ताल का ध्यान नहीं रख सके तो अगली अवस्था यानि वाणी से सुर की निर्मिती नहीं होगी। इसलिए संथा का बहुत महत्व है।

इस अवस्था में ॐकार उच्चार करते समय यह उच्चार वाणी से करना चाहिए। बाकी समय हम जो बोलते हैं, या कोई गीत गुनगुनाते है तब यह उच्चार देह माध्यम से किया जाता है, उसे 'वाणी' कहना उचित नही है। जब ॐ का उच्चार वाणी से किया जाता है तब आवश्यक माध्यम इस प्रकार है 1) दो होंठ, 2) जबान की नोंक, 3) ताला, 4) श्वास् उच्छवास् और 5) स्वर यंत्र। इन माध्यमों से ॐकार का उच्चार करना आवश्यक होता है। धीरे धीरे आदत होने से वाणी से ॐकार का उच्चार हो सकेगा। वाणी का मतलब हम जो बोलते है वह शब्द या स्वर यंत्र के उपयोग के कारण जो ध्वनी सुनाई देती है वह ध्वनी नहीं है। प्रथम अवस्था में ॐकार करने के लिए उपरोक्त माध्यमों का उपयोग किया जाता है। लेकिन बाद में धीरे धीरे कंठ में स्थित स्वरयंत्र से उच्छवास बाहर निकालने की क्रिया की जाती है और उस क्रिया से जो ध्वनी निर्माण होती है उसे ॐकार कहते है। ॐकार करने के लिए ऊपर लिखे माध्यमों का कम से कम उपयोग करना चाहिए। यह साधना करने से पहले हम अपना कहना दूसरों को समझाने के लिए स्वरयंत्र का उपयोग कर के बोलते थे तो भी उस बोलने में 'स्वर' है ऐसा नहीं कह सकते है। हम और हमारे इर्दगिर्द के लोग अलग-अलग प्रकार से जो बोलते है वह बोलना देहिक क्रिया

द्वारा होता रहता है। ॐकार का उच्चार यह आत्मा से करना आवश्यक है। ॐकार साधना आत्मा के लिए है।

जब हम सामूहिक तौर पर साधना करते हैं तब सबकी वाणी का एक निश्चित स्वर पर अवधान होना आवश्यक है। इस प्रकार सामुहिक तौर पर ॐकार करते समय सब लोगो द्वारा किए ॐकार का एक ही स्वर सुनाई देना आवश्यक है। यदि हम स्वयं का स्वर औरों के स्वर से जोड़ नहीं सकते है तो इसका अर्थ हम केवल देह से ॐकार साधना कर रहे है यही साबित होता है। ॐकार का उच्चार करते समय यदि हम स्वर का अवधान रख सके तो 'सूर' यह अवस्था आसानी से प्राप्त होती है। चौथी अवस्था का, ' स्वर, ताल, लय ' यह जो अंग है उससे वाणी से स्वर ध्वनित होना यह साधक की देहिक अवस्था है। आगे यही अवस्था सूर अवस्था से एकरूप होगी इसलिए स्वर और सूर इनका, योग्य समय में उच्चार करना यानि ॐकार ताल से युक्त उच्चार करने से 'सूर' का रूपांतर 'आत्मा 'अवस्था में होता है। इसी का अर्थ है 'स्व–सूर '। मतलब सृष्टि के सौन्दर्य के गीत का सृष्टि में सदैव कार्यान्वित होना। हम जो गाना गाते हैं वह देह का विकार है, और ऊपर बताए अनुसार ॐकार का उच्चार करने से हमें, 'आत्मा की ध्वनी' यह विचार यानि योग्य विकास इसका लाभ प्राप्त होता है। इस अवस्था में अपना प्राप्त जीवन 'वीणा' बननी चाहिए यानि सरस्वती यानि ज्ञान प्राप्त होना। यह चौथी अवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण है इसका सूज्ञ भक्तों को ध्यान रखना आवश्यक है। सिर्फ ऐहिक जीवन के लाभ के लिए ॐकार साधना तीन अवस्थाओं में सूचित की गई है और पारमार्थिक जीवन के लिए ॐकार साधन की चौथी और पांचवी अवस्था है।

पांचवी अवस्था

साधक को इस अवस्था की पहचान होना आवश्यक है पाँचवी अवस्था में ॐकार करने से साधना का मर्म (मूल तत्व) यानि पूर्णता इसकी जान–पहचान का अनुभव होना आवश्यक है। प्रथम अवस्था में 'पहचान' यह शब्द लिखा है। ' पहचान' यह शब्द पूर्व जन्म से संबंधित है क्योंकि ज्ञान–अज्ञान से हमारे हाथों जो होता रहता है वह पूर्व संचित पर निर्भर

होता है। मतलब भविष्य में होने वाली घटना की पहचान के बिना इह जन्म में उस घटना की पुनरावृत्ती नहीं हो सकती है। इसके अनुसार यह है कि, हमारे पिछले अनेक जन्मों में से कुछ जन्मो में हमने कुछ साधना की होगी, उसके बगैर हम आज इसी गुरूमार्ग में नहीं आते इसका अर्थ अंग्रेजी में Admission without permission अनुमति के बगैर प्रवेष है। इसका मतलब यह है कि इस जन्म में हमारी इच्छा देवधर्म का आचरण करना चाहिए–या नहीं करना चाहिए इस प्रकार दो तरफा होता है क्योंकि यह जन्म पूर्व जन्म के अनुसार हुआ है लेकिन इस जन्म में हमारे इर्दगिर्द जो जगत हमें दिखाई देता है उसके आचरण के अनुसार ही आचरण करे ऐसी हमारी इच्छा होती है। जगत् के अनुसार आचरण करने पर भी जब शांति की प्राप्ति नहीं होती है तब सहज ही हमारा मन हमारे बिना जाने यह खोज करने लगता है कि क्या करने से शांति प्राप्त होगी ? इसका कारण ऊपर लिखे सत्य के अनुसार है। पाँचवी अवस्था में साधना करने से पहले चौथी अवस्था में तीन देह मतलब तीन जन्म एकरूप होते है। इन तीनों जन्मों में से हर एक जन्म में हमने कुछ ना कुछ सत्कार्य किया ही होता है। यह सत्कार्य हमें प्राप्त जन्म में जब किसी कठिनाई का सामना करना पड़ता है तब काम आता है और साधक को जिस सुख–षांति–समाधान की कमी महसूस होती है उस कमी की पूर्णता करने के लिए निष्चित मार्ग की राह दिखाता है। बहुत से लोगो को ऐसा लगता है कि बहुत सत्कर्म करें ताकि उन सत्कर्मों के लाभ से हमारी मुक्तता होगी या हमें मुक्ति की प्राप्ति होगी। लेकिन ईष्वर मुक्ति देंगे इस इच्छा से मन्नत मांग कर, या ईष्वर के प्रति साधना करके, मुक्ति प्राप्त नहीं होती। तथा ईष्वर को प्राप्त करने से भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मुक्ति की प्राप्ति साधक को स्वयं ही करनी होती है। इसलिए इस पांचवी अवस्था पर जीवन का निर्णय निर्भर होता है, जो है, अंग्रेजी कहावत के अनुसार Hell or Heaven यानि स्वर्ग या नरक इनमें से किसी एक अवस्था में साधना की पूर्णता होना।

उपर्युक्त अवस्था का महत्व ईष्वर प्रसन्न होना या मुक्ति प्राप्त होना इससे भी अधिक श्रेष्ठ है। इस अवस्था में गुरूभक्ति करते समय क्या है और क्या नहीं है इसकी खोज हमको स्वयं ही लेनी चाहिए।

साधना–यह एक ही साधन है कि जिससे इहलोक, परलोक और स्वर्गलोक इन तीन अवस्थाओं की प्राप्ति इसी जन्म में कर सकते है लेकिन इनमें ऐसा कार्य है जैसे रेत के कण पीस कर उनसे तेल निकालना यानि बहुत प्रयत्न करके यष प्राप्त करना। साधना की चौथी अवस्था में स्वर, ताल, लय यह संथा थी। पांचवी अवस्था मे सूर, ताल, नाद यह संथा कहने की आदत लगा लेनी चाहिए। इस अवस्था में देहिक और आत्मिक इन दोनों तत्वों से संथा करना आवष्यक है। इसलिए गुरूमार्ग की यह साधना कितनी सूचक है यह समझ लेना आवष्यक है। चाहे लाख रूपये प्राप्त हो या खर्च हो तो भी यह जो साधना सूचित की गई है वह करते समय साधना में सौ प्रतिषत अवधान होना आवष्यक है। और यह साधना श्री सद्गुरू ने सूचित की है इसलिए यह साधना प्राप्त होने तक सेवा की पूरी कोषिष करना आवष्यक है। यह साधना आगे के आयुष्य में, या कठिनाईयों का निवारण होने के बाद करेंगे ऐसा कहना सही नही है। इसका कारण यह है कि इस साधना के लाभ के लिए हमारे काया, वाचा, मन की इच्छा नहीं होती है तो केवल श्रीगुरू की आज्ञा के कारण हम यह साधना करने के लिए प्रवृत्त होते है। और यह प्रवृत्ति पिछले जन्म के हमारे पुण्य के कारण उदित होती है। इस जन्म में भी साधना का लाभ हो इसलिए फिर से वैसे ही कर्म हमसे हो ऐसी श्रीसद्गुरू की इच्छा होती है। यदि अड़चनों का बहाना बनाकर हमने सेवा करने में ढिलाई या लापरवाही की तो फिर से यह मौका या यह योग प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि गुरू–षिष्य का यह खेल नाटक के रूप में चलता रहता है। हमारे सामने जो घटना घटित होती है वे सब नाटक स्वरूप में है लेकिन इन घटित होने वाली घटनाओं को टकटकी लगाकर देखने से, बाद में सत्य का अनुभव प्राप्त होता है।

साधना की चौथी अवस्था में हम जो स्वर कहते है उसका अर्थ केवल शब्द रूप में नहीं है। इस जगत् का जो निरंतर कार्य चल रहा है उस कार्य में सृष्टि सम्मिलित है। स्वर की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड से है। जब ब्रह्माण्ड पृथ्वी के समान स्वयं के सब ओर परिक्रमा करता है तब उसकी उस परिक्रमा के कारण जो गति निर्माण होती है उस गति से नाद निर्माण होता है।

पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के नियम के अनुसार, बाद में यह नाद पृथ्वी की ओर आता है तब इस नाद से सात स्वरों का निर्माण होता है। इन्हीं स्वरो को 'सप्तलोक ' कहा जाता है। हम मानवों को पहले स्वर में पहले लोक की प्राप्ति होती है। इहलोक में जन्म लेने के बाद बालक जिस पहली ध्वनी का उच्चार करता है वही पहली ध्वनी है। बालक को जन्म देने वाले माता पिता लाड़ प्यार से बालक के इस पहले स्वर को 'रोना' कहते है। इस रोने से आसपास के रिश्तेदार जाग जाते है, बालक की माता जाग जाती है और बालक की पूछताछ करने लगती है। इस प्रकार पहली अवस्था का स्वर जो रोना है यह गाना होता है और बाद में श्रीगुरू को भी बार बार भक्तों का रोना–धोना सुनना पड़ता है। थोड़ी उम्र बढ़ने के बाद बालक दूसरा स्वर 'बुड़बुड़' इसका उच्चार करता है। उसके बाद वह बालक ज्ञानी होकर भी अज्ञानी बन जाता है और 'लाओ' यह स्वर कहने लगता है।

ऐसे तीन स्वरों का प्रथम स्वरूप में काया, वाचा, मन से उच्चार करने के बाद बालक का जो उच्चार होता है वह उच्चार ॐ है या चीख है यह आप ही निश्चित करें। आज गुरूमार्ग में हैं– इसलिए सूर में साधना, आरती की जाती है लेकिन उसके लिए गुरू की इच्छा के अनुसार नम्र होना यह परहेज होता है और यह परहेज नहीं माना तो भक्त के मुताबिक घटना–घटित ना होने के कारण वही भक्त बेसुरा होकर गुरूमार्ग के बाहर जाकर सूर खोजने में फिर जीवन का आरम्भ करता है। पहली अवस्था यानि पहला सूर इसका निर्माण रोने में है। लेकिन हमनें रोने के लिए जन्म नही लिया है यह ध्यान में रखना आवश्यक है और यदि हम कृपा की खोज में यहाँ आए है तो यह रोना–धोना नहीं है बल्कि संगीत की एक रागिनी है – यह पहचान जगत् को होनी आवश्यक है। इस संगीत की रागिनी में जब भक्त, स्वर और सूर से विश्व का गीत गाएगा तब यह सृष्टि धन्य होगी।

18. सितारो में इंद्रधनुष

ॐकार साधना की पद्धति श्रीभैरवनाथजी ने बताई है। आरंभ में इस ॐकार साधना की महत्ता मेरी समझ में नहीं आई। औदुंबर आने के बाद मैं नित्य नियम से ॐकार करता था लेकिन यह ॐकार भविष्य में नित्य की साधना होगी ऐसा मैने उस समय नहीं सोचा था। फिर भी उस समय मुझे ॐकार की महत्ता बहुत अलग लगती थी। औदुंबर में एक दिन मैने बहुत उज्वल प्रकाश देखा जैसा मैने पहले अमावस्या की रात को अनुभव किया था। उसी प्रकार उस समय मैने सितारों में इन्द्रधनुष देखा। वास्तव, में इंद्रधनुष के सात रंग सूर्य प्रकाश में दिखाई देते हैं लेकिन उस दिन पूनम की रात थी। माघ का महिना था। परमपूज्य हाजीबाबा का उर्स था। शाम को प्रार्थना करने के बाद मुझे संगीत की अभोगी रागिनी के सूर सुनाई देने लगे और उसके बाद धीरे धीरे वे सूर और उभर कर मुझे इंद्रधनुष दिखाई दिया। आखिर में मुझे यह अहसास हुआ कि यह इंद्रधनुष है लेकिन हमेशा आकाश में जैसा इंद्रधनुष दिखाई देता है वैसा न होकर यह तो स्वरों का इंद्रधनुष है! इंद्र देवताओं का राजा है। वैसे स्वर संगीत का राजा है और ' सूर ' धनुष का तीर है और यह ' सूर का तीर ' आकाश की ओर जा रहा है ऐसा मुझे दिखाई दिया। उस समय मुझे हाजीबाबा की वाणी सुनाई दी " पांच पीर को याद करो " इसका अर्थ है कि पांच स्थानों से जो पांच स्वर निकलते है उन पांच स्वरों का एक ही राजा यानि 'इन्द्र या आत्मा' है। "हमें जो जगत दिखाई देता है वह एक सौ अस्सी अंश का जगत् है। वास्तव में जगत् तीन सौ साठ अंश का है लेकिन उसमें से एक सौ अस्सी अंश का भाग ही दिखाई देता है मतलब उसका दर्शन होता है यह पिंड का दर्शन है और बाकी का एक सौ अस्सी अंश का भाग 'ब्रह्माण्ड़' है। 'इस जगत् का जो एक सौ अस्सी अंश का भाग दिखाई देता है, वह धनुष है। धनुष यह शब्द ध+मनुष्य ऐसा है। गुरू को मिले बिना इस 'ध' के आगे मत जाओ ' ऐसी चेतावनी हाजी मलंग बाबा ने उस समय मुझे दी। इसका अर्थ यह है कि सा–प ('सा' स्वर से 'प' स्वर तक सा–रे–ग–म–प) की प्राप्ति हो गई तो गुरूभेंट होने से प–सा ('प' स्वर से 'सा' स्वर तक प–ध–नी–सा) इस लाभ की प्राप्ति होगी तब तक सब्र

रखो। नहीं तो मृत्यु देवता राह देखती ही है और उसे चकमा देना जितना आसान लगता है उतना आसान नहीं होता है। आज का दिन उर्स का दिन है। अल्लाह् की दुआ है। सलाम आलेकुम !"

उस रात मुझे नींद नही आई। भोर के तीन बजे तक मुझे ऐसा लगता था कि मै कुछ आवाज सुन रहा हूँ। इसलिए मैं तीन बजे ही उठ कर स्नान करने चला गया। बाद में स्नान के बाद प्रातः स्मरण करते समय मुझे वही ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई दी। मैं ध्यान देकर वह ध्वनि सुनने लगा तो उससे 'ध्वनि लहरी ध्वनि' यह समझ में आया। इसका क्या अर्थ है ? यह विचार मैं करने लगा। श्रीभैरवनाथजी ने पांच स्थानों से कार सिखाया था और आज कार का रूपांतर 'ध्वनि लहरी ध्वनि' इस तरह सुना। कहने का अर्थ 'संथा' है ! भविष्य में यही संथा हर रोज ब्रह्ममुहुर्त पर कहनी है। यह संथा कहते समय उसमें पांच स्थान अंतर्भूत होते है या नहीं इसका जब मैने अनुभव लिया तब अपनी देह में ये पांच स्थान है, यह मुझे पहली बार समझ में आया और की गई साधना से इन पांच स्थानों का संबंध जोड़ना है यह ज्ञान भी हुआ। मतलब प्रथम नाभीस्थान और आखिर में ब्रह्मस्थान। देह में चौरासी योनि हैं और उनका कार्य काया, वाचा और मन द्वारा होता है। पहली योनि नाभी स्थान से निर्माण होती है और इस तरह ब्रह्मस्थान तक सब योनियों का समावेष होकर उनका संबंध इन पांच स्थानों से यानि पांच कोषों से होता है। इन योनियों का कार्य, 'केवल योनि है ' यह सोच कर नहीं होता है। इसके लिए जो साधना हम करते है उस साधना में इन योनियों का अंतर्भूत होना आवष्यक है। पहले मैने यह अनेक बार सुना था कि चौरासी लक्ष योनि का मतलब यह है कि चौरासी लक्ष योनि में जन्म लेने के बाद मनुष्य जन्म प्राप्त होता है लेकिन उस दिन यह स्पष्ट रूप में समझ आया कि 'लक्ष' यह अंक न होकर इसका अर्थ 'ध्यान दो' ऐसा है। इस तरह गुरूमार्ग में प्रथमतः यह बोध हो गया। जैसे पाठषाला जाकर प्रथमतः श्री गणेषा लिखना और पढ़ना सीखते है उस प्रकार साधक को उसकी 'साधना' इस क्रिया से क्रियापद (Verb) प्राप्त होना, मतलब बोध होना आवष्यक है। साधना के नाम पर, सालों साल देह से केवल क्रिया करना यह साधना नहीं है। साधक को साधना का फल

क्या है यह समझना आवष्यक है। इसी प्रकार उस दिन पहली बार स्पष्ट रूप से यह समझ आया कि मनुष्य जन्म प्राप्ति का मतलब क्या क्रिया हो रही है और क्या क्रिया करनी है। मनुष्य को नौ महिने के बाद जन्म प्राप्त होता है। यह क्रिया नौ महिने में होती है लेकिन इस क्रिया का 'पद' प्राप्त होना मनुष्य के आचार विचार और उच्चार इन पर निर्भर है। इसी क्रिया को 'पुण्य' कहते है। यह बोध हो जाने पर मुझे अहसास हुआ कि बचपन में 'षेषषायी विष्णु भगवान' की नाभी से निकले विसर्पी पौधे की नोक पर कमल में ब्रह्मदेव का होना इस चित्र का जो ज्ञान मुझे उस समय हुआ था उस ज्ञान का मुझे प्रत्यक्ष (साक्षात्) अनुभव हुआ हैं। पहले में सिर्फ चित्र देखता था पर आज उसका अनुभव प्राप्त हो ऐसी भूख उत्पन्न हुई। नाभी स्थान से हमारा जन्म नहीं, उदय हुआ है। यह 'उदय' जन्म का बीज है और इस बीज को खाद पानी देना यानि उसकी परवरिष करना यह हम मानवों का जन्मतः इष्टकर्त्तव्य है और इसके लिए गुरू का उपदेष यानि बोधामृत प्राप्त होने से जन्म सार्थक होता है। इस बोधामृत से हमारा जीवन 'ईष्वरमय' होता है।

19. साधना मे अंतर्भूत विष-विमोचन संकल्पसिद्धी

ऐसे साधना अवस्था में दिन बीत रहे थे। उस समय मेरे मन मे ये विचार आने लगे कि मैं कौन हूँ ? मेरा इस जगत् से क्या रिश्ता है कि उसके लिए मै यहाँ औदुंबर में सेवा कर रहा हूँ ? इन मुश्किल प्रयत्नों का जिम्मा मैने क्यूँ उठाया है ? जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में संघर्ष रहता ही है। जय या पराजय इनमें से कोई अवस्था हर एक के हिस्से में आ ही जाती है। मेरी इस साधना को भविष्य में दो फल प्राप्त हो सकते है। एक स्वयं का उद्धार और दूसरा जग का उद्धार इसलिए मेरे सामने सवाल उठ गया। अब तक ऐसी अवस्था का अहसास भी नहीं हुआ था। हाल ही में हाजीबाबा का उर्स हुआ उस दिन बाबा ने अभिवचन दिया था कि ''पांच पीर की उपासना करो। वे तुम्हारी और दुनिया की देखभाल करेंगे। ''ऐसे समय मेरी अवस्था नदी के बहाव में बह रही नाव के समान हुई थी, उस समय मन एकाग्र नहीं हो रहा था। ''मैं नित्य सेवा तो कर रहा हूँ लेकिन यदि सेवा में एकाग्रता नहीं होती तो यह सेवा में रूकावट है और अनजाने ये गलती मुझसे हो रही है ''इस विचार के कारण मैं बहुत चितिंत था। तब मैने सम्पूर्ण सप्ताह की घटनाओं का अवलोकन किया, इसका कारण यह है कि जो साधना हम करते है उसके प्रमुख अंग हमारे आचार विचार है और इन अंगो में हमारा नामी तत्व अदृश्य रूप में होता है। ऐसे समय नामी तत्व का शोध लेना आवश्यक है, नहीं तो यह साधना सिद्ध नहीं होती है। साधना सिद्ध हुई या नहीं इसका दुनिया को क्या पता होगा ? दुनिया को इतना ही मालूम था कि मैं सेवा के लिए औदुंबर में रह रहा हूँ। ऐसे समय झूठ बोलना या झूठा आचरण करना मेरे मन को ठीक नहीं लगा। आखिर चौथे दिन शाम को मै मंदिर के परिसर के बाहर जाकर बैठ गया और सोचने लगा। लेकिन मूल अवस्था का कोई निर्णय नहीं हो रहा था। उस समय ना नींद ना जागृती ऐसी अवस्था मे मैने यह दृश्य देखा कि, "औदुंबर तीर्थक्षेत्र में कोई यात्री आया है। वह यात्री अपने मृत पिता की इच्छानुसार ईश्वर के प्रित्यर्थ इकावन रूपये खर्च करने आया था। मैं हर रोज की तरह शाम को नदी के दूसरे किनारे पर स्थित देवी के मंदिर

में देवी के दर्शन के लिए गया था। जब उस यात्री ने यह पूछताछ की कि क्या यहाँ कोई सेवेकरी (सेवा करने वाला) सेवा कर रहा है ? तब पुजारी ने उन्हे मेरे रहने का ठिकाना दिखाकर कहा कि 'वे सेवा कर रहे है, और अभी वे नदी के दूसरे किनारे पर स्थित देवी के मंदिर मे देवी दर्शन के लिए गए है'। तब उस यात्री ने उसके मृत पिताजी के प्रित्यर्थ लाए हुए ईकावन रूपये मेरे आसन के नीचे रखे और नमस्कार करके वह चला गया। यह दृश्य देखते ही मैं मंदिर की तरफ भागा। मेरे रहने के स्थान पर जाकर मैने मेरा आसन उठाया तो मानो बिच्छुओं ने काटा ऐसा उन पैसो का दृश्य मैंने वहाँ देखा और मुझे श्रीगुरूजी के ये शब्द सुनाई दिए – "ये पैसे नही है, ये साधना में रूकावट करनेवाला विष है। इससे दूर रहो। यह जो विष है उसका 'विषय' तुम्हें साधना में सिद्ध करना है। इसीलिए आज उसकी प्रचिती का तुम्हें अनुभव दिया। अब यह जो विष है उसका विषय सिद्ध करो। आगे जगत को अमृत की आवश्यकता है इसलिए हरएक के खानदान के पीढ़ी दर पीढ़ी यह जो विष है उस विष का विमोचन करो। उससे भविष्य में ये पीढ़ीयॉ सुखी होंगी।"

'विमोचन' यह विषय दो प्रकार से करना आवश्यक है। पहले प्रकार में, जीवन में ज्ञानअज्ञान से हुए कर्मो के कारण जो दोष निर्माण होते है उनका विमोचन पश्चाताप से हो सकता है लेकिन यदि इन दोषों की प्रखरता बहुत अधिक होगी तो वह कर्म बाकी बचता है और बाद में यह कर्म उस व्यक्ति को उसके अगले जन्म में, या उस व्यक्ति ने जिस घराने में जन्म लिया है उस घराने को, वे कर्म दोषों के स्वरूप में भुगतने पड़ते हैं। जब यह व्यक्ति मृत होता है तब उस कर्म को कोई आधार न होने के कारण वह कर्म वासना के रूप में शेष रह कर उस घराने के सभी व्यक्तियों के चारो ओर मंडराता रहता है। ऐसे समय वह आत्मा उस कर्म से संबंधित रहती है और वह आत्मा, उस कर्म और उस कर्म के दोष को कम कर सकती है लेकिन उसके लिए "जन्म लेने की इच्छा या वासना उस आत्मा को होना " यह अवस्था, उस आत्मा को आसानी से प्राप्त नहीं होती क्योंकि फिर से जन्म लेते समय वह आत्मा यह विचार करती है कि, "कर्म का जो भोग है वह कुछ काल तक ही भुगतना पड़ेगा लेकिन उसके

बाद बाकी बचे काल से, मतलब आयुष्य से फिर से परलोकवासी हुए बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी।" ऐसे कर्मों की प्रखरता पर उनके दोषों की प्रखरता निर्भर है और यह कर्म और उसका अस्तित्व इनका अनुभव परिवार में होता रहता है। जिसमें आत्मा का समावेष नहीं है ऐसे दोषयुक्त कर्म का विमोचन परिवार में दान, धर्म, व्रत और वैकल्य आदि से हो सकता है या फिर इस प्रकार जो दोष परिवार या वैयक्तिक जीवन में धारण हुए होते हैं उन दोषों का विमोचन जीवन में सत्कर्म (अच्छे कर्म) करने से हो सकता है तथा कर्म के दोषों के परिमार्जन के लिए ऊपर बताई सेवा करने से उसका लाभ स्वयं को और परिवार को होता है। विमोचन साधन का यह पहला प्रकार है और इस अवस्था के जीवन का अनुभव जगत के पचास प्रतिषत लोगो को प्राप्त होता है।

विमोचन के दूसरे प्रकार में, ये दोष या कर्म इहलोक में वलय रूप में रहते हैं जिनसे परिवार को यानि घराने को तकलीफ होती रहती है। इस कर्म का परिणाम क्षयरोग के परिणाम के समान होता है। मतलब ये दोष परिवार के लोगो की प्राणहानि तो नहीं करता लेकिन हम मानवों को जीवन में जिस सुख शांति समाधान की अपेक्षा होती है, वह सुख प्राप्त होकर भी हम उस सुख का अनुभव प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसकी वजह यह है कि इस प्रकार के विमोचन में कर्म+आत्मा ऐसी स्थिति में जन्म न लेकर वह कर्म और आत्मा वलय रूप में परिवार के चारो ओर मंडराता रहता है और ऐसी परिस्थिति के कारण परिवार के व्यक्ति कर्त्तृत्ववान होकर भी इह जगत में अपना कर्त्तव्य भूल कर, कहीं से भी प्राप्त हो रहे धन का नाष हो इसलिए व्यसनों के आधीन हो जाते है। यह पराधीनता निर्माण होने के बाद प्राप्त हुई लक्ष्मी का उपयोग सत्कर्म के लिए नही होता। इसके कारण, बाद में ये दोष इतने तीव्र हो जाते हैं कि वंष को (खानदान को) संपत्ति, संतति आदि का लाभ होने के बजाय ' विपत्तियों' का लाभ होता रहता है और कुछ काल के बाद परिवार में 'विद्या' का, मतलब ज्ञान का कोई ठिकाना नहीं रहता।

ये विपत्तियाँ हम ही ने निर्माण किया होता है। जन्म लेते समय ईष्वर सौ प्रतिषत कर्म देता है, उसमें से केवल पच्चीस प्रतिषत कर्म का उपभोग

स्वयं के लिए इस जन्म में लेना होता है और बाकी कर्म औरों के प्रति कर्त्तव्य करने के लिए होता है ऐसा जीवन का अर्थ है और यदि ये कर्त्तव्य करने में हमने लापरवाही की तो उसका परिणाम उपर बताए दोषों में होता है। ''यदि मनुष्य, कर्त्तव्य के अनुसार जीवन व्यतीत करें तो ''जीवन में विपत्ति मायने क्या है ? यह सवाल ईष्वर ही भक्त से पूछेगा। लेकिन आज इसके विपरीत ऐसी परिस्थिति है कि, मेरे जन्म के समय जो कुछ मेरा है वह मेरा ही है और तुम्हारा जो कुछ है वह भी मेरा ही है।'' इस सोच से जीवन कैसे गुजरेगा ? जीवन में 'परोपकार' यह जो धर्म है वह धर्म आज ईष्वर को भोग चढ़ाने के लिए थोड़ा सा भी बाकी नहीं बचा है। ऐसे समय परमेष्वर कहते है कि, ' हे मनुष्य प्राणी, तुझे जो जन्म दिया है उस जन्म में यदि तुमने संकष्टीका व्रत करने के बजाय विपत्ति का व्रत ले रखा है तो उसमें मैं क्या कर सकता हूँ ? अब, जब तुम्हारी किसी जन्म में गुरू से गांठभेंट होगी तभी इस दोष का निवारण हो सकेगा। वासना के कारण आत्मा जिस कर्म में बंध गई है उससे आत्मा की मुक्तता सद्‌गुरू के अलावा कोई भी नहीं कर सकता। 'आत्मा' को परलोक में योग्य स्थान पर भेजना होता है। ऐसे समय जिन्हें हम 'सद्‌गुरू' कहते है उनका अधिकार जब इहलोक, परलोक और स्वर्गलोक इन तीनों में कार्य करेगा तभी उस आत्मा की मुक्ति होगी। नहीं तो, 'किसी ने कुछ कहा और उसके कहने के अनुसार ही घटित हुआ' इसका आज के जगत् में कदाचित ही (एकाध् बार ही) अनुभव होता है। आज जो बहुत सारे ऐसे 'गुरू' है वे केवल 'नाम' के गुरु होते है उनके हाथों यह कार्य, 'लोककल्याण' का कार्य,' नहीं हो सकता है। लोककल्याण का मतलब यह है कि हमारे सामने जो जगत् है उस जगत् का 'उद्धार'। लेकिन ऐसे गुरू के संदर्भ में 'उद्धार' का मतलब औरों का सदैव 'उद्धार' करते रहना यानि औरों को कोसते रहना यही कार्य उनसे होता रहता है।

लोक कल्याण की भूमिका को हमें खुद स्वीकृत नहीं करनी होती है बल्कि हमारी पात्रता(योग्यता) देख कर हमपर सौंपा गया ईष्वर का कार्य ऐसा वह 'आदेष' होता है। 'आदेष' और 'आज्ञा' इनमें जमीन आसमान का अंतर है। 'आज्ञा' यह आचरण में लानी होती है और 'आदेष' यह विचारों

में लाना होता है। इसलिए हम यह जो जगत् देखते है वह जगत् हमारी इच्छा के मुताबिक बनाने के लिए जब तक हमें ईश्वर का आदेश प्राप्त नहीं होता है तब तक, ' हम यह कार्य करते है ' यह कहना ठीक नहीं है। इस कार्य का फल पूर्णतः ईश्वर के आधीन है ऐसा कार्यकारणभाव जब साधक और भक्त इनमें धारण होगा तभी विमोचन के दूसरे प्रकार का लाभ जगत् के दुखी लोगो को प्राप्त होगा। नही तो तब तक धार्मिक विधि, तीर्थक्षेत्र या तीर्थक्षेत्र के पुजारी उनके पीछे पड़ कर उन्हें तकलीफ देने के सिवा कोई अन्य धर्म है ऐसा कहा नहीं जा सकता।

ऊपर बताए दोषों के निवारण के लिए यह उपाय है कि प्रथमतः अपने घराने के इष्ट देवदवताओं की कृपा हमें प्राप्त होनी आवश्यक है। इसके लिए घराने के देवीदेवताओं की कृपा के लिए शास्त्रों में बताए धार्मिक विधि के अनुसार वे विधि यथायोग्य रीति से करना आवश्यक है। हमारे घराने की जो इष्ट देवीदेवता होते है और जिनकी कृपा के लिए कुलधर्म कुलाचार की विधि बनाई गई है, वे देवीदेवता 'उत्पत्ति' स्थिति अवस्था में होते है, उनका विचार करके उन्हें प्रसन्न करने के लिए आवश्यक धार्मिक विधि का ज्ञान साधक को होना आवश्यक है। इसी प्रकार बाद में 'स्थिति' अवस्था और उसके बाद आखिर में 'लय' अवस्था के प्रमुख देवीदेवताओं की कृपा होना आवश्यक है। मतलब घराने के दोषों का निवारण इन तीन अवस्थाओं की देवताओं की कृपा प्राप्त होने से होगा। जिसके लिए आगे 'आत्मा' को सद्गति प्राप्त करा देने के लिए सद्गुरू की कृपा प्राप्त होना आवश्यक है। इतना सारा शास्त्र इसमें होने के कारण कर्म के दोष के निष्कर्ष (अनुमान) में, केवल 'विपत्ति' है यह कहना उचित नहीं है।

यह विमोचन विधि सिद्ध होने के लिए जो संकल्प करना आवश्यक है, उस संकल्प में दोषों के कारण का स्पष्ट रूप से उच्चार होना आवश्यक होता है। केवल यह कहने से नहीं चलता है कि, 'हम जो कर रहे है उस साधना में हमे देवीदेवता और गुरू देवता की कृपा प्राप्त हो।' इसका कारण यह है कि बाद में इसी कृपा से यदि आने वाले भक्तों का विमोचन करना है तो उसके लिए इस साधन का प्रथम 'शास्त्र' स्वरूप में उपयोग करने

के बाद उसका 'शस्त्र' रूप में भी उपयोग करना आवश्यक है। नहीं तो संकल्प का उच्चार करने से भक्तों का विमोचन होने के पहले ही, यह विधि करने वाले साधक का 'विनाश' हो सकता है। बहुत से साधको को यह विधि अवगत नहीं होती है। इस विधि में जो साधना है उसमें 'गुरूतत्व प्रधान होना आवश्यक है और इष्ट देवदेवताओं की उपासना दुय्यम होती है।' बहुत से साधकों को इस मार्ग की 'साधना' और 'उपासना' इसका अर्थ समझ नहीं आता है और वे केवल ये दोनो क्रिया देहिक माध्यम से करते है इसके कारण, वे इस प्रकार मार्गदर्शन करते रहते है कि ' यह विधि करके देखो, वह विधि करके देखो'। इसलिए यह विधि करने से पहले परमपूज्य हाजीबाबा ने मुझे, हर रोज सुबह श्रीगुरू की सेवा तथा ॐकार यह सेवा और साधना और शाम को इष्ट देवदेवताओं की उपासना' यह करने के लिए सूचित किया था। और उसके अनुसार मैं रोज शाम को औदुंबर में कृष्णा नदी के दूसरे किनारे पर स्थित देवी के मंदिर में जाता था। उस देवी का नाम 'भुवनेश्वरी' है। हमारे घराने की कुलदेवी कोल्हापूर की महालक्ष्मी और कुलदेव ज्योतिबा है। लेकिन उस समय हर रोज, कोल्हापूर कैसे जा सकता था ? इसलिये यह पर्याय (विकल्प) सूचित किया गया कि नदी के दूसरे किनारे पर स्थित देवी के मंदिर में जो देवी है उसे ही कुलस्वामिनी (कुलदेवता) मान कर उसकी उपासना आरंभ करो। इसलिए मैं हर रोज देवीः भुवनेश्वरी के मंदिर में जाकर वहाँ श्रीदेवीमहात्म्य के पाठ का पठन और देवी के नीचे लिखे मंत्र का ग्यारह सौ बार पठन करके मैं वापस आता था–

।। सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सवार्थसाधिके
शरण्येत्र्यंबके गौरी नारायणी नमोःस्तुते।।

इस सेवा में एकादशी व्रत का भी महत्व है इसलिए एकादशी के दिन 'एकादस महात्म्य' के स्तोत्र का पठन करता था। यह सेवा उत्पत्ति और स्थिति इन दोनो अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए थी, उसके बाद लय तत्व के देवता श्रीशंकर या श्रीमार्कण्ड़ेय इनका स्तोत्र और कवच का पठन आदि सेवा थी। इस सेवा में इन तीनों देवताओं का नाम निर्देश करके सेवा करने के बाद ये तीनों देवता जब प्रसन्न हुए तब चौथी शक्ति का यानि 'विमोचन'

का संकल्प सिद्ध हुआ। इस प्रकार उपासना करने के लिए प्रथमतः संकल्प का उच्चार करना आवष्यक है और यह उच्चार जिस वाणी से करना है, वह वाणी प्रथमतः शुद्ध करने के लिए मुझे कार साधना, उसके बाद गुरू सेवा और उसके बाद इष्ट देवता की उपासना ऐसा क्रम नित्य साधना में सूचित किया गया था। इसलिए सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय सत्कारण में व्यतीत हो रहा था। इसके कारण कितने साल सेवा की, और आज भी करते है इसका निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, मेरी नजर के सामने तो एक ही लक्ष्य था कि इस सेवा से होनेवाला बोध ! इसमे यही बोध था कि इस जगत् में जन्म लेने के बाद जीवन में इतना ही चिंतन करने का कर्त्तव्य निभाना है कि –'सत्कर्म करते हुए जीवन बिताए और सबसे मंगल उच्चार होता रहे और जहाँ मेरा मन जाता है वहाँ आपका ही ईष्वर रूप है। मैं जहाँ माथा रखता हूँ वहाँ आपके ही दो चरण हैं'। यही चिंतन जीवन में करने का कर्त्तव्य इस दुनिया में जन्म लेकर करना है ऐसा बोध था। इसके अलावा अन्य चिंता करने की कोई आवष्यंकता नही थी क्योंकि वहाँ मैने 'साधना, उपासना, बोध, बोधामृत और अवधान' इसी व्रत का अंगीकार किया था, इसके परे कोई जगत् है या नहीं इसका शोध मैंने नहीं किया।'' इसका शोध मत करो, आज तुम, जगत् का शोध मत करो, तुम्हारी साधना पूर्ण हो जाने के बाद जगत् ही तुम्हारा शोध करने आएगा '' यह जो अभिवचन श्रीसद्‌गुरू ने उस समय दिया था उसकी प्रचिति बाद मे कार्य करते समय प्राप्त हुई। सद्‌गुरू के उस अभिवचन की प्रचिति इस प्रकार है कि, ''जगत् के लिए जो विधि सिद्ध की गई थी उसकी सिद्धता आने वाले भक्तों को देकर उन्हें सुख देना है '' इसका अर्थ यह है कि यह जो कार्य हैं यह 'खेत में बीज बोना है,' इससे जो अनाज उगेगा वह अनाज आज इकट्‌ठा करके रखना है, बेचना नहीं है, ऐसा अनुभव आने वाले भक्तों को देना है, यह दूसरा संकल्प था। पहले संकल्प से, साधना में जिसका उच्चार किया उसकी सिद्धता होकर, इस संकल्प का जिन भक्तभाविको ने काया वाचा मन से स्वीकार किया था उनके दोषों का निर्मूलन हो, ऐसा संकल्प देना था। पहले संकल्प में 'हम' होकर और दूसरे संकल्प में भक्तभाविकों का समावेष है इसका अर्थ, 'कृपाषीर्वाद', होना आवष्यक है।

20. संकल्प की भूमिका, साधना मार्ग, उपासना मार्ग

यह कार्य विचार करने के परे है। जब 'संकल्प की भूमिका' मैं समझा गया तब मुझे यह ज्ञान हुआ कि जगत् में जन्म लेने मे सुख नही है, सुख के लिए जन्म होता है यही अज्ञान है क्योंकि जन्म प्राप्तिके बाद हमे सुख की इतनी हवस होती है कि यह हवस आखरी दम तक तथा मत्यु के बाद भी शेष रहती है। इसके बचने से भी यदि जन्म लेने वाला मनुष्य सुखी होता तो ठीक था लेकिन यह अज्ञान का श्राप है और उसी की पुनरावृत्ति के कारण मनुष्य जन्म मत्यु के बंधन में बंधा रहता है। इस जीवन में बंधन रहित जन्म कब प्राप्त होगा यह कह नहीं सकते है क्योंकि जो कोई जन्म लेता है उसका विषय यही रहता है कि ऐहिक जगत् का उपभोग लेना है और इसके अतिरिक्त जीवन में और भी विषय हैं ऐसा उसे नहीं लगता है। "मरणोत्तर जीवन में आत्मा की क्या अवस्थाएं होती है और आत्मा को कौनसी यातना भुगतनी पड़ती है, और आत्मा को प्राप्त होने वाली गति के मायने क्या है ?" इन सबका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। यह ज्ञान ना होने के कारण ईकावन रूपये दक्षिणा यह हमारे पूर्वजों को सद्गति देने का पर्याप्त प्रबंध है ऐसा उनके वंषज मानते हैं। मनुष्य को श्राद्ध विधि अपने पूर्वजों की आत्मा को वासना से मुक्त कराने के लिए ही नही करनी है, श्राद्ध विधि में मनुष्य को मृत व्यक्ति के प्रति श्रद्धा रखनी होती है जिससे मृत व्यक्ति को आसानी से सद्गति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति मृत होता है उसको संसार में उसके हिस्से आया सब कुछ वंषजो के लिए पीछे छोड़ना यह उस जीव का कर्त्तव्य है लेकिन यदि उसकी वासना पीछे रह गई तो उन वासनाओं के कारण उसकी आत्मा को फिर से जन्म लेना पड़ता है और यदि इस तरह फिर से जन्म लेकर भी वासना खत्म नहीं हुई तो उनके लिए उसे फिर से जन्म लेना होगा। यदि यही क्रम बार बार चलता रहा तो जगत् को शांति की प्राप्ति कैसे होगी ? इस 'भस्मासुर' ने वासना की कोख से जन्म लिया है इसलिए उसकी मुक्ति कभी नहीं हो सकती है, ऐसा विचार उस दिन मेरे मन मे नये सिरे से

निर्माण हुआ। इसका कारण यह है कि आज यह जो जगत् हम देखते है वह जगत् सुखी नहीं है, इस जगत् का सुख यह दुःख की नींव है और उसी नींव पर संपूर्ण जगत् खड़ा होने के कारण यह भस्मासुर कब जगत् का अंत करेगा यह बता नही सकते। उस समय इस भीषण कल्पना ने मेरे मन में घर किया कि यह जो जगत् हम आज देखते है, इस जगत् में कुछ काल के बाद और भी प्रखरता निर्माण होगी। इसलिए इस जगत् में वासनाओं मे बंधे ये जीव हैं उनकी कौन से मार्ग से, कौनसी साधना से मुक्ति होगी यह चिंता मुझे सताने लगी। स्वीकार किए गए मार्ग का त्याग करना यह बात किसी भी साधक को या गुरूभक्त को शोभा नहीं देती है। इसलिए उस दिन निश्चय करके मैने गुरूचरणों पर, लोग जैसा पंचामृत का अभिषेक करते है उसके बजाय मैने गुरूचरणों पर मेरे आंसुओ से अभिषेक किया और कहा कि–" इस जगत् का कल्याण करने का सामर्थ्य मुझ में नहीं है। अगर आपकी कृपा हुई तो ही इस पहाड़ को परे ढ़केलना मुमकिन है! "

उस दिन से श्रीगुरू का 'दृष्टान्त' मानकर मैने मार्गदर्शन के अनुसार सेवा स्वीकार की। इहलोक में हमारे सभी ओर यह जो जगत् स्थित है उस जगत् को फिर से सुखी देखना यह मेरा आद्य कर्त्तव्य है और वह होने तक मैने बाहर की दष्टि का अंत कर इस सेवा को स्वीकार किया। तब मुझे यह कशिश लगी कि कोटी ब्रह्महत्याओं के पाप श्रीगुरू की शरण जाने से दूर हो जाते है। 'श्रीगुरूचरणों में विनीत होने पर मोक्ष भी अपने आप हासिल होता है' यह आरती भक्त लोग नित्य की सेवा में जब जोर जोर से गाते हैं तब इसके अर्थ की मधुरता समझ नहीं आती है लेकिन यह अर्थ कितना गहन है यह मेरी समझ में आया और उसके कारण मेरे मन मे यह आशंका आई कि यह जगत् बहुत महान है तो मेरी सेवा इस जगत् के लिए पर्याप्त होगी या नही। लेकिन मेरे पास कृपाशीर्वाद रूपी धरोहर है और जगत् महान है तो मेरा छोटा बनना जगत् के हित में है। ऐसा विचार मैने किया। जिस प्रकार घर में चीनी डिब्बे में रखी हो तो भी चींटी उस शक्कर का लाभ और मधुरता का अनुभव कर सकती है। हाथी महान होने के कारण द्वार पर उसके झूमते रहने से ही अच्छा नजारा होता है लेकिन

चींटी को मेवा प्राप्त होता है। उसी प्रकार सेवा करने के उपासना और सेवा ये दो मार्ग है। "शक्कर यह 'उपासना' है और चींटी को उसकी मधुरता का जो लाभ प्राप्त होता है वह 'साधना' है" यह अवस्था भक्त को सदैव ध्यान में रखना आवश्यक है। कर्त्तव्य पूर्ण हुए बिना साधना मार्ग का अवलंब नहीं कर सकते है। जन्म लेते समय आत्मा योनि मार्ग से आती है परन्तु मृत्यु के समय उसे 'योगी' बनकर जाना आवश्यक है। जन्म लेने के बाद जीव को इस जगत् में जगह मिलना आवश्यक है और इस जगह का प्रबन्ध उपासना मार्ग से होता है और इसी उपासना से अन्न वस्त्र निवास इनका प्रबन्ध करना है। जीवन पूर्ण होने के बाद ' विश्राम हुआ ' या ' पूर्ण विराम हुआ ' ऐसा हम कहते है। इसका अर्थ हम ' जीव ' करके जन्म लेते है और जाते समय "शिव" करके जाते है। इस शिव रूप में जाते समय इस जीव का रूपांतर बीज में होता है। इस तरह मनुष्य को अगले जन्म का प्रबंध करते समय 'योगी अवस्था' का यानी बीज की प्राप्ति करना आवश्यक है।

साधना का मार्ग और उपासना मार्ग की पहचान श्रीगुरू ने बताई है। इसमें प्रत्येक मनुष्य को जन्म के बाद दो साधना प्राप्त होनी आवश्यक है। क्योंकि प्राप्त जीवन में कर्म का ऋण चुकाना है यानि कर्त्तव्य की पूर्णता करनी है, इसके लिए जो आवश्यकता हाती है उसकी संपूर्ण प्राप्ति, उसके लिए जीवन में इहलोक और परलोक इनका समावेश करने से होती है। फिर से जन्म लेना यह एक अवस्था है और तब अगली अवस्था का जन्म प्राप्त हो इसलिए इह जन्म में हम जो कुछ करते हैं उसकी प्राप्ति होने के लिए हमारे सत्कर्मो का उपयोग करना होता है। स्वर्गलोक यह कोई अलग अवस्था नहीं है।

इस जीवन में जन्म प्राप्ति के बाद साधना और उपासना में कृपाशीर्वाद और कृपा इनका समावेश होता है। ऐसी अवस्था साधक को प्राप्त होना आवश्यक है, तभी उन्हें 'साधक' कह सकते है। 'वंशविमोचन' यह विधि करने का मतलब केवल साधन प्राप्त करना नहीं है। जीवन में हर क्षण विमोचन है। उसके लिए कठिन से कठिन और आसान से आसान साधन

हमारे पास होना आवश्यक है तो ही कार्य कर सकते हैं। कृपाशीर्वाद प्राप्त होने में देर लगती है इसलिए बहुत से साधक मंत्रका आधार लेते हैं लेकिन मंत्र में जो उच्चार है वह उच्चार सिद्ध होना आवश्यक होता है और मंत्र इस अंग से यदि एक साध्य, साध्य होता है तभी बाकी शेष रहते है। इसलिए भक्त को सुख की प्राप्ति करा देने से भक्त सुखी नहीं होता है। भक्त को समाधान अवस्था प्राप्त होना आवश्यक है।

21. परलोक मार्ग

औदुंबर में जिस परलोक मार्ग की पहचान हुई वह मार्ग कितना गहन है यह बाद में समझ आया। उस समय करीबन हर पंद्रह दिन के बाद मैं मेरे मामाजी के यहाँ जाता था। परलोक मार्ग की केवल पहचान होने से काम नही चलेगा, बल्कि इस मार्ग का लाभ असंख्य लोगों को प्राप्त हो, ऐसे परलोक मार्ग की सिद्धता का साधन मुझे प्राप्त करना है, यह बात मैने मेरे मन में निश्चित की। बाद में मामाजी के घर जाने के बाद मैने यह विषय उन से चर्चा करने के लिए चुन लिया। उस समय मामाजी ने भी इस विषय के संबंध में उत्सुकता जता कर कहा कि "यदि ऐसा विषय तुमने सिद्ध किया तो भविष्य में असंख्य लोगो को उसका लाभ होगा' तथा इहलोक और परलोक में वास करने वाली अनेक आत्माओं को मुक्ति और सद्‌गति प्राप्त हो सकेगी, क्योंकि मरणोपरान्त जीवन में आत्मा की इच्छावासना क्या होती है यह उनके परिवारवालों को समझ ना आने के कारण उस आत्मा से उसके परिवारवालों को तकलीफ होती रहती है। ऐसे समय केवल तकलीफ का निवारण करने से काम नहीं बनता है। ' केवल कर्म के कारण होनेवाली तकलीफ का ही निवारण करना 'यह योग्य नहीं है, जो आत्मा उसके किए हुए कर्मो के कारण तकलीफ में है उस आत्मा के तकलीफ का भी निवारण होना, और आत्मा को सद्‌गति प्राप्त होना भी आवश्यक है। इसलिए मरणोपरान्त जीवन यह जीवन होकर उसमें क्या अंतर्भूत है इसका केवल विचार करना उचित नहीं होगा। जो आत्माएं भूत योनि में संचार करती रहती है उनसे संपर्क किए बिना केवल कल्पना से या अनुमान से उनकी इच्छा क्या है यह बताना गलत है।" मामाजी का यह कहना बिल्कुल सही था क्योंकि मैने औदुंबर में जो दृश्य देखा था उस प्रकार मृत व्यक्ति की आत्मा से तकलीफ ना हो इसलिए दान धर्म करने वाले बहुत लोग होते हैं जिन्हें तकलीफ की निश्चित वजह समझ में नहीं आती।

मामाजी ने आगे कहा कि "जिन व्यक्तियों को उनके परिवार में क्यों तकलीफ हो रही है यह निश्चित समझ नहीं आता है ऐसे व्यक्तियों को अगर यह समझ में आए कि उन्हें अपने घराने के मृत व्यक्तियों को मुक्त

कराने का कर्त्तव्य करना है तो वे बिना संकोच यह विधि तीर्थक्षेत्र में करेंगे। लेकिन होने वाली तकलीफ के बारे में समझकर भी आज वे कुछ नहीं कर सकते हैं क्योंकि शास्त्रों में मृत व्यक्ति से हो रही तकलीफ निवारण के लिए जो तीन स्थानों की यात्रा, दानधर्म, अन्नदान तथा वस्त्रदान आदि विधि, और इनके अलावा नागबलि, नारायणबली आदि विधि बताई गई है इन विधियों के माध्यम से केवल अंशमात्र ही मुक्तता होती है। जो आत्मा वासनावलय यानि कर्म में बद्ध है उसकी मुक्तता इन विधियों से होती है मगर उसका अस्तित्व परिवार से संबंधित रहकर तकलीफें वैसी ही बाकी रहती हैं और उसका जो अपायकारक कर्म परिवार के अन्य व्यक्तियों को भुगतना पड़ता है, उस कर्म का निवारण होना भी आवश्यक है, ऐसा उच्च विचार करके तुम अपना साधन सिद्ध करो।"

मामाजी से इतना विषय समझकर उस रात से उस विषय की सिद्धता करने के लिए क्या जिम्मेदारी है इसका विचार मैं दिन रात करने लगा क्योंकि परलोक में क्या है यह इहलोक में समझ नहीं आता है। खुद परलोकवासी हुए बिना यह समझ नहीं आता है। मतलब खुद मरे बिना स्वर्ग के दर्शन नही होते हैं ऐसा मैं कहने लगा। यह साधना, 'छोटा मुहँ बड़ी बात' इस प्रकार की है इसलिए पहले मै यह विचार करने लगा कि क्या ऐसा साधन पहले जमाने में किसी ने किया था ? विचार करने पर मालूम हुआ कि शायद एक दो लोगो ने ही उनके परिवार के मृत व्यक्ति से होने वाली तकलीफ के निवारण के लिए उपर बताई गई विधि की थी लेकिन अब ये विधि सामूहिक तौर पर करना आवश्यक है। जगत् में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति का खुद का एक वंश होता है और उस वंश में अच्छा बुरा कर्म घटित हुआ होता है इसलिए इस साधन का लाभ सबको मिलना आवश्यक है, यह साधन सिद्ध करते समय इसमें केवल एक व्यक्ति का समावेश होना योग्य नहीं है, ऐसी दूसरी समस्या भी तब सामने आयी। इसके कारण की जा रही साधना में मेरी आस्था पहले जैसी न रह कर मैं दिन ब दिन निराश होने लगा। एक दिन भोर के तीन बजे ही मैं जग गया। तब मुझे यह आभास हुआ कि अदांजन पांच दस आत्माएं मुझे पुकार रही है। वह पुकार दूर से सुनाई दे रही थी इसलिए आवाज की दिशा के

अनुरोध से मैं उन आत्माओं के पास गया। उन आत्माओं से मेरी कोई पहचान और परिचय नहीं था लेकिन उनके मरणोत्तर जीवन की इच्छा में मेरी साधना के विषय हैं ऐसा कह कर उन्होंने मुझे कहा कि– " आपकी इस साधना के लिए आपको हमारी जो मदद् आवश्यक होगी वह हम करेंगे क्योंकि सैकड़ों साल से करोड़ों आत्माएं मुक्तता और सद्गति के लिए प्रतीक्षा कर रही हैं। इसका इह जगत् पर जो परिणाम हो रहा है उसका हमें अहसास है लेकिन हमें देह नहीं है और हमें जन्म प्राप्ति भी नहीं हो रही है इसलिए हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए आप जो साधना करनेवाले है उसमें हम आपकी मदद करेंगे। इह जगत् में जन्म लेनेवाले व्यक्ति की उत्पत्ति कोषो में होती है और इन कोषों मे प्रमुख कोष अन्नमय कोष है। अन्नमय कोष के कारण जन्म लेने वाला इन्सान वासना में बंधा हुआ है और उसे इन वासनाओं के कारण बार बार जन्म लेना पड़ता है। यदि जन्म वासनाओं के कारण होता है तो भी मृत होने के पहले उस जन्म का रूपांतर, 'वास' इस अवस्था में होना आवश्यक है, और यह अवस्था अन्नमय कोष से लेकर आनंदमय कोष तक धारण होना आवश्यक है, तो ही आत्मा को सद्गति प्राप्त हो जाएगी। इसके विपरीत यदि खाना पीना कपड़ा ऐसे जीवन का ही उपयोग किया होगा तो मरणोपरान्त जीवन में उच्च अवस्था प्राप्त न होकर हम भूत बन कर पीछे रहेंगे। "

जन्म लेने वाले प्रत्येक जीव की धारणा कर्म से होती है। ऐसे समय कर्म का रूपांतर 'अन्न' में होता है। ऐसे अन्न के सेवन से वीर्य बनता है और इस वीर्य से मनुष्य के जीवन का आरंभ होता है। उस समय योनि की धारणा होकर काल कालांतर से संपूर्ण देह की रचना पूर्ण हो जाती है। उसमें प्रथम अन्नमय कोष है, जिसकी निर्मिती अन्न से होती है और बाद में आनंदमय कोष तक के कोष वह जीव निर्माण करता है। यह कार्य गर्भावस्था में होता है। बाद में जन्म के बाद अठारह साल की उम्र तक, जीव सज्ञान होने की क्रिया आंनदमय से अन्नमय कोष तक करनी होती है क्योंकि आगे अठारह सालकी उम्र में जीव सज्ञान (ज्ञानी) होता है। इसमें अगर यह सज्ञान होने की क्रिया यदि अन्नमय कोष से शुरू हुई तो उस ज्ञान से मनुष्य 'ज्ञानी' न होकर केवल योनि का उपभोग लेनेवाला

होता है और काया वाचा मन को केवल योनी का ज्ञान होता है ऐहिक सुखों का उपभोग लेना इस कार्य के परे अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। बाद में यह योनि इतनी प्रखर होती है कि इसी जीवन में केवल देहिक वासना के भोग का उपभोग लेना ही जीवन का सार है ऐसा बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब लोग समझने लगते है। यदि बाल्यावस्था में यह सज्ञान होने की क्रिया का आरंभ आनंदमय कोष से हुआ और अठारह बीस की उम्र तक यह क्रिया अन्नमय कोष तक आई तो मनुष्य जन्म प्राप्ति में केवल 'भोगी' ऐसा न रहकर 'योगी' यह अवस्था आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन आज समाज में जीवन का गणित उल्टा हो गया है। जीवन का आरंभ ही अन्नमय कोष से होने के कारण उस कोष से जन्म प्राप्त करने वाले जीव का विकास न होकर उसके विकार इतने बढ़ जाते हैं कि जीवन का क्या मतलब है यह नहीं समझ आता है। अतः औरों की जान लेना यही जीवन है ऐसा अनुभव इस प्रचलित समाज में होता रहता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य को स्वयं के जन्म प्राप्ति के लिए जो कर्म आवश्यक होता है उसके अलावा अन्य आत्माएं और उनके कर्म भी उस मनुष्य के अन्नमय कोष से जन्म लेते हैं और उस समय वह कर्म और उसके साथ की आत्माएं इनकी भी धारणा मनुष्य के देह में हो जाती है। फिर जो साँस लिया जाता है उसके साथ वह कर्म या आत्मा इनकी धारणा फेफड़ों में होती हैं। बाद में वह कर्म और आत्मा इनका समावेश खून में होकर वे दोष या इच्छावासना खून में समाई जाती है। बाद में इसी खून से बने वीर्य से जब जीवन की निर्मिती होती है तब उस वीर्य में वे दोष या आत्माएं अंतर्भूत होती हैं और उनमें अहितकर विषय बिना मांगे और अज्ञान के कारण प्राप्त हो जाता है और ऐसे दोषसहित वीर्य आगे देह धारण करते हैं। देह में चौरासी योनी होती हैं उनका सहज धर्म जीवन में सुख शांति निर्माण करना है। परंतु यदि धारण हो गए दोषों से देह की निर्मिती हुई होगी तो ये चौरासी योनियो का, मनुष्य को सुख प्राप्त होकर भी उस सुख का लाभ प्राप्त होने नहीं देते हैं क्योंकि प्राप्त सुख का लाभ होने के बजाय इन योनियों में जो दोष होते है वे आगे जीवन में प्रतिसाद देते ही रहते हैं। इसलिए जब तक इन योनियों में रहा दोष निकलता नही तब तक ईश्वर ऐरावत (इंद्र का हाथी) जितना, यानि बहुत सारा सुख देकर भी वह

जीव को उन सुखों का साद (पुकार) नहीं दे सकता है यानि सुख प्राप्त नही करा सकता है।"

उपर लिखी जीवन उत्पत्ति की मीमांसा (स्पष्टीकरण) हम मानवों के कल्याण के लिए बताई गई है। लेकिन हमे ऐसा लगता है कि धर्माचरण करना हमारे हित में नहीं है। इसके कारण, जिन आत्माओं या जिन कर्मो का विमोचन स्वयं करना ईष्ट (योग्य) है, वह न करके ऐसे सुख प्राप्ति के लिए हम श्रीगुरू का कृपाशीर्वाद व्यय (खर्च) करते है। इस तरह जो कृपा होती है उसका उपयोग हम केवल स्वयं के दोषों का निवारण करने के लिए करते हैं और उसके कारण श्रीगुरू के कृपाशीर्वाद का उपयोग औरों के कल्याण के लिए नहीं हो सकता है। इसलिए यदि की गई साधना काया, वाचा, मन से हुई तो उससे लाभ है और जिन पांच कोषों में आत्मा का कार्य होता रहता है उनको 'कोष' ऐसा न कह कर 'पंचप्राण' ऐसा कहने में हमारा हित है। ये पांच कोष बाह्य जीवन में दिखाई नहीं देते हैं लेकिन उनके कार्य का अनुभव होता रहता है इसलिए उनका विचार करना आवश्यक है।

इहजन्म में प्रथमतः अन्नमय कोष की निर्मिती होती है। इसमें 'अन्न' का मतलब, हम जो अन्न सेवन करते है वह अन्न न होकर मनुष्य के लिए जन्म लेते समय और जन्म लेने के बाद जो विषय आवश्यक है उन सबका समावेश इस 'अन्न' में होता है। इन विषयों में अन्न पानी और हवा ये प्रमुख घटक होकर इन सब घटकों का ज्ञान मनुष्य को विज्ञान से होता है। विज्ञान ने इतने सारे आविष्कार किए हैं, जिनके कारण गाड़ियाँ जमींन पर चलती है, पानी पर से जहाज आते जाते हैं और हवा मे से हवाई जहाज के जरिये यात्रा होती रहती है। मतलब जमीन पर जिसका जन्म होता है और जिसका अंत भी जमीन पर ही होता है वह मनुष्य हवा में जीवन व्यतीत करता रहता है। जिस पानी से प्यास बुझती है उस पानी से औरों की प्यास बुझाना यह उपकार न होकर मनुष्य औरों को ' पानी पिलाने के लिए ' मतलब तकलीफ देने के लिये तत्पर रहता है इसलिए मनुष्य को मनुष्य 'प्राणी' कहते है।

मनुष्य इस प्राणी की अन्नमय कोष से लेकर विज्ञानमय कोष तक प्रगति हुई है। लेकिन आनंदमय कोष यह जीवन का तत्व है। ऐसा तो नहीं कह सकते कि वैज्ञानिको को 'जीना' इस मर्म (तत्व) की समझ नहीं है लेकिन आज उन्हें उसकी आवश्यकता नहीं है। पिंड की निर्मिती अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय इन चार कोषों से हुई है और 'ब्रह्म' आनंदमय कोष इस एक कोष में है। इसलिए बाल्य अवस्था में जीवन का आरंभ करते समय अन्नमय कोष से देह की वृद्धि और आनंदमय कोष से ज्ञान की वृद्धि करानी है। आनंदमय और विज्ञानमय इन कोषों से ज्ञानवृद्धि करना और अन्नमय और प्राणमय इन कोषों से कैसे जीना, इसका ज्ञान मनोमय कोष में होता है इसलिए ज्ञान की वृद्धि और देह का बढ़ना इनका मिलन मनोमय कोष में होना आवश्यक है। इसका मतलब जैसे गंगा स्वर्ग से आती है ऐसा कहते है वैसे देह में गंगा आनंदमय कोष से और यमुना अन्नमय कोष से आकर उनका संगम यानि 'तृप्ति' यह अवस्था मनोमय कोष में होना आवश्यक है। जो साधना हम करते है उसका उद्देश्य ईश्वर की भेंट हो ऐसा नहीं है। जिसका मूल्य ईश्वर से बढ़ कर है ऐसे ईश्वर द्वारा दिए इस सोने जैसे जन्म के दुर्लभ जीवन की मिट्टी न बने इसलिए पांच कोषों की उन्नति कर लेना महत्वूपर्ण है। ऐसी उन्नति होने के बाद शरीर में खाली जगह ही नहीं रहनी चाहिए। इन पांच कोषो ने विकसित होकर जो जगह भर दी है उस जगह में 'एक तत्व नाम' ऐसे नामी तत्व ने वास किया तो फिर पाप और पुण्य का हिसाब कौन कर सकेगा ? संतो ने जो कहा है कि, 'मुख से हरी का नाम लेते समय पुण्य की गिनती कौन करे?' इसका अर्थ यह है कि अन्न से मतलब पिंड से जन्म लेना और यहाँ से जाते समय 'अन्न यह पूर्ण ब्रह्म है ' ऐसा कहकर जाना लेकिन जाते समय औरों को जगाना और जगह 'देना' इसी का अर्थ जीवन में मोक्ष प्राप्त होना है।

'परलोक' से संबंधित तत्वज्ञान, अभ्यास के लिए बहुत गहरा है और परलोक के तत्वज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव होना आवश्यक है। साधना में एक सवाल का जवाब मिलता है तो दूसरा सवाल समस्या के रूप में सामने आता है ऐसे समय यदि हमने जगत् का ज्ञान करके यह शास्त्र बनाया

तो भी जब तक इस शास्त्र की अनुभूति का अनुभव प्राप्त नहीं होता तब तक यह तत्वज्ञान केवल बोलने के लिए तो ठीक है लेकिन उस पर अमल करना अत्यंत कठिन है इसलिए परलोकवासी आत्माओं से सम्पर्क करने का या जोड़ने का कोई साधन प्राप्त कर लेने से जो आत्माएं परलोक में वास कर रही हैं उनकी क्या इच्छा है और मरणोत्तर जीवन में जीवन का क्या अर्थ है यह कहना मुमकिन होगा। केवल कल्पना करके यह बताना औरो के हित में नहीं है। यह साधन सत्य है यह जगत् को मान लेना आवश्यक है। आज जगत् में अंधश्रद्धा रखने वाले लोग कम है लेकिन सज्ञान होकर इस मार्ग पर विश्वास करने वाले बहुत से लोग मिलते है। ऐसे लोगों को यह जीवन कितना मूल्यवान है यह समझना आवश्यक है क्योंकि इस जीवन की भूमिका इहलोक में प्राप्त हुए जीवन मे व्यतीत करना आवश्यक होता है लेकिन हम हमारे हिस्से आए जीवन का केवल उपभोग लेकर उसे खत्म कर देते हैं। इस जीवन का कुछ हिस्सा, बाद के परलोक जीवन के लिए बाकी बच गया तो मरणोत्तर जीवन में उत्तम ऐसा जीवन प्राप्त होता है। इसलिए मैने यह विचार किया कि यदि मैं कोई 'मध्यस्थ' निर्माण कर सका तो आत्माएँ उस मध्यस्थ के द्वारा जो परलोक संबंधित ज्ञान बताएंगी उनका उपयोग इहजगत् के लोगों को ज्ञानी होने के लिए होगा। सालोसाल श्राद्ध पक्ष आदि जो विधि हम करते है उनका अर्थ अनुकरण विधि होकर उसका लाभ किसी को भी नही होता है इसलिए इस कार्य के लिए कोई मध्यस्थ तैयार होना आवश्यक है, तो भी क्या अपनी इच्छा से यह कार्य करने वाला कोई मध्यस्थ तैयार होगा ? क्योंकि 'मध्यस्थ' अवस्था में धोखा भी है इसलिए कोई भी अपने आप इस राह पर नहीं चलेगा। इस कार्य में आत्मा का आवाहन किया जाता है और आत्मा को स्वयं आगमन करना नहीं आता है। किसी मध्यस्थ को इस जिम्मेदारी को स्वीकारना आवश्यक है क्योंकि जो आह्वाहन की गई आत्मा है उसे वापिस परलोक में भेज सकना यानि 'पुनरागमनायच' कर सकना हितकर है। आत्मा से की गई बातें कहने के लिए और लिखने के लिए आसान है लेकिन जब ऐसी आत्मा आकाश से इहलोक की ओर आने लगती है तब उसके आने से इहलोक की दिशा जानकर उस दिशा से अन्य सैकड़ों आत्माएं भी आ सकती है। मरणोत्तर जीवन में जब देह का त्याग करके

आत्मा परलोक की ओर जाती है तब एक गति (speed) उसे परलोक की ओर ले जाती है और उसने जिस देह का त्याग किया है वह देह इहलोक में विलीन होती है। इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी पर गुरूत्वाकर्षण की शक्ति है और परलोक में etheric शक्ति है। जो परलोक की आत्मा आह्वान्वित होकर इहलोक में आकर हमारे सवाल के जवाब देती है ऐसी आत्मा को फिर से परलोक में योग्य स्थानपर जाना आवश्यक होता है। लेकिन वह साधना बहुत कठिन है। इसका कारण यह है कि हम हमारी साधना की इस शक्ति का इहलोक में अनुभव नहीं कर सकते हैं तो फिर उसका उपयोग परलोक में कैसे कर सकेंगे इसका हमे सूक्ष्मता से विचार करना आवश्यक है। जो जग हमें दिखाई देता है वह पच्चीस प्रतिशत है और पचहत्तर प्रतिशत जग परलोक में है। इसलिए इहलोक में कुछ चमत्कार करना आसान है लेकिन परलोक में चमत्कार करना बहुत मुश्किल है। आत्मा को आह्वाहन करके इहलोक में बुलाया गया तो फिर से वह परलोक की ओर जाएगा ही यह आवश्यक नहीं है क्योंकि परलोक की आत्मा की स्वाभाविक यह इच्छा होती है कि, जो गति (अवस्था) प्राप्त हुई है उससे अधिक उच्च अवस्था प्राप्त हो। मरणोत्तर जीवन मे जो अवस्था प्राप्त हुई उससे श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त होने की जो इच्छा, आहवान्वित की गई आत्मा को होती है उसकी उस इच्छा का समावेश भी अंगीकार किए जाने वाले साधन के संकल्प में करना आवश्यक है और उस संकल्प का उद्देश्य हमारे हित के लिए न होकर परलोकिक आत्मा के हित के लिए होना आवश्यक है। ऐसे समय साधना में इहलोक और परलोक ऐसे जो दो भाग है उन दोनो भागों के लिए आशीर्वाद प्राप्त होना आवश्यक है नहीं तो जिस आत्मा को आगे की अवस्था की प्राप्ति नहीं होगी वह बिन बुलाए इहलोक की ओर आकर औरों को तकलीफ देती रहेगी। आत्माओं का जीवन क्या है और कैसा है इसका विस्तारपूर्वक ज्ञान प्राप्त करने के लिए परम पूज्य बाबा ने आज्ञा देकर इहलोक और परलोक इन दोनो के लिए एक ही निराकरण सूचित किया और उसके अनुसार हम इतने साल से यह जो कार्य कर रहे है उसका लाभ अनेक लोगो को हुआ है। यह साधना अत्यंत महत्वपूर्ण है लेकिन इसका महत्व समझना सबके लिए मुमकिन नहीं है। और यदि कार्य में यह विषय सूचित किया गया तो भी कार्य करने

के लिए वैसे सेवक तैयार होना मुश्किल है। इसलिए आने वाले जो कोई भक्त दुखी है वह इस मार्ग पर विश्वास करे इसलिए आज तक यह कार्य मैने निराकरण मार्ग से किया है और लोगों को भी इस कार्य का लाभ होता रहे इसके लिए सेवक के द्वारा जो कार्य होगा ऐसे कार्य की योजना भी मैंने पहले ही बना कर रखी है। और उसके लिए सेवकों को मेरी जैसी प्रखर साधना, उपासना, दीक्षा आदि की प्राप्ति कराने की आवश्यकता नही होगी। जो कोई दुखी मनुष्य इस कार्य का लाभ लेने आएगा उसे परम पूज्य बाबा की दुआ से उसका दुख दूर हो इसलिए केवल नामस्मरण और 'निवारण' बताया जाएगा। परलोक का अध्ययन करने के लिए एक मध्यस्थ की आवश्यकता थी उसके लिए मेरी बहन उस मध्यस्थ की जिम्मेदारी को स्वीकार करेगी और उसके माध्यम द्वारा मैं कार्य करूंगा यह तय हुआ। इसलिए आज्ञा के अनुसार मैने मेरी बहन को औदुंबर में बुला कर उसे इस साधना का परिचय करा दिया। उस समय उसे कुछ भी कल्पना नहीं थी। उसे इहलोक और परलोक क्या है इसका भी पता नहीं था। वैसे ही मुझे भी 'परकाया प्रवेश' यह क्या अवस्था है यह मालूम नही था। जब मेरी बहन औदुंबर के मंदिर में आई तब दोपहर की महापूजा होकर आरती शुरू हुई थी। उस समय वह शांति से खड़ी थी। आरती होकर मंत्र पुष्पांजली के समय मेरी बहन चिल्लाने लगी तब कुछ लोग 'भूत आया' ऐसा कह कर भागने लगे। बाद में धीरे धीरे श्रीदत्तगुरू के सामने की भीड़ कम हुई और बहन भी शांति से खड़ी रही। बाद में मेरी ओर टकटकी लगाते देखकर उसने कहा "भूत के चक्कर में मत पड़ों। किसी काल में इन 'कनफटों' ने (नवनाथों ने) हमे पहचान लिया था, उस समय उनकी शक्ति इतनी थी कि वे जो कोई आत्मा भूतयोनि में होती थी उसे मुक्त कराते थे। लेकिन उनके बाद वैसे किसी साधक ने जन्म नहीं लिया। इसलिए हमें कब मुक्ति मिलेगी यह कह नहीं सकते ऐसी परिस्थिति थी। लेकिन आज वह सुदिन आया है। हम लोगों को मुक्त करानेवाले ने फिर से जन्म लिया है।" मेरी बहन में यह जो संचार हुआ था उस आत्मा का नाम, गांव आदि समाचार मेरे पूछने पर उसने कहा, 'आपके मामाजी के बंगले पर चलिए। वहाँ मैं आपको सब बताता हूँ। मैं भाऊ को यानि आपके मामाजी को पहचानता हूँ।" इतना कह कर यह संचार चला गया। बाद

में मैने मेरी बहन को क्या हुआ यह पूछा। उसने भी जो देखा था उसका वर्णन किया। "तब, क्या तुझे डर लगा ?" ऐसा मेरे पूछने पर उसने मुझ से कहा कि 'मैं आरती सुन रही थी फिर धीरे धीरे मुझे आरती के स्वर सुनाई देना बंद हुआ और, मैं आंखे बंद करके उपर जा रही हूँ, ऐसा मुझे आभास हुआ। आखिर मुझे, जैसा हमारा जगत् है वैसा ही एक जगत् दिखाई देने लगा।" फिर मैने उसे सवाल पूछा कि 'उस जगत् में क्या है ? '

तो उसने कहा, 'इस जगत् में हमें प्रकाश दिखाई देता है और इस प्रकाश के कारण हमें यहाँ के वस्तुमात्र का ज्ञान होता है। हमारी सृष्टि इस प्रकाश से निर्माण हुई है। परलोक में सात रंग हैं और वे सात रंग इंद्रधनुष के सात रंगो जैसे लगते हैं। इसका अर्थ यह है कि हम जो सात लोक कहते है उन सात लोकों की पहचान इन सात रंगो से होती है। प्रत्येक लोक के लिए अलग अलग रंग है इसलिए आत्मा को उसका स्थान कौन से रंग में है यह समझना है। परलोक की आत्माएँ यहाँ आकर हमारा और उनका विचार विनिमय हो जाने के बाद अपने पूर्व स्थान पर वापिस नहीं जाती हैं, तो वे पहले प्राप्त हुआ रंग यानि स्थान से अधिक उच्च स्थान की प्राप्ति कर लेती हैं। मतलब इहलोक से उनका संबंध होने के बाद हमारे कृपाशीर्वाद से उनकी अवस्था में बदलाव आता है।

इहलोक में जो जीव जन्म लेते हैं वे वासना के कारण खुद की उन्नति नहीं कर पाते है और उसके कारण बार बार जन्म लेते हैं इसका विचार न करके जन्म लेना ही महत्वपूर्ण है ऐसा ये आत्माएं समझने लगती हैं। इसलिए ऐसे जीव को earth bound spirits यानि 'पृथ्वी से बंधी आत्मा' कहते है। लेकिन इहलोक में ध्येयवादी जीवन जीने के बाद, जीव को उसके कर्म के अनुसार उच्चलोक की प्राप्ति होती है। सप्तलोकों में जो सात रंग हैं वे आम आदमी के समझ के परे होने के कारण उन्हे लगता है कि स्वर्ग में खाली जगह ही है। बारिश के बाद धूप में जो इंद्रधनुष नजर आता है उसके सात रंगो के अनुसार सात लोको के रंग होकर उन्हें शास्त्रों के अनुसार ये नाम दिये गये है 1) ॐ भूः 2) ॐ भुवः 3) ॐ स्वः 4) ॐ महः 5) ॐ जनः 6) ॐ तपः 7) ॐ सत्यम्।

पहले तीन लोकों में जो आत्माएं होती है उन्हें प्रथमतः इन लोकों से अपनी उन्नति कर लेनी होती है। जीव ने कर्म के अनुसार जन्म लिया तो भी जन्म लेकर केवल कर्म का उपभोग लेना इतना ही जन्म का अर्थ नहीं है। कर्म के अनुसार जीते समय 'धर्माचरण' किया तो जो जीव कर्म से जन्म लेता है उसकी इस धर्माचरण से उन्नति होकर उसकी अवस्था में स्थित्यन्तरण होता है। मतलब जीव, जीवात्मा और आत्मा ये अवस्थाएँ इहलोक में ही प्राप्त कर लेना, और ऐसी उत्क्रांति इहलोक में प्राप्त हो जाना, मतलब जन्म लेने वाला जीव आत्मा अवस्था तक पहुँच गया तो मरणोपरान्त जीवन में उसे परलोक में ॐ भूः, ॐ भुवः और ॐ स्वः इन लोकों का लाभ प्राप्त होता है। प्रथम अवस्था में यानि ॐ भूः इस लोक में आत्मा को प्रवेश मिल गया तो मृत्यु के एक साल बाद के श्राद्ध विधि के बाद उसका प्रवेश ॐ भुवः इस दूसरे लोक में होता है। ॐ भुवः और ॐ स्वः इन दूसरे और तीसरे लोक में आत्मा का अस्तित्व बारह साल तक होता है फिर बाद में चौथे लोक में जाने के लिए स्थित्यंतर अवस्था है। पृथ्वी और परलोक के बीच जो रिक्त स्थान है उसे earth bound sphere कहते हैं। तीसरी और चौथी अवस्था में जो रिक्त स्थान है उसे horizon of spirit यानि 'आत्मा' का क्षितिज कहते हैं।

ऐसी यह परलोक की यात्रा सुखदायी होने के लिए हमे हमारे इह जगत् में जन्म लेने का कारण ज्ञात होना आवश्यक है। फिर जिस कर्त्तव्य के लिए जन्म लिया हो उस कर्त्तव्य की पूर्णता करके आत्मा परलोक में जाती है। यह स्थिति आम आदमी की न होकर, योग्य संस्कारों के कारण ऐसे जीवन में पिंड यानि जीव की धारणा होती है और उसे वे संस्कार मरणोत्तर जीवन में अगली अवस्था की प्राप्ति करा देते हैं। चौथा या पांचवा लोक यानि ॐ महाः और ॐ जनः इनको स्वर्गलोक या देवलोक की अवस्था कहते हैं। इसका अर्थ पूजा में हम जिन देवीदेवताओं को मानते हैं वे उस लोक में हैं ऐसा न होकर वहां से आए आत्माओं का आचरण (बोल–चाल) इह जगत् में ईश्वर जैसा होता है और उनकी इच्छा, वासना रूपी न हो कर, इह जगत् में कर्त्तव्य के लिए जीवन व्यतीत करते समय जो कोई विषय अधूरे रह गए हो उस विषय की पूर्णता के लिए आत्माएं

जन्म लेती हैं और इसके कारण पृथ्वी में लेन देन होता रहता है। लेकिन पिछले सैकड़ों सालों में ऐसी आत्माओं का अस्तित्व परलोक में होकर भी और उन्हें जन्म लेने की इच्छा होकर भी हम मानवों के आचार विचार और उच्चार अयोग्य होने के कारण ये आत्माएं जन्म नहीं ले सकती हैं इसलिए earth bound spirits पृथ्वी से बंधी आत्माओं में स्थित्यंतर न होकर उन आत्माओं की वासना बाकी रहने से उन्हें मुक्ति न मिलने के कारण वे आत्माएं वासना और बाधा इस रूप में हमारे चारों ओर मंडराती रहती है। जीव की इच्छा, इन वासनाओं से मुक्त होने की होती है। यह ज्ञान इहलोक के लोगो को नहीं होता। दैनंदिन जीवन में जो वासनाएं बढ़ रही हैं उनका शोध लगाना आवश्यक है क्योंकि आज प्रत्येक मनुष्य जन्म लेकर केवल ऐहिक उपभोग ले रहा है और इतना सब कुछ सेवन कर लेने पर भी उस जीव को समाधान नहीं है। इसका अर्थ यह है कि यह अन्न हम नहीं खा रहे हैं बल्कि वासना के कारण जो जीव हमारे हिस्से आए हैं, उनकी खाने की वासना इतनी तीव्र है कि संपूर्ण जगत् को खाकर भी उन्हें तृप्ति की डकार नहीं आ रही है। इसलिए आसान से आसान उपाय 'देवधर्म' है, लेकिन जितना आवश्यक है उतना ही देवधर्म करना चाहिए। उसकी ज्यादती होने पर ऐसा न लगे कि 'यह धर्म ही नहीं चाहिए।'

बाद में भिलवड़ी में रहते समय परलोकवासी अप्पा शेणोलीकर की मृतात्मा से संचार अवस्था में भेंट हुई। तब उन्होंने कहा कि, "मरणोत्तर जीवन में आत्मा को जो अवस्था प्राप्त होती है वहाँ से उसे सद्गति प्राप्त होना आसान नहीं है। मनुष्य इह जगत् में मृत होने के बाद उसके परिवारवाले उसके लिए श्राद्ध विधि करते है। लेकिन वह श्राद्ध विधि केवल एक आत्मा के लिए ना होकर उस समय तीन आत्माओं को आमंत्रित किया जाता है मतलब श्राद्ध विधि में पितृत्रयी यानि, व्यक्ति, व्यक्ति के पिता और व्यक्ति के पिता के पिता (दादा) इनकी आत्माएं उपस्थित होना आवश्यक होता है। और ऐसा श्राद्ध विधि करने से पितृत्रयी की पूर्व पीढ़ी यानि चौथी पीढ़ी यानि परदादा की आत्मा मुक्त होती है। यह क्रम वेदशास्त्र की विधि में लिखा है और बहुत से लोग इस विधि का अवलम्ब करते हैं लेकिन इस विधि से आज तक कितनी आत्माओं को मुक्तता हुई यह सवाल है।

इसलिए गुरू से मार्ग पूछना आवश्यक है क्योंकि जो श्राद्ध विधि आज धर्मशास्त्र के अनुसार तीर्थयात्रा, दानधर्म आदि से की जाती है वह केवल अंधश्रद्धा से की जाने के कारण आज इन विधियों से आवश्यक कार्य नहीं हो रहा है।"

तब परम पूज्य बाबा की आज्ञा इस प्रकार हुई कि– " जो कोई दुखी लोग मार्गदर्शन के लिए हमारे पास आएंगे उनका उपयोग करा ले। उन लोगों के घराने की जो आत्माएं मुक्त नहीं हुई हैं उनका आगे की पीढ़ी के व्यक्ति के जीवन के ऋणानुबंध के अनुसार क्या संबंध है यह हमें समझ लेना आवश्यक है। इसलिए 'वंशविमोचन' यह विधि संकल्प से सिद्ध करना आवश्यक है। उसके अनुसार संकल्प तैयार करके सब भक्तों को देने के लिए योग्य समय मैं तुम्हें बताउंगा। परंतु उसके पहले वंशविमोचन का लाभ तुम्हारे माता पिता के घराने की मृत व्यक्तियों को होता है या नहीं इसकी जांच करके अनुभव प्राप्त करो, उसके बाद वह संकल्प औरों को दे सकेंगे। इसके अनुसार मैने अपने और अपनी माता के घराने में क्या क्या घटित हुआ उसका विचार किया। केवल ये आत्माएं मुक्त हो गई यह विश्वास करना योग्य नहीं होगा क्योंकि दोनो धरानों की परिस्थिति कठिन थी। घराने के व्यक्तियों के कर्मो में प्रबन्ध था लेकिन घराने में जो दोष थे उनके कारण घरानों का उत्कर्ष नहीं हुआ था। बाद में वंश विमोचन करने से इन दोनो घरानों में जब सुख, शांति, समाधान का लाभ होने लगा तब यह सिद्ध हुआ कि अपनी साधना सिद्ध हुई है।

इसके बाद गुरू आज्ञा के अनुसार सेवा जारी रही। यह सेवा भक्तों के लिए लाभदायक थी तो भी इस सेवा से जैसे उनकी ऐहिक प्रगति हुई है, वैसी उनकी पारमार्थिक प्रगति भी हो रही है इसका अनुभव प्राप्त होना आवश्यक था लेकिन आनेवाले भक्तभाविकों के, जीवन की समस्याओं के अनुसार सवाल जारी थे। उनका मूल विषय 'सुख' था इसलिए बहुत से लोग सुख की प्राप्ति कब होगी ? यहीं पूछते थे। उस समय भी आने वाले भक्तों को पारमार्थिक लाभ होने के लिए या उसकी पहचान होने के लिए मार्गदर्शन किया गया था लेकिन मार्गदर्शन लेने वाले भक्तभाविकों का

ध्यान, उनका खुद का जीवन समृद्ध कैसे होगा इसकी ओर होने के कारण उन्हें मार्गदर्शन होकर भी उस मार्गदर्शन के लाभ का अनुभव उन्हें प्राप्त नहीं हो सका।

उस समय आने वाले लोग और उनके सवाल क्या हैं और मैं भविष्य में क्या करने वाला हूँ, इसका मूल विषय से मेल प्रस्थापित नहीं हो रहा था। उससे निराश होकर मुझे लगा कि औरों को ज्ञानी करने की अपेक्षा मैं इस मार्ग को ही छोड़ दूं। तब आखिर, एक दिन परम पूज्य बाबा ने मुझसे कहा कि, "यदि तुमने ऐसा मान भी लिया कि जगत् में ईश्वर नहीं है केवल पत्थर ही है, तो भी पूजा करने के लिए भक्तभाविक का बाकी बचना आवश्यक है। इसलिए हमारे प्रयत्न ईश्वर प्राप्ति के लिए न होकर लोग ईश्वर जैसा आचरण करें इसके लिए करना आवश्यक है, यह विचार करके आगे चलो। बाद में कुछ काल पश्चात् यही भक्त जब परमार्थ का विचार करेंगे तब उनकी कीमत आज की अपेक्षा सौ गुना अधिक होगी। उस समय उन्हें परमार्थ की भूख लगी है इसका तुम्हें अनुभव होगा और उसी समय उन्हें मार्ग सूचित करना योग्य है। जिन्हें इस मार्ग की भूख नहीं है उन्हें इस मार्ग की सीख देकर भी वह व्यर्थ ही जाएगी क्योंकि यह मार्ग पचहत्तर प्रतिशत गुरूकृपा की अमानत है और पच्चीस प्रतिशत ऐहिक है। दोनो मिलाकर साधक को सौ प्रतिशत सेवा करना आवश्यक है। लेकिन आने वाले भक्त सुख के लिए आते हैं इसलिए पच्चीस प्रतिशत कृपा के पात्र बनते हैं लेकिन पचहत्तर प्रतिशत कृपा बाकी रह जाती है क्योंकि यह कृपा केवल अनुकरण करके प्राप्त नहीं होती है। उसके लिए जीवन में नित्य साधना जोड़ना आवश्यक है। इस साधना में दी गई सीख के अनुसार यदि हमारा आचरण हुआ तो यह पचहत्तर प्रतिशत कृपा प्राप्त होती है। नही तो गुरू मिलकर भी 'नहीं मिले' ऐसा जीवन व्यतीत होता है।

जीवन में अनेक विषय आते हैं और जाते हैं। आने वाले विषय कितने थे और जाने वाले विषय कितने थे यह हम जन्म लेने के बाद भूल जाते हैं। इसलिए कौन से विषय में काया वाचा मन इनकी त्रिपुटी (तीनो की

एकरूपता) हुई इसकी पहचान होना आवश्यक है। अन्य और विषय, जो आनेवाले और जाने वाले हैं उन विषयों के यदि संस्कार हो गए तो वे विषय अगले जन्म में काम आएगें, नही तो 'सुनार की नली में फूंक मारने से हवा इधर से अंदर आई उधर से बाहर गई' ऐसी हमारी अवस्था होती है।

इसलिए प्रथमतः सीमित विषय ही अभ्यास के लिए लेकर उनमें काया वाचा मन एक होता है या नहीं इसकी जाँच करना आवश्यक है क्योंकि जब जीवन में 'ईश्वर 'यह विषय प्राप्त करना होता है तब जीवन में अगर मूल काया, वाचा, मन इनकी त्रिपुटी (एकरुपता) हुई तो 'ईश्वर' यह क्या विषय है यह समझ आएगा। 'ईश्वर' मायने क्या है ? काया वाचा मन इनकी त्रिपुटी (एकरुपता) होकर जब मनुष्य जीवन जीता है, तब उसके जीने में, आचार में और उच्चार में जो क्रिया हम देखते है उस क्रिया को 'ईश्वर' कहते हैं। इसलिए प्रथमतः जो भक्त तुम्हारे पास आएंगे उन्हें ऐहीक की चाहत लगना आवश्यक है क्योंकि 'ऐहिक' यदि एक विषय है, फिर भी भक्त के लिए वह विषय ईश्वर से भी बड़ा है। इसलिए जब भक्त अपना दुख लेकर तुम्हारे पास आएंगे, तब उनके उस दुख को ईश्वर का विचार समझकर विचार करो तभी उस विषय से प्रेम की धारा बहेगी और फिर वह भक्त ऐहिक की मांग न करके अपने आप ही परमार्थ के विषय की ओर चलेगा। इसलिए आनेवाले भक्तों के लिए आसान साधन होना आवश्यक है। फिर धीरे धीरे उस भक्त में जो बदलाव आएगा उसका अर्थ 'परम–अर्थ' परमार्थ है इतना ही अर्थ यदि जन्म लेकर समझ आया तो भी उस भक्त का जीवन सार्थक होगा।"

22. औदुंबर सेवा की समाप्ति 'स्वगृह' गमन

मैं जिस दिन औदुंबर आया वह सावन महिने की प्रतिपदा का दिन था। सावन महिने की पंचमी के दिन मुझे भोर के समय श्रीशेषनागजी के दर्शन हुए। हमेशा घर में रहने की आदत के कारण उस दिन मैं देर से उठा। स्नान करके पूजा की। प्रार्थना करते समय मेरे मन की दुविधा अवस्था हो गई। एक तरफ घर की याद आ रही थी, दूसरी तरफ साधना के विचार थे। साधना के बारे में कुछ पता नहीं था। साधना का क्या मतलब है, साधना करने से क्या प्राप्त होगा इसके बारे में अज्ञान था इसलिए स्वाभविकतः मन की आस्था घर की ओर थी। घर में माता पिता, भाई बहन सब थे। उनकी याद आई और मेरा मन कहने लगा कि इस जगत् में मुझे सब कुछ है भी, और नहीं भी। इसे दुख कहें तो ये दुख नहीं है लेकिन अगर इसे सुख कहें तो सुख किसमें है यह बता नहीं सकता। पहले दिन यह अहसास हुआ या उसे मैं आज्ञा कह सकता हूँ, तो वह आज्ञा इस प्रकार हुई, ' "साधक के लिए जगत् जागने के बाद जग जाना ठीक नहीं है। जगत् अंधकार में है और यदि उसे जगाना है तो सोते रहने से कैसे चलेगा ? इसलिए प्रथमतः समय पर जाग जाना सीखो।" इस आज्ञा के अनुसार मैं हर रोज सुबह तीन बजे उठने लगा क्योंकि स्नान संध्या, नामस्मरण आदि ब्रह्ममुहुर्त पर होना आवश्यक था। ऐसे क्रम से समय बिताते दिन, महीने तथा एक साल गुजर गये। इस प्रकार साधना जारी थी। अब इस जीवन को आकार प्राप्त हो जाने के कारण जीवन व्यर्थ खर्च होना इसकी कीमत कितनी है यह समझ आने लगा। निश्चित नित्य कार्यक्रम को 'दिनचर्या' कहते हैं। रोज नये तरीके से जीना बोलना और बर्ताव करना इसे दिनचर्या नहीं कह सकते हैं। जीवन का विषय कितना है और क्या साधन करनी है इसकी रूपरेखा मैने मेरे मन में निश्चित की। लेकिन साधना कब होगी और जगत् को उसका लाभ कैसे होगा यह गणित समझ नहीं आता था। आखिर एक दिन भोर के बाद मैने महाराजजी के दर्शन किए और उपासना के स्थान पर आकर, आसन पर बैठ गया, और आंखे बंद करके देखने लगा तो मुझे भोर का प्रकाश और

क्षितिज दिखाई दिया। आसमान में जगत् दिखाई न देकर सर्वत्र प्रकाश और सात रंगो की विविध छटा दिखाई दे रही थी। उसमें दिखाई देने वाला केसरिया रंग आगे क्षितिज तक हल्का लाल हुआ था। यह देखते समय आवाज सुनाई दी, " बेटा यह ब्रह्माण्ड का रंग है। कालांतर से यह रंग बिरंगी (विविध रंग का) होकर उससे पिंड निर्माण हुए है। यह जो रंग तुम्हें दिखाई दे रहा है, उसमें जब बदलाव आएगा तब तुम्हारी साधना का गणित हल होगा। नही तो यह गणित ना होकर अगणित है। इसलिए शोध लेने में समय न खर्च करो। तुम्हें इस जगह सेवा के लिए बुलाया है। सुबह सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन सूर्योदय तक के काल को अज्ञानी लोग 'दिन' कहते है लेकिन साधक उसे एक 'साल' कहते है। "

धीरे धीरे साधना पूर्ण होने के दिन आए हैं ऐसा अहसास मुझे होने लगा। श्री दत्तमहाराजजी के मंदिर में औदुंबर का बड़ा वृक्ष था। उस वृक्ष के जड़ मूल के पास गणेशजी हैं यह मैने मंदिर में प्रत्यक्ष रूप में देखा। और आज भी श्रीगणेशजी वहां उपस्थित हैं। इसके अलावा जिसे शुभ शगुन कहते हैं, वे औदुंबर वृक्ष के तीन फूल भी मुझे दिखाई दिए। वह देख कर मुझे लगा कि मैं धन्य हुआ क्योंकि जो सेवा मैं कर रहा था उस सेवा को श्रीदत्तमहाराजजी ने प्रतिसाद दिया ऐसा मैने मान लिया। उसी सप्ताह मेरे मामाजी से भी सन्देश आया कि मुझे आकर मिलो। मामाजी की भगवद्गीता पर श्रद्धा थी। वे स्वयं भगवद्गीता का पाठ करते थे और घर के सब लोगो को पढ़ाते थे। मामाजी के सन्देश के अनुसार मैं उनके घर गया। दोपहर को खाना खाने के बाद हम दोनो उनके खेत में गए और जहाँ वे हमेशा बैठते थे वहाँ कुएँ के पास बैठ गए। उस समय मामाजी ने यह उच्चार किया कि " यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानीर्भवति भारतः" ।

मामाजी की ऐसी वाणी मैने पहली बार सुनी। वे पचास साल से गीता का पठन कर रहे थे लेकिन उस समय उनका उच्चार सुन कर मेरी मति दंग रह गई। आधा घंटे तक वे और मैं स्तब्ध (शांत) बैठे रहे। आखिर उठ कर वे मुझ से बोले– " दादा हमारी इच्छा अलग होती है और ईश्वर की इच्छा अलग होती है। अब मैने जो कुछ कहा वह मुझे याद नहीं था

और मैं तुम्हें कुछ अलग कहने वाला था लेकिन दूसरा ही हो गया। पिछले हफ्ते जो सपना मैने देखा था उसके बारे में मुझे तुमसे कहना था। वह सपना ऐसा था कि, भोर के समय मेरे सपने में भगवान कृष्ण आए और उन्होनें कहा– ''ईश्वर का कार्य है। उस कार्य के लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता होती है। यह मध्यस्थ ईश्वर नहीं होता, लेकिन यह मध्यस्थ ईश्वर का संदेश लेकर आता है। इस पर यदि पूर्णतः श्रद्धा रखी तो ही इस जगत् का उद्धार होगा। यदि मन में संदेह निर्माण हुआ तो जगत् डूब जाएगा ''यह सुनने के बाद मैं जाग गया। पिछले चार दिनों से यही संदेश मेरे कानो में गूंज रहा है। इसलिए मैने तुम्हें बुलावा भेजा था। फिर मैने उन्हें, पिछले सप्ताह में मेरी जो अवस्था हुई थी उसके बारे में बताया। इसका अर्थ यह है कि हम दोनों को भी ईश्वर का आदेश हुआ था यह सत्य है।

इसके अनुसार औदुंबर आने के बाद मैं रोज दोपहर को इस जगत् का विचार करता था। उसमें यह प्रश्न खड़ा रहा कि ' जग कितना विशाल है और इस जगत् को मैं क्या दे सकूंगा ?' यह जगत् बीसवीं सदी की ओर धीरे धीरे जा रहा है इसलिए इस जगत् का देवधर्म पर भरोसा कम हो रहा है। इस जगत् को मैं फिर कैसे जगा सकूँगा यह सवाल जब सामने आया तब उसका निर्णय नहीं हो रहा था और मेरे विचार भी खत्म नहीं हो रहे थे। आखिर इन विचारों को बलि चढ़ाए बिना ये विचार रूकेंगे नहीं यह तय करके मैने सामने की कृष्णा नदी के पानी में तीन डुबकियाँ लगाई और नदी के किनारे खड़ा रहा। उस समय मैने यह दृश्य देखा कि पूरब की ओर सूर्य उदय हो रहा है। तब मेरे मन ने कहा, "अब पश्चिम दिशा को अंधेरा हो रहा है। इसके अनुसार ही भविष्य में घटना घटित होगी यह सत्य है। जल्दबाजी मत करो। हमें अपना कर्त्तव्य करते रहना आवश्यक है। ईश्वर उसका फल जरूर देगा। '' उस दिन से मैने विचार करना छोड़ दिया, क्योंकि उस समय यह आज्ञा हुई ''केवल विचार करके क्रिया शून्य होने की अपेक्षा विचारों की शून्य अवस्था प्राप्त कर लो। तब यह समझ जाओगे कि यह जगत् कितना गतिमान है। जगत् इसी गति के अनुसार चल रहा है लेकिन इस जगत् का मध्य क्या है, लय का क्या

अर्थ है यह बाद में समझ आएगा। यह जो जगत् गतिमान है उसकी गति को धीरे धीरे कम करके आखिर में गति को तय करना चाहिए। इससे गति को पूर्णत्व प्राप्त होगा। इस गति के अनुसार तुम्हें चलना है। वह सीख परम पूज्य बाबा देंगे। उसके अनुसार कार्य करो। माघ महिने की पंचमी को तुम 'स्वगृह' लौट जाओ। उसके पहले जो अमावस्या है उस दिन तुम्हारी उम्र के पैंतीस साल पूर्ण हो रहे हैं।"

यह आज्ञा सुनकर मै सोचने लगा कि ' स्वगृही ' इस शब्द का क्या मतलब है क्योंकि औदुंबर आने के पहले मैने मेरा संसार तोड़ा था। मेरी पत्नि एक जगह, बेटा एक जगह और मैं एक जगह ऐसे हम रह रहे थे। फकीर को भी सोने के लिये मस्जिद होती है लेकिन मेरे लिये तो वह भी स्थान नहीं था। ऐसे समय 'स्वगृही' (अपना घर) इस शब्द का क्या उद्देश्य है ? मैने जब जन्म लिया तो स्वयं का घर बसाया था और जब मेरी साधना पूर्ण हुई तो मुझे बोध हुआ कि 'घरबार' यानि यह पूरा संसार सँवारना है।

श्रीदत्तमहाराज जी से विदा होते समय वेदवाणी हुई, "जो दुखी कष्टी लोग हैं उनको जो अपना कहते (अपनाते) हैं उन्हें साधु कहें, उन्हीं में ईश्वर का अहसास करें।" इस वेदवाणी से यह बोध हुआ कि इसका अर्थ व्यवहारिक नहीं है। इसमें सारे जगत् का तत्वज्ञान है। जो ' दुखी कष्टी लोग हैं उन्हें अपना कहे, ' इसका मतलब ' इहलोक ' है। उनमें ' ईश्वर का अहसास करें ' इसका मतलब ' परलोक' है। उन्हें ' साधु ' कहे इसका मतलब ' स्वर्गलोक ' है। इस प्रकार इस वेद वाणी का संबंध तीनो लोको से है। इसलिए इहलोक में जो जिंदा इन्सान है उन्हें भूत मान लो क्योंकि भूत की इच्छापूर्ति और शांति कभी नहीं होती है। क्योंकि भूत का आकार नहीं है जैसे जगत् बदलता है वैसे भूत अपना आकार बदलते हैं। आगे कार्य में ये भूत तुझे भगा देंगे। इन भूतों को सोने का पहाड़ दिया तो भी ये लोग कहेंगे ' गुरू ने क्या दिया है ?' लेकिन परलोक में जो कार्य है यह सौ प्रतिशत कार्य होगा क्योंकि वहाँ की आत्माएं आगे जन्म लेती हैं। इन आत्माओं को काया वाचा नहीं है उन्हें हम जैसा आकार देते हैं वैसा आकार वे प्राप्त करती हैं। वाणी न होने के कारण ये आत्माएं गायत्री मंत्र

या श्रीराम जयराम जयजयराम इतने बड़े मंत्रों का उच्चार नहीं कर सकती है। इसलिए एक अक्षर का यानि ॐ का उच्चार वे कर सकेंगी और उन्हें ॐकार सिखाने से वे ॐकार करेंगे।

इसलिए इहलोक मे जो काया, वाचा, मन से युक्त त्रिगुणी मानव है उन्हें मरते दम तक यह ॐकार साधना करनी चाहिए। इसके कारण फिर से जन्म लेते समय ॐ यही शब्द पहले आता है और जन्मतः अहं आकार ऐसी अवस्था प्राप्त होती है। मन की धारणा इह जन्म के संस्कारों पर निर्भर है। काया और वाचा इन पर संस्कार होने से मन की धारणा होती है। इतना महान कार्य तुम्हें भविष्य में करना है और इसी योजना की रूपरेखा ईश्वर ने बनाई है। यद्यपि दुनिया ने बहुत तरक्की की है, फिर भी उसे ईश्वर के सामने झुकना पड़ेगा। इस जगत् के आगे और भी एक जगत् है। यहाँ आने के बाद नदी के दूसरे किनारे पर जो मंदिर है वह तुमने देखा है। वह जगत् जननी, मतलब 'ज' है। 'ग' का मतलब गणपति है। अभी तुम गणपति की ओर मत जाओ। आगे वह खुद तुम्हें बुलाएंगे। तब तक ॐकार कहते रहो। यही प्रसाद आज तुम्हें तुम्हारी वर्षगांठ के दिन दिया है। यह दिन अक्षय है और यह दिन हम जगत् मे मनाएंगे।"

बाद में पंचमी के दिन स्नानादि विधि करके मैं श्रीदत्तमहाराजजी के सामने बैठा रहा और इन ढाई सालों में क्या घटित हुआ यह विचार करता रहा। इस नंदनवन में मैने तुलसी के पत्ते चुन लिए हैं और जगत् में आखिर तुलसी का नाम लेते हैं, इतना जगत् में और हममे फर्क है। नित्य पूजन में तुलसी के पत्ते के बिना पूजा विधि नही होती है, लेकिन जगत् तुलसी के पत्ते पर भी अपनी वासना और इच्छा का त्याग नहीं करना चाहता।

ईश्वर ने हम मानवों को जन्म दिया है और ज्ञानी किया लेकिन हम 'ज्ञ' यह मूल अक्षर ही भूल गए। इसलिए यह फिर से जन्म हुआ है, नहीं तो एक ही जन्म में सोक्ष और मोक्ष होना है। लेकिन हम मानवों के लिए मोक्ष विष जैसा है और सोक्ष यही पसंद का विषय है जिसके पीछे लगकर मानव ठगाये जा रहे है।

उस दिन बसंत पंचमी का त्यौहार यह भाग्यपूर्ण दिन था। इस दिन निसर्ग में सब ओर 'पहले फूल और फिर फल' ऐसी बहार आती है। संगीत में भी 'बसंत' यह जो रागिनी है वह अत्यंत मधुर है और इस रागिनी के आलाप गाने के बाद जब गायक 'बहार' रागिनी का आलाप गाते हैं तब सृष्टि के चरण यह सूचित करते है कि आनेवाला काल सुख का काल है। उस दिन माधुकरी न माँग कर, मैने पंडित जी के घर महाप्रसाद का खाना खाया तब वह खाना और माधुकरी (भिक्षा) माँग कर खाना इनमें का फर्क मेरी समझ में आया। माधुकरी का (भिक्षा का) खाना ही 'महाप्रसाद' है क्योंकि उसमें 'वास' (अस्तित्व) था और आखरी दिन जो खाना खाया उसमें 'वासना' थी।

औदुंबर से निकलने में बहुत थोड़ा समय था। उस समय गाय के बछड़े को गाय से दूर करते समय बछड़े की जैसी अवस्था होती है वैसी ही मेरी अवस्था हुई थी। जन्म देने वाली माता और देखभाल करके, सम्हालकर आगे ले जानेवाली माता इनमें का फर्क न समझने के कारण लोग जब यह कहते है कि 'मेरी माताजी' तब यह शब्द मुँह से निकलते है कि यदि उसने कल्याण किया होगा तो ही! नही तो नही। जन्म देनेवाली माता बच्चे के जन्म का भार नौ महिने सम्हालती है– लेकिन जो 'गुरूमाता' जीवन भर देखभाल करती रहती है उसे हम समझ नहीं पाते हैं क्योंकि वह उसका, धर्म होता है। ठंड बारिश गर्मी ऐसे बदलाव निसर्ग में आते रहते हैं और उनके कारण सैकड़ों लोंग बीमार होते हैं लेकिन मेरी माता ने बीते ढ़ाई साल में मेरी जैसी देखभाल की है वैसी देखभाल जगत् की कोई माता नहीं कर सकेगी। उसने इस काल में सर्दी जुकाम बुखार इनमें से एक को भी मेरी ओर आने नहीं दिया, क्यों ? वह इसलिए कि मेरी साधना हो रही थी। ऐसी माता के उपकार का ऋण मै कैसे चुका सकता हूँ ? यह सोचकर मै रोने लगा। आखिर में विदा लेने का वक्त आया तो सोचा ईश्वर के सामने क्या रख दूँ ? लोग जब कुछ कारण के लिए ईश्वर के दर्शन करने आते हैं तो ईश्वर के सामने पैसे रखते है। मेरे पास तो पैसे नहीं थे। फिर ईश्वर के सामने क्या रखें ? आखिर मुझे यह बात याद आई जो एक दिन मेरे पिताजी ने मुझे बताई थी। बचपन में खाना खाते समय

मुझे 'चीनी' बहुत पसंद थी। उस समय पिताजी ने मुझे कहा था " केवल मीठा खाने से आदमी मीठा नहीं होता है।" हलवाई दिन भर मिठास बेचता है तो क्या उसके हाथ कभी मीठे हुए हैं ? इसका विचार करो और मीठी चीनी को भूल जाओ। तभी तुम्हारे आचार विचार में मिठास आयेगी "। पिताजी के ये शब्द मुझे याद आए। इसलिए मैने यह सोच लिया कि यहाँ से जाते समय क्या साथ ले जाना चाहिए और यहाँ क्या छोड़ना चाहिए। आगे जगत् को मेरी आवश्यकता है उसके लिए आचार विचारों में ऐसी मिठास का निर्माण होना आवश्यक है कि जो कोई मिले वह कम से कम एक क्षण के लिए तो अपने दुख भूल सके। इसलिए मीठा खाना छोड़ देना आवश्यक है। लेकिन फिर जगत् में कैसे बर्ताव करें ? तो यह बोध हुआ –

"घर जाने के बाद रिश्तेदार, दोस्त लोग इन्होंने खाना खाने बुलाया और यदि उसमे मिष्टान होगा तो उस मिष्टान्न का आदर करना चाहिए। वह मिष्टान्न ब्रह्म है। उस मिष्टान्न को गुरू को अर्पण करो तो उसका 'प्रसाद' बनेगा। मिष्टान्न से केवल एक आत्मा की वासना तृप्त होती है उसके बजाय जिससे अनेक आत्माएं तृप्त होंगी ऐसा प्रसाद यहाँ से ले जाओ। यह मिष्टान्न ब्रह्म है इसलिए उसका अनादर मत करो लेकिन वह लेते समय केवल प्रसाद इतना लेने से वह ब्रह्म होगा। भरपेट खाकर उस ब्रह्म की कीमत कम मत करो।"

आखिर में नये जगत् में कदम रखने के लिए मैं मामाजी के घर गया। मेरी इस साधना में उन्होंने मेरी बहुमूल्य मदद की थी इसलिए मैं वहाँ उनका आशीर्वाद लेने गया और घर के सब बुजुर्गों को प्रणाम करके मैं पूना आने के लिए निकल पड़ा।

23. श्री साई अध्यात्मिक समिती की स्थापना तथा श्रीसाईनाथ महाराज और पांच पीर के द्वारा विजयादशमी के दिन कार्यारंभ

पूना से औदुंबर आने के पहले मैं पूना में जिनके घर रहता था वहाँ मैंने पूजा के सब फोटो रखे थे। तब मैने उनसे यह कहा था कि 'मेरे आने तक तुम इन फोटो की पूजा करो '। पूना आने के बाद मुझे यह संभ्रम हुआ कि, यही फोटो मैं रख गया था या ये नये फोटो हैं ? बाद में एक दो दिन में मुझे इसका पता चला कि उन लोगों को इन तस्वीरों की प्रचीती आती थी। उस समय कार्य की स्थापना नहीं हुई थी। मैं केवल सुबह शाम आरती करता था और आने वाले भक्तों को उदी देता था। तब सुबह शाम वहाँ लोग इकट्ठे होने लगे। उस समय जो कोई दुख लेकर आते थे उन्हे मैं केवल परम पूज्य बाबा का श्रीफल देता था और उसकी पूजा करने के लिए कहता था। इससे ज्यादा उनके प्रश्नों की मैने कुछ और पूछताछ कभी नहीं की। मैं उन्हें इतना ही कहता था कि ' ग्यारह हफ्ते प्रसाद पूजन करके ॐ श्रीसाईनाथाय नमः इस नाम की एक माला जपो। परम पूज्य बाबा तुम्हारा दुख निवारण करेंगे।' इस प्रकार यह विश्वास संपादन करने के बाद परम पूज्य बाबा ने कहा कि "अब समिती की स्थापना करो। इसके लिए जो मदद आवश्यक होगी वह मदद पाँच पीर करेंगे। बचपन में तुम्हें जिन्होंने फकीर किया है वे ही यह सब काम करेंगे।"

जगत् मे जो कोई जन्म लेता है उनमें हर एक को रोटी, कपड़ा, मकान इनकी आवश्यकता होती है। यह विचार करके हम उसके अनुसार प्रयत्न करते हैं। ऐसे समय स्वयं के जीवन में इनका क्या प्रबंध हुआ है यह सुविचार हम कभी नहीं कर पाते हैं। हमारे चारो ओर जो जगत् दिखाई देता है उनको जैसा सुख प्राप्त हुआ है उस प्रकार के सुख और ऐश आराम इसकी प्राप्ति जब हमें नहीं होती है तो हम जाग जाते हैं और हम औरों के समान सुखी नहीं है, सुख के लिए प्रयत्न करके भी हमारे हिस्से सुख नहीं है, ऐसी भावना निर्माण होने के बाद, हम यह जीवन क्या

है यह देखने लगते हैं। इसमें पहला प्रयत्न यह होता है कि हमारे भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनो काल में, सुख है या नही, इसकी जाँच करते हैं। इन तीनो काल में जाकर भी सुख शांति नहीं मिलती है इसका पता चलने के बाद मतलब 'दैव' से पीठ फेर लेने के बाद हम ईश्वर का शोध लेने घूमते हैं।

तब ईश्वर कहते हैं, 'हे मनुष्य तुम्हें आज मेरी याद आई है, लेकिन तुम्हारे पूर्वजो को रोटी, कपड़ा, मकान देनेवाला मैं ही हूँ। तुम्हे अब मेरी याद आ रही है लेकिन यदि बेटा माँ को भूल गया तो भी माँ बेटे को नहीं भूलती है'। इसलिए ईश्वर तो हैं ही, लेकिन वे हमारे साथ हैं या हमारे पेट के साथ यह सवाल है। जगत् में बहुत से लोग जीवन में कठिनाईयाँ निर्माण होने के बाद ईश्वर को पुकारते हैं और कठिनाईयाँ नष्ट होने के बाद ईश्वर को भूल जाते हैं। जीवन यह कर्म का खेल है। इस खेल में जय–पराजय ऐसे दोनो पासें पड़ते हैं यह न भूले। जीवन में आने वाली विपत्तियाँ जीवन की विपत्ति नहीं होती है। वह विपत्ति हमे जागृत करने के लिए आती है। उस समय अगर हम जगह पर जागृत हैं तो हमे यह समझ आएगा कि ईश्वर हमें पुकार रहे हैं। इसलिए जीवन का क्या मतलब है, जन्म का क्या अर्थ है यह समझ लेना आवश्यक है। जन्म लेना यह आसान नहीं है। जन्म लेते समय नौ महिने लगते हैं लेकिन जन्म लेने के बाद इस जन्म की इच्छाओं की पूर्तता करते करते संपूर्ण जीवन व्यर्थ जाता है। इसलिए ज्ञानी लोगो ने, "हमने क्यों जन्म लिया है और हमारा कर्त्तव्य क्या है, " इतना विचार किया तो भी काफी है।

जो लोग मुझसे मिलने आते थे उनका यही रोना था, इसलिए हर एक से मैं एक ही सवाल पूछता था कि आपने जन्म क्यूँ लिया है और आपके जीवन का कर्त्तव्य क्या है ? तब उन लोगों ने मुझे कहा कि "हमने मंदिर मे कीर्तन, पुराण, प्रवचन सुना है लेकिन आपने जो प्रश्न किया है वैसा प्रश्न हमसे आज तक किसी ने भी नहीं पूछा है। मंदिर में होने वाले कीर्तन में ईश्वर का विषय होता है और पुराणों में भी इसके अतिरिक्त अन्य प्रश्न किसी ने पूछा नहीं है"। बहुत से लोगों से यह जवाब सुनने के बाद मुझे यही ज्ञात हुआ कि समाज मे देव धर्म के प्रति श्रद्धा है। लेकिन यह श्रद्धा

सूखी है। उसकी जड़मूलमें कोई गीलापन नहीं है यानि केवल समय कटता नहीं इसलिए बहुत से लोग देवतार्चन करते हैं और बाकी लोग उनका अनुकरण करते हैं और यह कहते हैं कि यही देव और धर्म है। इसलिए निराकरण के लिए जो लोग आते थे उन्हें चार शब्द कहने का, यानि 'मुलाकात' इस विषय का, मैने आरंभ किया।

जीवन आरंभ में मानवी जीवन मे जो दुख होता है उसके जड़ मे अज्ञान है। इस अज्ञान के कारण किसी के भी प्रति श्रद्धा नहीं होती है। कम से कम क्या हमे खुद के प्रति श्रद्धा है? हम जो कुछ कर रहे हैं इससे हमे क्या लाभ होने वाला है, यह विचार कोई नहीं करता है? जो लोग मुझे मिलने आते थे उनमें नब्बे प्रतिशत लोग यही पूछते थे कि मुझे सुख चाहिए वह मुझे कैसे प्राप्त होगा? ऐसे समय यह मेरी परीक्षा का समय था क्योंकि ढ़ाई साल मैने जो साधना की थी, उस साधना से सुख शांती की प्राप्ति नही होगी तो लोगों को क्या देना चाहिए और क्या नहीं देना चाहिये ऐसा प्रश्न सामने आया। जगत् को यह ज्ञात था कि मानवी जीवन जन्म कर्म के अनुसार होता है और मनुष्य को उसके अच्छे बुरे कर्मो के फल भुगतने पड़ते हैं। इसलिए इससे अधिक ज्ञान की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। ऐसे लोगो को, हमारा यह मार्ग सुख का मार्ग है या दुख का मार्ग है, यह समझ आना आवश्यक है। तो क्या इसके लिए कोई मार्ग है? यह विचार मेरे मन में आए। केवल औदुंबर में रहना ही आसान नहीं था, और उसके बाद जगत् देखने के बाद, यह मार्ग उससे भी कठिन लगने लगा। इन विचारों के कारण नींद नहीं लगती थी। पहले जिस आनंद में मैं था, वह कम होकर परेशानियां पीछे लगी। औदुंबर में जो साधना मैने की ऐसा मै कहता था उस साधना का अनुभव भक्तों को प्राप्त होना आवश्यक है ऐसी अवस्था में मैं था।

रोज सोने के पहले मैं प्रार्थना कर रहा था लेकिन उस प्रार्थना को प्रतिसाद नहीं मिल रहा था। क्या गलती हुई है यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैने मेरा सर्वस्व दे दिया है, अब देने के लिए मेरे पास क्या बाकी है, यह विचार मैं करने लगा। आखिर विचार शून्य हो जाने के बाद विचारों

की उल्टी दिशा शुरू हो गई। इससे तो मरना बेहतर है। जो करनी नहीं चाहिए थी ऐसी गलती मैं कर बैठा हूँ ' ऐसा मुझे लगने लगा। आखिर एक दिन सुबह पूजा आरती के बाद मैं गाँव के बाहर विठ्ठलवाड़ी में जाकर बैठ गया। उस समय वहाँ नदी का परिसर लोगो को मालूम नहीं था। उस जगह बैठकर मैं शांती से विचार करने लगा। औदुंबर में बिताए ढ़ाई साल में मुझे कोई भी मोह नहीं हुआ था आदि विचार मैने किया फिर भी मुझे मेरी समस्या का जवाब नहीं मिल रहा था। आखिर मैं गांव वापस आने लगा। मुझे आम के बगीचे दिखाई दिए। माघ के महिने मे वहाँ के आम के पेड़ बौर से लद गए थे यह देखकर मैं वहीं खड़ा रह कर विचार करने लगा कि, "कुछ दिनो बाद इस बौर से आम के फल बनेंगे। और वे फल जगत् के लोग खाएंगे। केवल बौर देख कर 'ये आम है ' ऐसा जगत नहीं कहेगा, तो आम की अपेक्षा तुम्हें 'आबा' (पागल) कहेगा। जब आम पक जाते है तब बगीचे का मालिक कुछ आम ईश्वर को अर्पण करता है और बाद में बाकी आम बेचने के लिए बाजार जाता है। तुम इतने ज्ञानी होकर, तीनों लोकों का ज्ञान तुम्हें होकर भी तुम सूखे ही रह गए हो। पिछले ढ़ाई साल ' सेवा की ' ऐसा तुम कहते हो उसमे ' सेवा किसने की' यह सवाल है। तुम्हें सेवा करने के लिए अलग जन्म है। अब सेवा की है श्रीदत्तगुरू ने और वह भी तुम्हारे माध्यम से इसलिए इस जन्म मे तुम 'मेवा' खाओ। लेकिन यदि 'मैने सेवा की है' ऐसा तुम कहोगे तो फल नहीं मिलेगा। आनेवाले तुम्हें यही पूछते है कि 'मेवा' क्या है ? उन्हें उसमें आस्था निर्माण होने के बाद सेवा का मार्ग दिखाओ। गुरूमार्ग में जो साधना हम प्राप्त करते है वह साधना 'गुरूदक्षिणा' के रूप में गुरू को देनी होती है तो ही उसका फल (लाभ) प्राप्त होता है।"

इस तरह आम के पेड़ पर आए हुए 'बौर' ने मुझे जागृत किया। उसके कारण यह एहसास हुआ कि मेरे हाथों से कार्य हो, इस मोह पर मुझे काबू रखना आवश्यक है। साधना को फल आना अभी बाकी है। वह आने के बाद 'गुरूदक्षिणा'। तब तक गुरूमार्ग में दक्ष (जागृत) रहना महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार विचारों की दिशा बंद करके सुबह उठने से रात को सोने तक अपने हाथों 'आचार' हो रहा है या नहीं यह बारीकी से

देख कर मैं आचरण करने लगा। उसी रात परम पूज्य बाबा ने दर्शन दिए। रात को एक और दो के बीच मैं जाग गया। मैं जहाँ रहता था वहाँ मैं अकेला ही सोता था और मेरे सामने बीचोबीच ईश्वर का स्थान था। मैने उठकर हाथ पाँव धोए और एकांत में बाबा के सामने बैठ गया। उस समय परम पूज्य बाबा का फोटो हमेशा जैसा नहीं लगा। उसमें कुछ बदलाव आया है ऐसा लगने लगा लेकिन यह बदलाव क्या है यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। फिर मैंने आदरपूर्वक बाबा से पूछा, " बाबा आज मैं यह जो आपका फोटो देख रहा हूँ उस फोटो में और मैं हमेशा से आपके जिस फोटो की पूजा करता था उसमें कुछ फर्क है क्या ? तब बाबा ने कहा, " अरे पगले, फोटो तो वही है। जिस प्रकार पीलिया रोग के रोगी को जगत् पीला दिखाई देता है उसी प्रकार साधक अवस्था में भी आभास होते है। इन आभासों का क्या अर्थ है यह समझना आवश्यक है, नही तो मृगमरीचिका जैसी अवस्था होती है। पिछले ढ़ाई सालो से यह जो मेरी तस्वीर है वही आज भी है। उसमें बदलाव तब होगा, जब जगत् में बदलाव होगा। और यह बदलाव तुमने किया तो ही होगा। नही तो मैं बाबा और तुम काबा ऐसे दो पागल पीर जन्म लेकर व्यर्थ हो गए ऐसा होगा। क्योंकि जिस समय मैं था तब यह जगत् मुझे पागल कहता था अब तुम्हें ज्यादा सयाना कहेगा। इसलिए हमेशा मौन रखना चाहिए। भंग पीए जैसे बकना नहीं चाहिए। भांग (मांग) जगतजननी के बालों में शोभा देता है, उसके सिर के बाल के मध्य में दो बराबर हिस्से करता है। एक दांयी तरफ और एक बांयी तरफ। इसका शोध बाद में लगेगा। तब तक 'मौन' रखो। 'मौन का मतलब बोलना बंद करना ऐसा नहीं है। 'सच बोलना और सच्चाई से आचरण करना' इसका मतलब 'मौन' है। अब ये बाते बहुत हुई है। मेरे समय में भी ऐसे खाली बैठने वाले भक्त बहुत थे। भक्ति को बाजू में रख कर, 'ब्रह्म' का मतलब क्या है, स्वर्ग का मतलब क्या है, ऐसे सवालों से मुझे पागल कर देते थे। यदि मैं उन्हें ब्रह्म का मतलब समझा देता तो भी उस पर वे दूसरा सवाल पूछते कि ब्रह्म 'कहाँ' है ? इसलिए ऐसे खुद को ज्ञानी कहने वाले लोग जब मुझे मिलने आते थे तब मैं ही उनके बारे में यह कहता था कि 'देखो यह ब्रह्म आया है। दर्शन करो तो उसका बहुत लाभ होगा !"

इस प्रकार बाबा के समझाने के कारण मैं कार्य का मतलब समझ गया। अब कार्य की स्थापना करना याने क्या करना है यह सवाल मेरे सामने आया। तब बाबा ने मुझे कहा, " तुम्हारे पिता ने तुम्हारा नाम 'दत्ता' रखने की अपेक्षा 'गधा' रखा होता तो वह अधिक शोभा देता। तुम्हारा नाम बड़ा लेकिन तुम्हारी अकल शून्य है। जिस कार्य के बारे में तुम कहते हो उस कार्य को नवनाथों द्वारा स्थापन किए ढाई हजार साल हुए है। बाद में काल के महिमा का अनुभव मिला। ऐसे समय वह कार्य फिर से उदित (शुरू) करना आवश्यक होता है। इसलिए मेरे समय में आनेवाले लोगों को इस कार्य का मतलब समझाने के लिए मैने धुनी में लकड़ी जलाकर उसकी राख 'उदी' के रूप में लोगो को देना शुरू किया। मतलब यह उदी ग्रहण करने से जगत् जागृत होगा मतलब 'उदित' होगा। यही क्रिया अब तुम्हें करनी है। जिस कार्य की स्थापना नवनाथों ने ढ़ाई हजार साल पहले की थी वही कार्य फिर से करना है। मनुष्य को जन्म एक ही बार मिलता है उसकी पुनरावृत्ती होने का मतलब जन्म नहीं है। इस विजयादशमी को कार्य शुरू करो, कार्य की स्थापना नहीं करो। विजयादशमी के दिन हम नवरात्री की समाप्ती करते हैं। विजयादशमी को विजय दसों दिशा में होने दो।' ऐसी आज्ञा होने के बाद विजयादशमी (दशहरे) के शुभ मंगल दिन को श्रीसाई आध्यात्मिक समिती इस नाम से कार्य शुरू किया।

समिति का कार्य विजयादशमी को शुरू हुआ। इस कार्य का ब्रीद (ध्येय) क्या है इसके बारे में परम पूज्य बाबा ने यह बोध किया कि, "सर्वाभूती (सब में) एक ही आत्मा है, इस तत्व के अनुसार हम सबको आचरण करना आवश्यक है। समिती से मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए जो कोई आएगा उन सब भक्तों के लिए समिती का द्वार 'हरी का मुक्त द्वार' होना आवश्यक है। जगत् में जो धर्म और धर्माचरण लोग कर रहे हैं उनमें ' यह बेहतर है, यह गलत है ' ऐसा भाव नहीं होना चाहिए। इसलिए पहले जमाने के अनुसार अनुकरण करना योग्य नहीं है। मेरा स्थान दर्शन के लिए सबको खुला होना आवश्यक है। मतलब पूजाघर या अन्य प्रकार से जैसी ईश्वर की स्थापना की जाती है वैसी स्थापना मुझे नहीं चाहिए। इस जगत् का जो मनुष्य आएगा तो वह यदि खुले मन से न आया तो भी

उसके लिए ईश्वर संकुचित नहीं होना चाहिए। जगत् के लोग दुखी हैं उनके दुख के हिस्सेदार बनो। केवल 'वारकरी' (विठ्ठल के दर्शन के लिए यात्रा करनेवाला) मत बनो। वारकरी (विठ्ठल के दर्शन के लिये यात्रा करने वाले) लोगों का कुलधर्म महिने में दो बार यानि एकादशी और द्वादशी इन दो दिनों में ही होता रहता है। इस समय कुल की शान के अनुसार आचरण करना, दानधर्म करना ऐसी परंपरा थी लेकिन अब वह परंपरा नहीं रही है। आजकल ये लोग ईश्वर के नाम पर खाते रहते हैं। इसलिए आनेवाले भक्त का दुख कम कैसे होगा इसका विचार प्रथमतः करना आवश्यक है। उन्हें यदि केवल गीता ही बताई गई तो वे आगे (अंगाई गीत) लोरी गाएंगे इसकी अपेक्षा लोगो को आसान से आसान मार्ग सूचित करो। इस प्रकार कार्य की रूपरेखा बनाओ। शास्त्रों में बताया गया है कि, कुलोपासना, कुलधर्म, कुलाचार और मातृदेवोभवः, पितृदेवोभवः, आचार्यदेवोभवः ये सारे कर्त्तव्य अनजाने में होते रहना आवश्यक है। हमें मिष्ठान खाने की वासना हुई तो वह कुलधर्म नहीं होता है। ईश्वर की प्राप्ति की भूख लगकर कुलधर्म करना आवश्यक है, वह ईश्वर को उसके दिए वचन के बारे में बताता है और हमें जागृत करता है।"

ऊपर बताए अनुसार मार्गदर्शन होने के बाद मेरा निराश मन गुरूकृपा से किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो गया। मैं आने वाले लोगों को जीवन का श्रीगणेश यानि जीवन का आरंभ कैसे करना होता है इसकी सीख मुलाकात द्वारा समझाने लगा। उससे मंदिर के पास के दुकान के नारियल और हम जो श्रीफल देते हैं वे नारियल इनमें क्या फर्क है यह लोग समझने लगे। मंदिर के पास के दुकान का नारियल और हम जो 'श्रीफल' देते हैं वह नारियल इनका अर्थ क्या है ? भक्त ने ईश्वर के सामने नारियल रखा तो पुजारी वह नारियल भक्त को वापस देते हैं। भक्त और पुजारी इनमें इस प्रकार की लेनदेन वैसी ही जारी रहती है और उसके कारण सैकड़ो नारियल व्यर्थ जाकर भी भक्तों को सुख शांती की प्राप्ति नहीं होती है। जब हम ईश्वर के सामने नारियल रखते हैं तब वह नारियल ईश्वर को अर्पण करने के लिए हममें भक्ति और श्रद्धा का संगम होना आवश्यक है। लेकिन इसके विपरीत इसमें बहुत से लोगों की भावना

ऐसी होती है जैसे वह नारियल उन ।र रहा ईश्वर का ऋण है। वैसे ही पुजारी जो नारियल भक्त को देते हैं उस नारियल का भक्त को ईश्वर का प्रसाद समझकर स्वीकार करना आवश्यक है क्योंकि उसके बाद हमें उस प्रसाद की साद(पुकार) इस तरह ईश्वर से आशीर्वाद की प्राप्ति होती है। यह क्रिया त्रिपुटी (तीनो की एकरूपता) है और इसमें ईश्वर, पुजारी और भक्त इन तीनों की इच्छा एक होना आवश्यक है। अन्यथा ईश्वर को कोसने वाले बहुत लोग होते हैं।

साई अध्यात्मिक समिती केन्द्र में, विपत्ती के कारण आए भक्त को अपना दुख बताने के बाद उसे जो श्रीफल (नारियल) दिया जाता है उसे पहले अभिमंत्रित करना आवश्यक होता है। नारियल केवल पानी से गीला करने से हमारा कर्त्तव्य पूर्ण नहीं होता है। वास्तव में इस दिन से हमारे कर्त्तव्य का आरंभ होता है। जो कोई दुखी है वह जब अपना दुख निवारण नहीं कर सकता तब हमारे यहाँ आकर अपने दुख के बारे में बताता है। उस समय भक्त को यहाँ से दिए गए श्रीफल का ग्यारह हफ्ते पूजन करना, इतना ही उस श्रीफल का अर्थ नहीं है, तो जब भक्त के मन में यह भावना निर्माण होगी कि मैने इस 'प्रसाद' को स्वीकार किया है तभी उस भक्त को उसकी इच्छा से भी अधिक सुख की प्राप्ति होगी। इसलिए केन्द्र पर जो नारियल देते है उसे 'श्रीफल' कहते है। श्रीफल मे दो 'श्री' का अतंर्भाव है। एक श्री यानि 'लक्ष्मी' यह प्राप्त हो इसके लिए भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है और दूसरी 'श्री' यानि सरस्वती मतलब ज्ञान है जो ज्ञान साधक को होना आवश्यक है। इसके अलावा पहली 'श्री' यानि 'प्रपंच' और दूसरी 'श्री' यानि 'परमार्थ' ऐसी अमानत बिना मांगे भक्त को प्राप्त होती है। ऐसा यह कार्य अपरोक्ष पद्धती से जिस माध्यम से जारी रहता है उसका अर्थ 'श्रीफल' है।

इस कार्य में मूल विषय कर्म है। जब कर्म अनुकूल होता है तब सुखों की प्राप्ति होती रहती है लेकिन जब कर्म प्रतिकूल होता है तब जीवन दुखी और अशांतीमय होता है। ऐसे समय प्रतिकूल कर्म यानि कौन सा कर्म घटित हुआ है? वह हमारी समझ में नहीं आता और फिर ऐसी कल्पना

बुद्धि में निर्माण होती है कि हमने पिछले जन्म में कुछ पाप किया है। ऐसे समय कर्म का शोध लेना अत्यंत कठिन काम है। एक बार धर्म का खब्त (पागलपन) नहीं बल्कि मूल (जड़मूल) हमारी समझ में आ सकता है लेकिन कर्म का क्या मतलब है, उसकी क्रिया यानि दुख हमारे हिस्से क्यों आया है यह समझना बड़ा कठिन है। यदि यह समझ आया तो जो प्रतिकूल कर्म है वह अनुकूल होना इसका अर्थ सुख है ऐसा कह सकेंगे। यह कर्म मीमांसा जो पहले औदुंबर में बताई थी, उसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे भक्तों के जीवन में अध्ययन करने के लिए प्राप्त हुआ। कर्म मीमांसा और उसकी महती हमारे जन्म के पहले ही लिखी गई है उसके लिए क्या उपाय है यह समझना आवश्यक है।

24. विमोचन दीक्षा, महारूद्रस्वाहाकार

विमोचन दीक्षा और महारूद्रस्वाहाकार इनमें प्रथम 'वंशविमोचन' इस साधन का विचार करना आवश्यक है। घराने के तीन महत्वपूर्ण दोष यानि संपत्ती, विद्या और संतति इनका नाश होने के लिए जो कर्म कारण होता है उस कर्म के दोष, ' विमोचन ' इस साधन से निवारण होना आवश्यक है यह ज्ञान मुझे हो गया। जो भक्त मार्गदर्शन के लिए आते हैं उनके घराने में उपर लिखे दोषो में से एकाध दोष धारण हुआ होता ही है यह भी मेरी समझ में आया। इस प्रकार के दोष आज सबमें है, इसका कारण यह है कि पिछले सौ सालों से हमारे आचार विचारों का कोई ठिकाना नहीं रहा है। जात या धर्म केवल बताने के लिए ही बाकी रहे हैं। यदि मनुष्य के आचरण में ईश्वर और धर्म आया होता तो इन दोषों की मुक्तता हो सकती थी। जीने के लिए आवश्यक ऐसा जो सत्वगुण है उसकी आज कमी है। वास्तव में वह धर्म बोलने में और आचरण में होना आवश्यक है। निसर्ग के पक्षी और प्राणी अपने अपने धर्म के मुताबिक चलते है परमेश्वर ने हमें बुद्धि दी है, इसलिए हमे अपने जीवन का नाश करना उचित नहीं है। समाज हमारी प्रशंसा करे इसलिए बाहर जाते समय हम अच्छे कपड़े परिधान करने की दक्षता लेते हैं लेकिन हमारे घराने में जो संतति जन्म लेती है वह निरलस और सर्वगुणसंपन्न हो इसलिए जो करना आवश्यक है उसका ज्ञान हमें नहीं है। जन्म लेने के बाद उस जीवन की प्रगति के लिए हम ईश्वर से प्रार्थना करते है लेकिन जो जीव जन्म लेने वाला है उसके माता पिता खान जैसे होते हैं और अगर जीव को जन्म देनेवाली मातापितारूपी खान की मिट्टी में ही आचार विचार के दोष होंगे तो उनसे वैसी ही संतति निर्माण होगी। जीव में सुधार होना आवश्यक है ऐसा शास्त्र जो कहते हैं, वह सुधार जीव के जन्म होने के बाद कैसे होगा ? समाज में जो डॉक्टर या अलौकिक वैज्ञानिक हम देखते हैं उनके माता पिता ने उनके जन्म के समय कैसा आचरण किया था जिससे उनके संतान डॉक्टर या वैज्ञानिक हुए यह समझ लेना आवश्यक है।

आज जो जगत् है उसमें बदलाव नहीं हुआ है, बदलाव हम मानवों में हुआ है। समाज में जो जो नजर आता है उसमें सुधार होना आवश्यक

है ऐसा हम कहते हैं लेकिन समाज की ऐसी रचना क्यों हुई है ? अच्छे समाज के लिए जो नींव आवश्यक होती हैं उस नींव के लिए औरों के पैरों तले क्या है यह न देखकर पहले खुद के पैरों तले क्या है यह देखना आवश्यक है। क्योंकि उसी मिट्टी से आगे संतति निर्माण होती है। और यदि संतति के जन्म के समय संतति में कुछ कम ज्यादा दोष निर्माण हो गए तो जीने का साधन ऐसी जो संपत्ती है उसका लाभ होकर भी उस संपत्ती से समाधान की प्राप्ति नहीं होती।

समाज में विपत्तियां होती रहती हैं, लेकिन ये विपत्तियां कितने काल तक होती रहेंगी ? ये विपत्तियां केवल हमें जागृत करने के लिये होती हैं। लेकिन आज संपत्ती का मोह इतना बढ़ गया है कि अशिक्षित मनुष्य से लेकर सुशिक्षित मनुष्य तक किसी को भी तृप्तता नहीं है। इस मोह के कारण कैसे जान जाती है और कैसे जी लेते हैं यह स्पर्धा जारी है। अगर स्वयं में ही शांती नहीं है तो विश्व में शांती कैसे होगी ? 'शांती' इस विषय पर व्याख्यान देने वाले, अपना स्वयं का कर्त्तव्य क्या है यह भूल कर व्याख्यान और संभाषण में जो अन्य विषय बोलते हैं उसमें प्रमुखतः औरो की निंदा ही होती है। 'दया क्षमा शांती' ये शब्द केवल बोलने के ही लिए रह गये हैं। इसका कारण यह है कि जन्म का गणित गलत हो गया है। और वह गलती आज हमें भुगतनी पड़ रही है और यदि इस परिस्थिति को नजर अंदाज किया तो आगे भी हमे जीना मुमकिन नहीं होगा। आज आप संपत्ती प्राप्त करेंगे लेकिन बाद में यह संपत्ती आपके विनाश का कारण बनेगी यह दोष जड़ पकड़ रहा है।

जो हमारी नींव देवधर्म पर आधारित थी उसकी जागृती हो और सबको सुख का लाभ हो इसलिए इस समिती का कार्य बाबा ने शुरू किया है। परम पूज्य बाबा कोई वैज्ञानिक नहीं थे लेकिन इस सीधे साधे फकीर ने, "इस संपूर्ण जगत् का रक्षण होगा" यह विश्वास सबको दिया है और दे रहे हैं। इस जगत् की यही रीत है कि खुद को सबसे सम्मान मिले इसलिए जगत् की निंदा करते रहे। इस जगत् में साधु संत आते हैं और जाते हैं। आते समय वे जगत् का रक्षण करने आते हैं और स्वयं के जीवन

में जगत् के रक्षण के लिए प्रयत्न करते हैं और उनके जाने के बाद उनका वास (वास्तव्य) इस भूतल पर अखंड़ रहता है इसलिए हम सब का रक्षण होता है।

बताए गए जीवन के दोष पचहत्तर प्रतिशत मानवों में होते हैं और जिन्हें सुख की प्राप्ति हुई है ऐसे बाकी के पच्चीस प्रतिशत लोग होते हैं जिन्होंने दुखी मनुष्यो के प्रति हमदर्दी से देखना आवश्यक है लेकिन वे अपना द्वार बंद रख कर केवल ऐसा जो कहते हैं कि इस सामनेवाले जगत् ने अपनी आंखो पर देवधर्म की पट्टी बांधी है यह गलत है। मनुष्य के जो दोष हैं उनका निवारण हो ऐसा प्रबंध धर्मशास्त्रों ने किया है। लेकिन उन दोषों का निवारण करने वाले लोग होना आवश्यक है। इसलिए अपना दुख लेकर जगत् की ओर भागने से यह दुख दूर नही होगा। यदि हमने सच्चे मन से ईश्वर का कुछ ना कुछ स्मरण किया होगा तो हमारा विनाश टल सकेगा और योग्य मार्गदर्शन करने वाले साधक से हमारी भेंट होगी। लेकिन यदि हम औरों पर निर्भर रहे तो सब जगह, जो बाधक, लोगों की प्रतिक्षा करते रहते हैं वे हमारे दुख और अज्ञान के कारण हमारी बली चढ़ाएंगे। इसलिए इस मार्ग में आने से पहले ही 'सज्ञान' हो जाईए और उसके बाद इस मार्ग पर चलिए। नही तो मार्ग की समझ न होने के कारण आपका दुख, परिवार और वंश इनका विमोचन होने के बजाय आपका ही विनाश हो सकता है।

उस समय जो कोई मार्गदर्शन के लिए आते थे उन्हें, निराकरण मायने क्या है यह संपूर्ण ज्ञान देकर मैं बताता था कि समय आने पर, मतलब परम पूज्य बाबा की जब आज्ञा होगी तब, मैं आपको निराकरण बताउंगा। उस समय पूना में रहने वाले वाई गांव के वेदशास्त्र सम्पन्न गोगटे गुरूजी जो यहाँ केन्द्र पर आते थे उनसे मैने वंशविमोचन की विधि कैसी करनी होती है इसके बारे में विचार विनिमय किया। तब मैने उन्हें यह बताया कि, मेरा यह विषय क्या है ?, इसमें कौन सी विधि आवश्यक है या कौनसा प्रायश्चित लेना आवश्यक है ? तब उन्होंने मुझसे कहा कि 'आप मुझे विचार करने के लिए एक महिने का अवसर दीजिए।

इस काल में मैं पूना के अन्य ज्ञानी लोगो से विचार विनिमय करूँगा। उसके बाद हम फिर मिलेंगे। "फिर बाद में 'वंशविमोचन' की रेखाकृती इस प्रकार बन गई कि इसमें प्रमुख आह्वाहन ईश्वर का करके उसके बाद पूजा अर्चना और हवन आदि विधि होंगे। घराने में जो दोष है उनके लिए संकल्पयुक्त प्रायश्चित हवन करना है जिसमें सप्त पितृ और मातृघराने के पूर्वजों के नाम का उच्चार करके उनके लिए तिल और घृत की आहूती देकर हवन करना है और फिर पूर्णाहूती से समाप्ती (समापन) करने से वंशविमोचन की यह विधि संपूर्ण होती है। इस विधि के समय जो भक्त उपस्थित रहेंगे उन्होने प्रायश्चित के संकल्प का उच्चार करना आवश्यक है।

यह विधि करने के बाद उन आत्माओं को सद्गति प्राप्त होती है। लेकिन इसमें आत्माओं की मुक्तता, उसके वंशजों के आचार विचारों पर निर्भर है। केवल वंशविमोचन का संकल्प लेने से ही आत्माओं की मुक्तता होगी ऐसा अगर कोई सोचे तो तपस्या करने वाले भगीरथ 'पागल था' ऐसा कहना पड़ेगा। वंशविमोचन के विधि के अनुसार का पहला हवन कल्याण में हाजीमलंगजी के पहाड़ पर हुआ। इस प्रकार के पांच हवन वहाँ हुए। इसका कारण अध्ययन करने योग्य है। वह कारण यह है कि इस विधि से दोष और कर्म इनका विमोचन होने के बाद उस विधि के दोषों से अन्य किसी को भी तकलीफ ना हो, क्योंकि ये विधि हम पहली बार कर रहे थे और ये विधि करते समय दोषों का जो उच्चार करना होता है वह उच्चार रहने की वास्तु में (मकान में) नहीं होना चाहिए, इसलिए कुछ विधि ऐसी होती है जो वास्तु के (मकान के) बाहर करनी आवश्यक होती है । इस प्रकार हाजीमलंग के पहाड़ पर पाँच हवन होने के बाद मुंबई, पूना और गोवा इन तीन केन्द्रो पर वंशविमोचन की हवन विधि की गई। पहला हवन पूना में, उसके बाद मुंबई में और उसके बाद गोवा में इस क्रम से हवन किये गए। क्योंकि ये विधि तीन सौ साठ मील के कार्य क्षेत्र में होने आवश्यक थे। इस पृथ्वी ने तीन सौ साठ अंश में जन्म लिया है। इस पृथ्वी के बाहर आसमान में जो रिक्त स्थान (Vaccum) है उसमें प्रथमतः आत्माओं का प्रवेश होता है और बाद में आत्माएं अपना स्थान प्राप्त करती हैं। परलोक के पांच लोकों में इन आत्माओं को स्थान प्राप्त होता है।

इसलिए यह वंशविमोचन की विधि मकर संक्राती के बाद की जाती है और इस विधि के लिए ग्रहों का अनुकूल होना आवश्यक है। प्रथमतः जब यह विधि की गई तो पृथ्वी की कुंडली का विचार किया गया क्योंकि इस विधि के लिए गुरू सिंह राशी में होकर पृथ्वी की राशी में शनि का होना आवश्यक होता है। इस प्रकार इस विधि का तीन सौ साठ साल के बाद प्रारंभ हुआ क्योंकि ऐसे ग्रहों का योग तीन सौ साठ साल के बाद आता है। जगत् में बहुत से तीर्थ क्षेत्र हैं और वहाँ बहुत से ज्ञानी पंडित है लेकिन कौनसी विधि इस जगत् के लिए हितकारक है यह देखना भी आवश्यक होता है। वैसे तो यह विधि हर महिने भी की जा सकती है लेकिन उसके हेतू अलग होते हैं। बहुत से लोग ऐसे पंडितो के वंश में जाते है क्योंकि इह जन्म में संतति ना होना यह दोष हीन लगता है। इसलिए ये लोग तीर्थ क्षेत्र जाकर बताई गई विधि करते रहते हैं। और उस विधि से, संतति हो इस इच्छा की पूर्णता हो जाने के बजाय वे विपत्ती घर ले आते हैं। कुछ प्राप्त हो ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक है लेकिन जो इच्छा ईश्वराधीन है उसकी पूर्णता के लिए ईश्वर को प्रसन्न कर लेने के बजाय वासना के वश में होकर तीर्थ क्षेत्र जाकर विधि करके लोग विपत्ती घर ले आते हैं। और ऐसी गलती हो जाने के बाद अगर वह भक्त गुरूमार्गी हुआ तो गुरूमार्ग में भी वह अपने उन दोषों से मुक्त नहीं हो सकता।

इसलिए यह वंशविमोचन विधि केन्द्र में आए हुए तथा आगे भी आने वाले भक्तों के लिए हर साल करके उस विधि की समाप्ती इक्कीस साल के बाद की गई। उसके लिए, गुरूआज्ञा के अनुसार मैं प्रत्येक पूर्णमासी के दिन तीर्थ क्षेत्र श्रीनरसोवाड़ी में जाकर श्री रूद्रदेवता के प्रति होम हवन करता था। इस तरह ग्यारह पूर्णमासी के दिन होम हवन करने के बाद जब यह विधि सिद्ध हुई तब महारूद्र स्वाहाकार का आह्वाहन किया गया। उसके लिए सब भक्तों को आमंत्रण दिए गए क्योंकि केवल पर्याप्त धन है इसके कारण यह विधि नहीं कर सकते हैं, इस स्वाहाकार में जिस शक्ति को आह्वाहन करना होता है उस शक्ति के आने के पहले भक्तों को दीक्षा देकर उनका काया वाचा मन सिद्ध करना आवश्यक है क्योंकि वह शक्ति भूतल पर आने के बाद वह हर एक में अंशरूप में रहना आवश्यक है।

जगत् मे शांति हो इसलिए यह विधि की जाती है। लेकिन यह करने में क्या क्या परहेज है यह समझ में ना लेकर यदि यह विधि की गई तो जगत् को शांती प्राप्त हो जाने के बजाय जगत् में अशांती छा जाती है।

इस विधि के संदर्भ मे वंशमें कर्मविमोचन और ऋणमोचन ये विधि है। हमारे घराने में वंश जन्म लेता है। इस जन्म प्राप्ति के समय यदि उसे वंश के दोषों का रोग लग गया तो उसे वही परंपरा आगे कर्म करके भुगतनी पड़ती है और इन दोषो के रोग का निवारण हुए बिना संतति संपत्ती आदि सुख प्राप्त होने की अपेक्षा वे सुख प्राप्त न हो, यही बेहतर होता है। संतान के जन्म के पहले यदि घराने के दोषों की मुक्तता नहीं हुई होगी तो संतान के जन्म के बाद संतान मे कमी निर्माण होती है। ऐसे दोषों के कारण यदि विद्या (शिक्षा) नहीं, संपत्ती नहीं, ऐसी परिस्थिति प्राप्त हुई तो ऐसे लोग कैसे जी सकेंगे ? संतान ना होने का दोष जानने के लिए डॉक्टरी शास्त्र उपाय कर रहे हैं और आविष्कार भी कर रहे हैं लेकिन उसमें यश की प्राप्ति कितनी है ? केवल दस प्रतिशत ! तो क्या इससे जगत् सुखी होगा ?

आनेवाले भक्तों को वंशविमोचन के लाभ की प्राप्ति करा देने के बाद उन्हें दीक्षा का लाभ प्राप्त करा देना भी आवश्यक है । इसके कारण बहुत से भक्तों का यह कार्य कैसे होता है इसके बारे में आश्चर्य हुआ। विमोचन का दीक्षा से क्या संबंध है ऐसा सवाल उनके पूछने पर मैने मुलाकात द्वारा उसके बारे में समझाया कि "जो कोई जन्म लेता है उसका काया वाचा मन रिक्त नहीं होता। उसके देह में कर्मरूप दोष होते हैं और इन कर्मो के अटकाव के कारण उसके देह की गति में कम ज्यादापन आता है जिसके कारण सुख प्राप्त होकर भी उसे मनःशांती का लाभ नहीं होता। शांती और सुख इनके माध्यम मतलब काया वाचा मन इन तीनो की गति अलग अलग होती है। मन की गति अधिक है और काया की गति कम यानि धीमी होती है। ऐसे समय देह का गतिमान होना महत्वपूर्ण है। इसलिए पहले विमोचन और बाद में दीक्षा इनके कारण धीरे धीरे प्रगति होकर बाद में गति यह अवस्था प्राप्त होती है। इसमें तीन विमोचन और दीक्षा इनका देहिक अवस्था से संबंध होता है। आगे की दीक्षा आत्मा के लिए होती है। जो

आत्मा देह में धारण हुई है उसे योग्य मार्ग से आकार प्राप्त होना आवश्यक है। देहिक अवस्था और आत्मिक अवस्था, इसका मतलब मानव है। बहुत से साधक केवल स्थूल देह का विचार करते हैं। मतलब विशिष्ट संख्या में जाप, पोथी के पाठ या कुछ तीर्थ यात्राएँ करते हैं । मतलब देह ने या आत्मा ने जन्म लेते समय कुछ पाप किए हैं यही विचार करके ये लोग साधना करते हैं। इसलिए गुरू का कर्त्तव्य, देह और आत्मिक इन दोनो अंगो से युक्त होना आवश्यक है। इन दोनों अवस्थाओं से जीवन प्राप्त होता है, इसमें एक ही अवस्था की प्रगति की तो अनजाने में दूसरी अवस्था की अधोगति भुगतनी पड़ती है। इसलिए गुरू यह माध्यम माता समान होता है। जन्म दिए बालक की देखभाल जैसे माता करती है वैसे उस माता की तरह, गुरू का होना आवश्यक है।

इन तीस सालों मे अनेक भक्त आए और गए। उनमें से किसको क्या मिला? भक्तों की ऐहिक प्राप्ति क्या हुई इसकी मैने कभी भी पूछताछ नहीं की। हमारा कर्त्तव्य आगे जाना है। पीछे देखना या पीछे बोलना नही है। जो आया उसे गुरू कृपा से कुछ ना कुछ प्राप्त हुआ ही है। लेकिन कृपा हुई है ऐसा कहनेवाले कितने लोग है इसका भी विचार मैने नहीं किया। हमने अपने कर्त्तव्य के लिए सदैव सचेत रहना इसका अर्थ कृपा के लिए पात्र होना है । इन तीस सालों में मेरी संपूर्ण हिन्दुस्तान की यात्रा हुई तब अनेक पवित्र स्थान के दर्शन हुए । इस कार्य के लिए जिसका लाभ होना आवश्यक था, और वह जहाँ जहाँ से प्राप्त हो सकता था, उन पवित्र स्थानों के दर्शन करने मैं गया था और इस भेंट से मुझे क्या प्राप्त हुआ तो हमारी साधना, जिससे पुरूषार्थ की प्राप्ति होती है। इस त्रिभुवन में तैंतीस करोड़ देवता है लेकिन अब उनमें से कितने देवताओं का देवत्व बाकी रहा है यह सवाल है। बाकी के सब हमारे जैसे ही केवल नाम के हो गए है, मतलब हम और वे केवल नाम के है, जिनका उपयोग खुद के लिए तो नहीं है और औरों के लिए कहेंगे तो शर्म आएगी ऐसी आज स्थिति है। इसलिए ढाई हजार सालों के बाद नवनाथों ने 'साईनाथ' का नाम अजरामर किया है ।

25. ॐकार की सिद्धता-
श्री पंतमहाराज जी से भेंट

निसंदेह 'मानव' और 'ईश्वर' इनकी पहचान सबको है लेकिन निश्चित रूप से किसे 'ईश्वर' कहना और किसे 'मानव' कहना यह विवाद है। यह विवाद सुलाझाना मुमकिन नहीं है यदि जगत् का अंत हुआ तो भी यह विवाद सुलझ नहीं पायेगा क्योंकि ज्ञानी कहते हैं कि ईश्वर नहीं है और अज्ञानी कहते हैं कि 'ईश्वर' है। इसमें दोनो ओर सत्य है। ज्ञानी कल्पना करके 'ईश्वर नहीं है' ऐसा कहते है मतलब उनके अनुसार 'ईश्वर' यह कल्पना है सत्य अवस्था नही है। जो अज्ञानी है वह अन्धविश्वास से कहते हैं कि 'ईश्वर है और उसकी व्याप्ति संपूर्ण जगत् में हैं'। इस विवाद से सच और झूठ साबित करने के परिश्रम करने के लिए ज्ञानी और अज्ञानी ये दोनो तैयार नहीं हैं। ज्ञानी को यह ज्ञान है कि यदि ईश्वर है ऐसा कहेंगे तो वह साबित करने के लिए संपूर्ण जिंदगी भी पर्याप्त नहीं है। इसलिए ईश्वर नहीं है ऐसा कह कर अपना काम हो गया ऐसा उन्हें लगता है और इसके कारण अज्ञानी लोगो की आलोचना करना इतना ही पढ़े लिखे लोगों का कार्य हो गया है। लेकिन सवाल यह है कि ज्ञानी किसे कहे और अज्ञानी किसे कहें ? यह सवाल संपूर्ण जगत् में है। मनुष्य कितना भी बड़ा, श्रेष्ठ और ज्ञानी हो गया तो भी उसके 'मन को शांती नहीं है' ऐसा संपूर्ण जगत् कह रहा है। 'विज्ञान' से कुछ प्राप्त किया गया तो भी आखिर में 'मन' इस अवस्था का विचार करना आवश्यक है। मन को शांती की आवश्यकता है। जिससे तर्क वितर्क निर्माण होते हैं ऐसा विज्ञान मन को नहीं चाहिए। आज मनुष्य, मनुष्य का शत्रु बन गया है। इसकी अपेक्षा आज 'मन' यानि 'मानव' और ' ईश्वर यानि शांती' यह प्राप्ति करनी है। इसके लिए आवश्यक साधन सेवा हम सबसे होकर सबको सुख शांती समाधान प्राप्त हो ऐसी ईश्वर की इच्छा है। यह मार्गदर्शन मैने आज तक सबको किया। इसमें महत्व का विषय यह है कि श्रीभैरवनाथ जी ने मुझे जो ॐकार साधना सिखाई थी उसका लाभ संपूर्ण जगत् को हो इसलिए प्रथमतः ॐकार सिद्ध होना आवश्यक है। इसलिए मुझे यह आज्ञा हुई कि,

' कामकाज' यानि 'ऐहिक प्राप्ति' बंद करो। मतलब सब केन्द्रों पर, मैं जो कामकाज करता था यह कामकाज अब सेवक करेंगे और उसके बाद ॐकार सिद्ध किया जाएगा।

मैं सब तीर्थक्षेत्रों के दर्शन करके आया था। उसका कारण यह था कि साधक को जब अनुभूती आती है तब उसके देह पर क्या असर होता है यह समझना आवश्यक था। इन तीर्थक्षेत्रों में प्रत्येक स्थान पर जिन जिन शक्ति का वास्तव्य था वे सब एक ही प्रकार की शक्ति ना होकर उन शक्ति में उत्पत्ति स्थिति लय ये त्रिगुणात्मक अवस्था होती है। हम जो सत्पुरूषों की 'समाधी' देखते हैं वहां के 'शक्ति' का वास्तव्य और मंदिर में स्थित शक्ति का वास्तव्य इनमें अंतर होता है। इन दोनो जगह शक्ति का जो अनुभव होता है उसका स्पष्टीकरण यह है कि मंदिर में पत्थर की या पंचधातु की मूर्ति होती है। उस मूर्ति की स्थापना के समय मंत्रों का जो उच्चारण किया जाता है उससे उस मूर्ति को 'देवत्व' की प्राप्ति होती है। बाद में समय समय पर उन मंत्रो से वहां की शक्ति की जागृती करना आवश्यक होता है। उन्ही मंत्रो का जाप तथा पठन करने से साधक को शक्ति प्राप्त होती है। इसलिए जो दुखी हैं उसे शक्ति का लाभ प्राप्त होने के लिए बहुत समय लगता है। इसका कारण यह है कि जिन मंत्रो का जाप तथा पठन करना होता है वे मंत्र त्रिगुणात्मक होकर उनका संख्यावाचक उच्चारण होना मतलब विशिष्ट दिनों में उस मंत्र की विशिष्ट संख्या का जाप पूर्ण होना आवश्यक होता है। इस संख्या को 'पुरश्चरण' कहते है। निश्चित काल तक पुरश्चरण होने के बाद हवन विधि करना आवश्यक होता है। हवन विधि करने के बाद ही मंत्र की सिद्धता होती है, मंत्रो का केवल उच्चार करते रहने से मंत्र सिद्ध नहीं होते हैं। हमें जो सैकड़ो मंदिर दिखाई देते हैं उन सब मंदिरो में देवत्व नहीं होता है। वहां देव की मूर्ति है इस समाधान में भक्त वहाँ ईश्वर की प्रतिक्षा करते हैं। यह एक अध्ययन मंदिरो में हुआ। दूसरा अध्ययन सत्पुरूषों के समाधी स्थान पर हुआ। इस जगह जिस शक्ति का अनुभव होता है वह शक्ति उन सत्पुरूष के काया वाचा मन इनकी त्रिपुटी (एकरूपता) से निर्माण हुई होती है। उस साधक ने जो उपासना, साधना की थी उस साधना से यह शक्ति

निर्माण होती है और समाधी के परिसर में उस शक्ति के वास्तव्य का अनुभव होता है यह शक्ति प्राप्त करने के लिए अन्य साधकों को साधना के थोड़े बहुत बंधनो का पालन करना आवश्यक होता है लेकिन यह शक्ति प्राप्त होने के बाद वे साधक इस शक्ति का उपयोग दुखी मनुष्य को सुखी करने के लिए कर सकते हैं क्योंकि उन सत्पुरूषों ने इस जगत् में जो जन्म लिया था वह खुद के लिए ना होकर जगत् के कल्याण के लिए था। लेकिन यह बात जगत् के विद्वान लोगों के समझ में न आने के कारण, वे ईश्वर से मन्नत माँगते हैं, बकरे की बली चढ़ाते हैं, या नवचंड़ी हवन करते हैं, लेकिन ऐसे सत्पुरूषों को प्रणाम नहीं करते है क्योंकि वे सत्पुरूष दिखने में हमारे जैसे आम आदमी लगते है। यदि उन्हें उनके जन्म के लक्षण के रूप में चार हाथ होते तो इन विद्वान लोगों ने उनके पीछे पड़कर उन्हें जीने नही दिया होता। लेकिन यदि ये संत हमारे जैसे दिखते हैं तो भी उनका जन्म हमारे समान नहीं होता है। उनका जन्म ईश्वर का अवतार होता है। समय समय के अनुसार जगत् में जो बदलाव आते हैं उसके अनुसार, उस समय ईश्वर ऐसे सत्पुरूषों के रूप में ईश्वरी अवतार स्वरूप जन्म लेते हैं। और जगत् में जो परिस्थिति होती है वह परिस्थिति बदलकर जगत् को सुख प्राप्त होने की योजना का कार्य करते हैं। ऐसे संत लोग असामान्य होते हैं, यह हम समझ नहीं सकते हैं। सैकड़ो साल ईश्वर है ऐसा हम कहते हैं और उनकी मनःपूर्वक पूजा अर्चना, उपासना या साधना करने के बाद हमें आशीर्वाद की प्राप्ति होती है लेकिन कुछ भी साधना ना करके भी इन संतो से जो कृपाशीर्वाद हमें प्राप्त होता है, उसकी जगत् को कीमत नहीं है। संतो से कृपा मिलती है और साथ, ही पिंड को आशीर्वाद प्राप्त होता है मतलब बाद में घराने के प्रत्येक पीढ़ी में जो वंश जन्म लेता है उसको केवल नामस्मरण करने से उसे उस आशीर्वाद का लाभ प्राप्त होता है। जगत् के लिए इतना प्रबन्ध करने के बाद इस सत्पुरूषों के समाधीस्थान सैकड़ों साल से आज तक जागृत हैं। आज भी उनकी अनुभूति और प्रचीति का अनुभव पाकर मुंह से यह शब्द निकलते है कि जगत् का दास बनने के लिए जन्म लेना चाहिए।

इन संतो के दर्शन के लिए जाने से संतो का जग क्या है यह समझ

आता है। अगर 'गाना' यह विषय हमने अध्ययन के लिए लिया तो उसमें क्या क्या है? प्रथमतः दिन मे जितने प्रहर होते हैं उन एक एक प्रहर के लिए कौनसी रागिनी है यह समझना आवश्यक है, फिर रागिनी की आलापी गाते समय निसर्ग में उनके कौन कौन से रंग हैं यह समझना है, उसी प्रकार संतो की उपासना प्रारंभ करने के बाद संतों की क्या महिमा है यह समझना आवश्यक है। प्रत्यक्ष ब्रह्म यह अवस्था अनेक योजन (सैकड़ो मील) दूरी पर है लेकिन संतो का संग प्राप्त होने से हमे "हम ही ब्रह्म है," यह अनुभव प्राप्त होता है, इसका कारण है संतो का धर्म, "दूसरों को अविलंब अपने जैसा बनाना" यह है। देव और देवत्व का मतलब क्या है इसके ज्ञान के लिए संत स्वयं तपस्या करते हैं लेकिन देवत्व का अनुभव वे हमे यानि दुनिया के लोगों को देते हैं। जैसे गाय चारा खाकर दूध देती है ऐसा यह अनुभव है, इसे ही 'अनुपम सुख' कहते हैं। केवल साधक को ही इस सुख की प्राप्ति का सच्चा अनुभव होता है। अन्य लोग केवल चटकारे चख कर ही इतना बड़प्पन दिखाते हैं कि मानो उन्हें परमेश्वर की प्राप्ति हुई है ऐसा औरों को लगे। उसमें भी कोई हर्ज नहीं है लेकिन जिस मार्ग के 'श्री' का(आरम्भ का) भी ज्ञान नहीं हुआ उसकी महती औरों को बताकर वे आनेवाले भक्तों को गुमराह करते हैं या उनमें अश्रद्धा निर्माण होने के कारण बनते हैं। यह भूत सवार होने से नित्य साधना बाजू मे रहती है और केवल महती गान, गाकर यही लोग भाग जाते हैं। इसलिए भक्तों का स्तर पहचान कर वैसा ही आचरण करना साधक के लिए आवश्यक होता है।

जब मैं अजमेर में ख्वाजा गरीबन् नवाज के दर्शन के लिए गया था तब उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि 'वापस जाने के बाद श्रीपंतमहाराज बालेकुंद्रीकर इन्हें जाकर मिलो। इस कार्य में उनका बहुत बड़ा योगदान है जिसके बारे में उनसे भेंट होने के बाद वे खुद बताएंगे।' उसी हफ्ते में मुंबई आने के बाद श्रीपंतमहाराजजी के दर्शन का अचानक योग आया। अच्छे योग आने के लिए निमित्त रूप में किसी व्यक्ति की आवश्यकता होती है, इसके कारण उस व्यक्ति को ऐसा लगता है कि यह योग मेरे कारण आया। फिर भी यह योग किसके कारण आता है यह निश्चित रूप

से बता नहीं सकते हैं। लेकिन इसके लिए, साधक को सदैव जागृत रहना आवश्यक है क्योंकि द्वार बंद करके बैठने से यह योग नहीं आता है या योग आनेवाला है ऐसा खत भी नहीं आता है। इन तीस साल में इस कार्य की ओर बहुत से लोग आए। वे जिनको लेकर आए वे अभी तक हैं लेकिन वे स्वयं बाहर हैं मतलब यह है कि योग किसी व्यक्ति के कारण नहीं आता है। योग पहले से ही लिखा हुआ होता है। हम उस योग के केवल माध्यम हैं। इस तरह मेरी श्रीपंतमहाराज जी से भेंट हुई। तब उन्होंने मुझसे कहा, '' बेटा मैं कब से प्रतिक्षा कर रहा हूँ। जगत् को जिसकी जरूरत है वह देने के लिये रूका हूँ। इसलिए आज यहीं वास्तव्य करो और जो पोथी साथ लाए हो उसका मेरे सामने बैठ कर पाठ करो। वह पाठ मुझे सुनने दो। आगे इस पाठ का क्या कार्य है, वह बाद में समझ आयेगा। '' श्रीपंतमहाराजजी की इस प्रकार की आज्ञा के अनुसार मैने दूसरे दिन से वहाँ श्रीनवनाथ पोथी के पारायण का (पाठका) प्रारंभ किया। इसके पहले मैने पोथी पढ़ी थी लेकिन उस समय, वहाँ श्री नवनाथ पोथी का केवल वाचन नहीं हो रहा है तो मेरे जीवन में कुछ अद्वितीय हो रहा है ऐसा मुझे अहसास हुआ। पोथी का पाठ करने में सात दिन लगते हैं और पाठ को 'सप्ताह' कहते है। पोथी का 'पारायण' और 'सप्ताह' में बहुत अंतर है। पारायण करने के लिए श्रीगुरू की आज्ञा की आवश्यकता होती है और मन में कुछ भी अन्य हेतु रखना गलत होता है। ' सप्ताह' भी एक सेवा ही है लेकिन सप्ताह में मन में अनेक हेतु होते है और ऐसे समय भक्त और परमेश्वर इनमें सेतू (पुल) बना कर भक्त का जीवन परमेश्वर से जोड़ने की आवश्यकता होती है तो ही भक्त का हेतु सफल होता है।

श्रीपंतमहाराज जी की आज्ञानुसार मैं नवनाथ पोथी का जो पारायण (पाठ) कर रहा था वह प्रतिदिन करते करते सात दिनों में पूर्ण हुआ। उस दिन वहां के पंडितजी के घर श्रीनवनाथ पोथी के पारायण (पाठ) की समाप्ति की विधि की। उस समय श्रीनवनाथ पोथी और श्रीपंतमहाराजजी के लिखे 'श्रीदत्तप्रेमलहरी' किताब इनका मनः पूर्वक पूजन किया तब श्रीपंतमहाराजजी ने यह आज्ञा दी कि, 'श्रीदत्तप्रेमलहरी ' इस किताब में ढाई हजार पद (काव्य) हैं। उनमें से तुम्हें जो योग्य लगेंगे उनके लिए,

योग्य धुन बना कर तुम उनका गायन करो। ' वास्तव में संगीत यह मेरा विषय नहीं था और ना ही है लेकिन, 'आज्ञा का पालन' यह हमारा कर्त्तव्य है इसके कारण किताब खोलकर एक एक पद के लिए धुन बनाकर पद गाने लगा। उस समय 'आरती अवधूता ' यह पद गाते समय अष्टभाव जागृत हुए यह अहसास हुआ। उस दिन मैंने दस पदों के लिए धुन बनाई। जब मैंने वे पद श्रीपंतमहाराजजी के सामने बैठ कर गाए तब श्रीपंतमहाराजजी की योग्यता मेरे समझ में आई।

किसी भी सत्पुरूष के बारे में वे 'अवतार हैं' इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक सत्पुरूष की सत्ता इस त्रिभुवन में अलग अलग होती है, यह तब मेरे समझ में आया।

श्रीपंतमहाराजजी के पद कहते समय मुझे यह एहसास हुआ कि श्रीपंतमहाराजजी के यहाँ 'शब्दब्रह्म' और 'ज्ञानब्रह्म' है, और श्रीदत्तप्रेमलहरी में जो पद है वे कहते और सुनते समय 'मन' इस अवस्था का एहसास होता है।

परम पूज्य बाबा की आज्ञानुसार मैं तीर्थक्षेत्र बालेकुंद्री में श्रीपंतमहाराजजी के यहाँ आया। पहले औदुंबर में जो ढ़ाई साल माधुकरी (भिक्षा) माँगी थी उसका अर्थ आज समझ आया। केवल मुख या हाथ इन्हीं माध्यमों द्वारा जगत् मीठा होगा, अर्थात हमारे शब्द और आचरण इनमें मधुरता होना आवश्यक है। जब मैं पांच घर माधुकरी (भिक्षा) मांगता था तब उसका अर्थ मेरे समझ में नहीं आता था। अब वह अर्थ मेरी समझ में आया जो इस प्रकार है कि पांच स्थानो का पांच कोषो से संबंध होता है और वे केवल विकसित होकर नहीं चलता है, तो इन कोषों का एकरूपत्व करके आरती कहने से नाद की प्राप्ति होती है।

'नाद' इसकी उत्पत्ति और उपपत्ति साधक को समझ लेना आवश्यक है। केवल 'नाद' कहने से विवाद उत्पन्न होता है। एक बर्तन दूसरे बर्तन को लगने से जो 'नाद' (आवाज) उत्पन्न होती है यह नाद विवाद का मूल

है यह समझ लेना आवश्यक है, लेकिन वास्तव में 'नाद' की उत्पत्ति 'ब्रह्म' से हुई है। और उस नाद की उपपत्ति, 'शब्द' है जो हम बोलते है वह शब्द 'वाणी' करके आता है मतलब पिंड में वाणी निर्माण होती है। अगर वाणी यह अवस्था हम समझ सके तो वाणी यह भी ब्रह्म है। हम जीते हैं उस जीवन का क्या मतलब है ? तो जो हमारे चारो ओर है उनको जिंदगी देना यह हमारे जीवन का मतलब है। जैसे एक दिया लगाने से आसमान में असंख्य दिये नजर आते हैं उस प्रकार हमारा जीवन निर्माण होना आवश्यक है। हमारे जीवन में ये दिये हमने प्रज्वलित करने चाहिए। और उसके लिए तेल या मिट्टी के तेल का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए बल्कि उसके लिए असीम भक्ति होना आवश्यक है।

26. करनी, बाधा, ताम्हन

भक्तों के दुखों के निवारण करने का कार्य इसी तरह जारी था। उसमें कुछ भक्त ऐसे दुख लेकर आते थे कि किसी ने मुझे 'करनी' की है इसलिए मुझे व्यवसाय व्यापार में (नुकसान) हानि हो रही है, कोई कहते थे 'मेरी बीमारी ठीक नहीं होती है' तो इसका मतलब किसी ने मुझे 'करनी' की है। लोग, 'करनी' 'जादूटोना' ऐसा कहते हैं लेकिन किसी को भी 'करनी' यह क्या प्रकार है इसका ज्ञान नहीं है। दुख आने के बाद लोग उस दुख का संबंध 'करनी' से जोड़ते हैं। करनी के लिए लोग तांत्रिक के यहाँ जाते है लेकिन वे जिस तांत्रिक के यहाँ जाते हैं उन्हे मंत्र का ज्ञान है या नहीं इसका विचार कौन करता है ? ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि यह माध्यम क्यों दिया है ? जैसे गाय को सींग होते हैं, वे केवल शोभा देने के लिए नहीं है तो उनसे गाय अपना संरक्षण खुद कर लेती है। लेकिन हमें बुद्धि प्राप्त होकर भी बुद्धि ना होने के जैसा ही बर्ताव हम करते हैं और ऐसे बर्ताव से खुद का नुकसान कर लेते हैं और ऐसी परिस्थिति का लाभ दुनिया के तांत्रिक उठाते हैं। उनके पास कोई दुखी आया, तो उसे ना समझने वाली बाते करते हैं। जो दुखी हैं वे ईश्वर पर नहीं करते इतना भरोसा तांत्रिक पर करते हैं इसलिए उस पर किसी ने 'करनी' की है यह बात उसे सच लगती है लेकिन इस बात का सच्चा ज्ञान उसे नहीं होता है। इसलिए मैने 'करनी' इस प्रकार का अध्ययन आरंभ किया। उसमें मुझे यह अनुभव हुआ कि 'करनी' यह प्रकार सत्य है। लेकिन वह करने के लिए बहुत धन की आवश्यकता होती है इसलिए जिनके पास खाने के लिए भी पैसे नहीं है उन्हें दूसरो का बुरा करने की इच्छा हुई तो भी वे क्या कर सकेंगे ? लेकिन जिन्हें लगता है कि उन पर 'करनी' की गई है, ऐसे दुखी लोगो से उन्हें 'करनी' से मुक्त कराने के बहाने तांत्रिक बहुत सारा धन लूटते हैं। ऐसे समय ' घर की मुसीबत क्या कम थी कि समधी ने घोड़ा भेज दिया ' इस परिस्थिति के अनुसार वे लोग तांत्रिक के घर के इतने चक्कर लगाते रहते हैं जैसे वहाँ कोई सुख की खान प्राप्त हुई है और उन्हें वहाँ से बहुत सुख प्राप्त होने वाला है। आखिर ये केवल पागलों का बाजार है और इससे तंग आकर मनुष्य आखिर ईश्वर को कोसता है। वास्तव में

इसकी अपेक्षा इन लोगों को, पांव में पहना जोड़ा हाथ में लेकर तांत्रिक को ही यह कहना आवश्यक है कि " मुझे किसी ने 'करनी' की है ऐसा नही है बल्कि तुम्हारी ही 'करनी' अगाध है और मुझे उसका ज्ञान ना होने के कारण तुम्हारा यह लाभ हुआ है इसलिए मैं तुम्हारे लिए यह जो जोड़ा लाया हूँ इसे अब स्वीकार करो। "

'करनी' यह जो प्रकार है उसमें पचहत्तर प्रतिशत 'बाधा' होती है और इस बाधा के कारण मनुष्य को तकलीफ होती रहती है। इसका शास्त्रीय कारण यह है कि, 'जिस आत्मा की इच्छा वासना बाकी रहती है ऐसी आत्माएं इह जगत् के लोगों से अपनी इच्छा वासनाओं की पूर्णता कर लेती हैं। लेकिन यह ज्ञान न होने के कारण बाधा की तकलीफ को हम 'करनी' कहते है। केवल मांत्रिक के मिलने से इस बाधा का निवारण नहीं हो सकता है क्योंकि जो 'बाधा' है उस आत्मा की इच्छा क्या है यह समझना आवश्यक है, जिसके कारण उन आत्माओं की इच्छा वासनाओं से आत्मा को मुक्ति मिल कर उन्हें सद्गति प्राप्त होती है। ये बाधाएं मनुष्य के देह में प्रवेश नहीं करती हैं लेकिन उनकी तकलीफ ऐसी होती है कि डॉक्टरी उपचार करने से भी 'रोग' क्या है यह समझ नहीं आता है।

ऐसे जो बहुत से लोग पीड़ित होते हैं उनके निराकरण के बारे मे मैंने परम पूज्य बाबा से पूछा क्योंकि एक भक्त को ऐसी ही बाधा की तकलीफ थी। मेरे उन्हे उसके बारे में बताने के बाद उन्होने कहा कि, "यह तकलीफ है ऐसा बहुतों ने बताया है लेकिन किसी ने भी इस तकलीफ से मुक्त नहीं किया है उल्टा सब केवल पैसे लूटते रहते हैं। इसलिए किस पर भरोसा करें ये समझ नहीं सकते हैं" उनका यह कहना सुन कर मैने उन्हे (भक्त से) कहा कि, " तुम दो दिन के बाद आओ ' तुम्हारी तकलीफ जरूर दूर होगी "। फिर इसके बारे मे मैने बाबा से प्रार्थना की कि " मुझे जो आत्माएं दिखाई देती हैं, उनके बारे मे मैं उनके संबंधित लोगो को बताता हूँ, लेकिन सामान्य मनुष्यों को यह दृष्टि नहीं होती है तो आप मुझे मार्ग बताइये कि जिससे इस जगत् को विश्वास आएगा "। तब परम पूज्य बाबा हँसने लगे और फिर उन्होंने कहा, ' ये जगत् विचित्र है। 'बाप दिखाओ, नहीं तो श्राद्ध

करो' ऐसे विचार का यह जगत् है। इस जगत् से मत डरो। यह जगत् की गति अलग है। इस जगत् को विश्वास दिलाए या नही दिलाए तो भी इस जगत् का मार्ग अलग है और हमारा मार्ग अलग है। इस जगत् के लोगों को किसी ना किसी तरह से केवल सुख की चाहत होती है लेकिन जिसे वे सुख कहते है वास्तव में वह दुख है और वैसा सुख माँगने के लिए यदि सयाने लोग भी आते हैं तो उन्हें 'सयाने' कैसे कहेंगे ? लेकिन कम से कम तुम्हारे समाधान के लिए मैं तुम्हे आशीर्वाद देता हूँ जिससे ये लोग हमारे मार्ग में कोई खामियाँ नहीं निकालेंगे। इसलिए इस पूर्णमासी के दिन सुबह स्नान के बाद मेरे सामने एक कटोरी में उदी रखो और पूजा करो। वह संपूर्ण दिन उदी की कटोरी मेरे सामने ही रहने दो और दूसरे दिन उस उदी का उपयोग 'बाधा' या 'करनी' निकालने के लिए करो। " मैने जैसे बाबा ने बताया उस प्रकार किया और बाद में आज्ञा के अनुसार ताम्हन में पानी लेकर उस कटोरी की थोड़ी सी उदी उसमें डाल दी वह उदी तुरंत उस पानी में घुलमिल गयी। तब परम पूज्य बाबा ने कहा," अब जो कोई करनी से पीड़ित भक्त आएगा उसे इस प्रकार से ताम्हन दिखाओ। उस ताम्हन की उदी में वह 'बाधा' या 'करनी' आदि 'मर्कटल' या मंत्र से हो रही तकलीफ नजर आएगी। जो बाधा या करनी ताम्हन में नजर आएगी वह धीरे धीरे कम होगी। और उसके बाद उस उदी में उसे मेरे दर्शन होंगे। इस तरह होने के बाद,' बाधा निवारण हो गई 'ऐसा निश्चित रूप से समझ लो।" इस आज्ञानुसार मैने बाधा से पीड़ित उस भक्त को बुला कर परम पूज्य बाबा की आज्ञानुसार वह ताम्हन उसके सामने रख कर उसे कहा कि ' इस ताम्हन से तुम्हारी बाधा नष्ट होगी ' और वैसा ही हुआ और वह भक्त सुखी हुआ। तब से आज तक ताम्हन का यह कार्य जारी है।

27. कार्य का प्रचार

गोवा में कार्यारम्भ

समय समय पर कामकाज में जो कोई मनुष्य कठिनाईयां लेकर आते थे उनके दुखों का निवारण हो रहा था। इसलिए धीरे धीरे कार्य का प्रचार होने लगा। उस समय बहुत से लोग मुझे अपने घर, अपने गांव आने के लिए विनती करते थे लेकिन इस मोह पर काबू पाना आवश्यक है, यह सोच कर परम पूज्य बाबा की आज्ञा बिना कहीं नहीं गया। पहले बारह साल मैं कार्य के लिए मुंबई, पूना, दिल्ली आदि जगह जाता था लेकिन तब मैने वहाँ किसी से 'प्रणाम' स्वीकार नहीं किया और सब भक्तों को तब यह बताया गया था कि जो कुछ गुरू दक्षिणा वे देना चाहते हैं वह बाबा के सामने रखें। उस समय अनेक लोग दीक्षा और नामस्मरण स्वीकार करने की इच्छा प्रदर्शित कर रहे थे। आखिर मैंने सबको यह बताया कि परम पूज्य बाबा की आज्ञा के बिना ये विधि नहीं कर सकते हैं।

गुरू मार्ग में आने के पहले से हरएक के घराने के कुलस्वामी और कुलस्वामिनी होते हैं। और यदि वे लोग कहते हैं कि अब ये देवताएं उनसे प्रसन्न नहीं हो रहे हैं तो भी 'गुरू' को इन देवताओं का अस्तित्व मान्य करके उनका सम्मान करना आवश्यक है। इसलिए उस समय मैंने सब भक्तों को यह बताया कि, "जब गुरूदीक्षा होगी तब इन देवदेवताओं के लिए हवन विधि करने के बाद प्रमुख दीक्षा विधि होगी। तब तक सब लोग परम पूज्य बाबा का नामस्मरण करते रहें।"

इसलिए उस समय सर्वप्रथम विधि पूर्वक नवरात्री का पूजन किया। नवरात्री के दस दिनों में ब्राह्मण और सुवासिनी इनको भोजन के लिए बुलाया, सुबह शाम अखंड नंदादीप जलाया इस तरह नवरात्री में जो जो विधि होती है वह करने के बाद श्रीमहालक्ष्मी, श्रीमहाकाली और श्रीमहासरस्वती इन देवताओं ने संतुष्ट होकर आशीर्वाद दिया। जो कोई दीक्षा लेना चाहता है उसे प्रथम इन देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त होना आवश्यक होता है। इसलिए श्रीमहाकाली, श्रीमहालक्ष्मी और श्रीमहासरस्वती इन देवताओं के

आशीर्वाद प्राप्ति के बाद दीक्षा की विधि करने का कार्य निश्चित किया। इसमें प्रश्न यह है कि दीक्षा का क्या अर्थ है ? केवल मानवी जीवन प्राप्त हुआ है इसके कारण दीक्षा लेनी है ऐसा कहना पर्याप्त नही है। बल्कि उसके लिए प्राप्त हुआ मानवी जीवन विकसित होना यह महत्वपूर्ण है। केवल भक्त हैं और उन्हें दीक्षा लेने की इच्छा है इसलिए दीक्षा देना योग्य नहीं है बल्कि जो दीक्षा का तत्वज्ञान है उसका बोध भक्त को होना और भक्त को वह बोध लेना आवश्यक है, केवल तत्वज्ञान सुनकर मोहित होना गलत है। इसलिए प्रथमतः भक्तों को 'जागृत' करना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि भक्त के जीवन में दीक्षा धारण करने के लिए जगह है या नहीं, यह देखना आवश्यक है। भक्त के जीवन में दीक्षा धारण करने के लिए जगह भक्त के काया वाचा मन में निर्माण होने के लिए पांच दीक्षा और तीन विमोचन हैं। इन आठ अंगों से भक्त का देहिक माध्यम सिद्ध होना आवश्यक है।

इसके अनुसार, उस समय जो कोई भक्त भाविक आते थे उनका वंशविमोचन करने के बाद उन्हें पहली दीक्षा यानि 'उपासना दीक्षा' दी गई। प्रथमतः 'उपासना दीक्षा' का अर्थ क्या है यह समझ लेना आवश्यक है। उसका स्पष्टीकरण यह है कि हम जन्म लेते हैं, उसे 'इहलोक' कहते हैं। जन्म लेना आसान है तो भी केवल जन्म हो गया इसी में समाधान मान लेना योग्य नहीं है। जिस प्रकार इहजन्म में अन्न वस्त्र निवारा (आवास) इन सुविधाओं का प्रबंध होना आवश्यक है उसी प्रकार जो जीव जन्म लेता है उसके जीवन की रचना होना भी आवश्यक है और उसके लिए पहली उपासना दीक्षा है। इसका अर्थ ' उप + आसन' यह सिद्ध होना चाहिए। उपासना दीक्षा के बाद की दीक्षाएं क्रमशः होती हैं और उनके अनुसार हमारी प्रगति होना आवश्यक है। प्रगति का अर्थ ऐश्वर्य नहीं है बल्कि, ' ईश्वर है ' ऐसे आचार विचार होना यह है और तब यह ज्ञान प्राप्त होगा कि ऐश्वर्य श्रेष्ठ है या ईश्वर श्रेष्ठ है। पहले बारह साल में 'दीक्षा सिद्ध करना ' आवश्यक होता है फिर बारह साल के बाद दीक्षाविधि की पूर्णता (समाप्ति) करनी होती है। इस दीक्षा विधि की पूर्णता का (समाप्ति) अर्थ जैसा हम कहते हैं वैसा नहीं है तो इसमें दीक्षा का जो बीजतत्व होता है

उसका कार्य होने के लिए जो स्वाहाकार करने के लिए गुरू आज्ञा होगी वही स्वाहाकार करना आवश्यक होता है। इसके अनुसार भक्तों ने पाँच दीक्षाओं को स्वीकार किया है इसकी निश्चिती हो जाने के बाद ही 'स्वाहाकार' करना मतलब 'दीक्षा माध्यम से शक्ति का आह्वाहन करना' होता है। ऐसे समय आवाहन की गई शक्ति प्रगट होने के पहले भक्तों के माध्यम योग्य होना आवश्यक होता है। जैसे बारिश आने के पहले खेत की जुताई आदि करना और बारिश के बाद बीज बोना ऐसा करने से ही वह बीज अंकुरित होता है नही तो बारिश होकर भी संपत्ती की अपेक्षा विपत्ति ही प्राप्त हो सकती है। गुरूमार्ग में इस प्रकार क्रमानुसार दीक्षाएं दी जाती हैं। केवल भक्तों को एकत्रित करके, कुल मिल के कितने भक्त हुए यह हिसाब लगाना गलत है। यह साधक को समझ लेना आवश्यक है। जीवन में प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। लेकिन आने वाला भक्त यह शास्त्र समझता नहीं है क्योंकि उसे यह लगता है कि जैसे जीवन में अनेक शौक होते हैं उसी में से ईश्वर सेवा भी एक शौक है लेकिन अगर ईश्वर सेवा की सच्ची लगन की प्राप्ति हो सकी तो जीवन में स्वानंद होगा नहीं तो जाल में फँस जाने से यह भूत माथे पर सवार हो जाएगा। इसलिए ईश्वर को पुकारने के पहले भक्त को उसकी थाह लेनी चाहिए और किसी से भी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए क्योंकि ईश्वर दिखाई नहीं देते हैं और किसी भी रूप में आ जाते हैं। ईश्वर को बहुत पुकारने पर भी उनका अहसास ना होने के कारण आखिर हमने क्या गलती की है यह सवाल सामने आता है। भक्ति मार्ग में बहुत काँटे होते हैं वे गिनते गिनते करोड़ों होते हैं इसलिए यह अवधान सूज्ञ भक्तों को प्रथमतः रखना आवश्यक है।

कुल पाँच दीक्षाएँ होती हैं। वास्तव में दीक्षा एक ही होती है लेकिन साधक उसे धारण नहीं कर सकता है इसलिए उसके पाँच भाग किए हैं। वैसे ही देह के पांच भाग करके उनके पांच कोशों में वर्गीकरण करके उसके अनुसार क्रम क्रम से पांच दीक्षाएं दी जाती हैं। उसके लिए गुरू को सदैव दक्ष रहना आवश्यक है और दीक्षा लेने वाले जो भक्त हैं उन पर सदैव निगरानी रखना आवश्यक है। इसमें भक्तों की संख्या बढ़ने से दक्षिणा का मोह बढ़ सकता है। इसलिए दक्षिणा पर नजर ना रखकर

अपने माध्यम से भक्त में दीक्षा प्रवाहित होती है या नहीं यह गुरू को देखना आवश्यक है। इसके अलावा दीक्षा लेने वाले भक्तों की काया वाचा मन की त्रिपुटी होती है, ऐसे समय दीक्षा का संबंध प्रथमतः भक्त की काया से होना आवश्यक है और उसके लिए जो 'संकल्प' दिया जाता है वह संकल्प सिद्ध होना आवश्यक है मतलब संकल्प के 'उच्चार' के पीछे शक्ति की धारणा होना आवश्यक है। जिस तरह केवल उच्चार करना पर्याप्त नहीं है उसी तरह केवल ' शक्ति का होना' यह भी पर्याप्त नहीं है तो उसमें युक्ति (तरकीब) भी आवश्यक है। यह शक्ति धारण हो जाने से दीक्षा की प्राप्ति होती है लेकिन उसके लिए उच्चार स्पष्ट होना भी आवश्यक है मतलब यदि संकल्प में 'रामायण' शब्द का उच्चार है तो रामायण में 'राम' का अनुभव होना आवश्यक है नही तो 'जयराम' यानि 'अंत' इसका अनुभव होगा।

पिंड यानि मानव और ब्रह्माण्ड यानि निसर्ग इस प्रकार विश्व की धारणा हुई है। 'मानव' इसका अर्थ काया वाचा मन यानि 'प्रतीक' और ब्रह्माण्ड इसका अर्थ उत्पत्ति, स्थिति, लय यानि 'प्रतिमा' और जब जगत् में इन दोनों का मिलाप हो जाता है तब 'प्रतिभा' का उदय होता है। उस समय इस जगत् का धर्म, चेतना और चैतन्य इन माध्यमों से होकर 'जगत् की धारणा' यह संपत्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत केवल जन्म लेकर जन्म व्यर्थ व्यय (खर्च) हो गया तो उसके जैसा पाप नहीं है। इसलिए गुरूमार्ग में दीक्षा के कारण जीवन में प्रतिभा का उदय होना आवश्यक है अगर वह नहीं हुआ तो हमारा जीवन ' चैतन्यमय' ना होकर केवल 'चेतनामय', मतलब केवल 'जी रहे हैं' ऐसा होगा। इसलिए परमपूज्य बाबा ने पांच दीक्षा का कार्य बताया। उस प्रकार सब भक्तों को क्रमानुसार पांच दीक्षा देकर और दीक्षा के अनुसार उनसे नामस्मरण कराने के बाद इन पांच दीक्षा से विकसित हुए पांच कोशों का संबंध एक दूसरे से जुड़ जाए और इस अवस्था का उपयोग औरों के लिए हो ऐसी जो इच्छा परम पूज्य बाबा ने व्यक्त की उसके अनुसार तीन दीक्षाओं का संबंध जब भक्त के काया वाचा मन से हुआ तब ॐकार साधना का प्रारंभ किया। मैने ॐकार की सीख श्रीभैरवनाथ जी से ली थी। लेकिन परमपूज्य बाबा ने कहा, ''केवल''

ऐसे ॐकार सीखने से नहीं चलेगा। इस ॐकार का संबंध विश्व से है। विश्व का निर्माण ॐकार से हुआ है। इसलिए यह ॐकार सिद्ध होना आवश्यक है। उस समय के लिए तुम तैयार रहो। आज नही, लेकिन जब मुझे ऐसा लगेगा कि अब जगत् को ॐकार की आवश्यकता है उस समय मैं आज्ञा दूँगा। उस समय यदि तुम्हारे पीछे लाखों भक्त होंगे और लाखों रूपयों की संपत्ती तुम्हारे सामने होगी तो भी तब तुम अपने वचन का पालन करो। तो ही यह जग जागृत होगा। यही जीवन की कसरत (संघर्ष) है तुम्हें जगत् से लोभ है या गुरू के कहने का लाभ प्राप्त करना यही हित है यह तुम उस समय निश्चित करो। ''

यह हकीकत सुनने के लिए और पढ़ने के लिए ठीक है लेकिन उस दिन से मैं सचेत हो गया। किसी व्यक्ति को, तुम्हारी मृत्यु फलाने दिन के बाद है यह सुनाने से उसकी जैसी अवस्था होगी, वैसी मेरी अवस्था हो गई। बाबा अब कौनसा कठिन कार्य बताएँगे ? यह विचार करते समय मुझे मेरा पहले जमाने का जीवन याद आया। उस समय मैं नौकरी कर रहा था और एक दिन ऐसी ही आज्ञा हो गई थी कि 'नौकरी छोड़ो ' वह आज्ञा सुनकर उस समय ऐसा लगा था कि, 'अब आगे कैसे जी सकेंगे ? इससे तो मृत्यु बेहतर होगी'। लेकिन इस बार मन में यह दृढ़ विचार निश्चित हो गया कि अब मन में किसी भी बात का दुख नहीं मानना है, बाबा की आज्ञा होते ही उसकी पूर्णता करनी है। और मैने वैसी प्रतिज्ञा की। केन्द्र पर भक्त आते जाते थे। अन्य शहरों में भी कार्य के लिए केन्द्र शुरू किए थे। उस समय पूना, मुंबई और दिल्ली में कार्य जारी था।

गोवा स्वतंत्र होने के बाद मुझे ऐसा लगा कि अब गोवा जाना चाहिए। उस समय ऐसा संजोग हुआ कि मैं गोवा देखने के लिए गोवा गया। तब गोवा में कार्य शुरू करने की बात मन में नहीं थी। उस समय श्रीपंतमहाराजजी का उत्सव था। उस उत्सव के लिए मैं बालेकुंद्री गया था, उस समय उत्सव के लिए आए हुए एक गृहस्थ से मेरी भेंट हुई। वे गोवा के थे और अब मुंबई में रहते थे। उनसे बात करते समय गोवा के विषय पर बातें हुई। वे गृहस्थ ज्योतिषी थे और भविष्य बताना उनका व्यवसाय था यह सुनकर

मैंने उन्हें कहा कि, " मैं भविष्य बताता नहीं, बल्कि भविष्य बनाता हूँ " मेरा यह कहना सुन कर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि इतने सालों में भविष्य बताने वाले बहुत मिले हैं लेकिन भविष्य बनाने वाला कोई नहीं मिला है। उत्सव के चार दिन समाप्त होने के बाद उन्होंने मुझ से पूछा कि अब आपका क्या कार्यक्रम है? अब आपसे फिर भेंट कब होगी? तब मैने उन्हें कहा कि 'मुझे गोवा जाने की इच्छा है '। उस समय उन्होंने कहा कि 'आप मेरी मोटर लेकर गोवा जाइये '। और तब हमारे साथ वहां जो एक मुंबई के रहने वाले, श्रीपंतमहाराज जी के भक्त थे उनकी ओर इशारा करके उन्होंने कहा कि 'आप इन्हें साथ लेकर गोवा जाईये क्योकि ये गोवा के हैं'। फिर इस प्रकार तय हुआ लेकिन उस समय श्रीपंतमहाराज जी ने उत्सव के लिए बुलाया था इसलिए मैने कहा कि इस समय गोवा जाने के लिए श्रीपंतमहाराज जी की आज्ञा प्राप्त करना महत्वपूर्ण है। अगर उनकी आज्ञा हुई तो आगे का कार्यक्रम निश्चित करेंगे। यह कहकर मैं मेरे रहने के स्थान पर आ गया। श्रीपंतमहाराजजी का मंदिर छोटा है लेकिन चारों ओर आम का बगीचा है उस समय मुझे यह प्रतीत हुआ कि तीर्थक्षेत्र औदुंबर जैसे ही बालेकुंद्री यह भी अत्यन्त रम्य स्थान है। मुझे ऐसा लगा कि बिटिया जब छोटी होती है तब उसके माता पिता लाड़ प्यार से उसकी इच्छाएं पूर्ण करते रहते हैं वह 'मायका', पहला स्थान औदुंबर है और दूसरा स्थान बांलेकुंद्री यह 'ससुराल' है। लेकिन यहाँ मायका और ससुराल इन शब्दों का सही अर्थ समझना आवश्यक है। उनका अर्थ शाब्दिक नहीं है। शब्दों से खेलना कोई भी जानता है जैसे हम हमेशा कहते हैं कि 'मीठा बोलें' लेकिन जगत् में अब 'गोडबोले' (मीठा बोलने वाले) इनका कुलनाम भी केवल नाम के लिए रह गया है तब सबका मीठा बोलना यह बहुत दूर की बात है।

संतोंकी भाषा अलग होती है यह मुझे उस समय बालेकुंद्री में समझ आया। उस रात भोजन के बाद मैं मंदिर के ठीहे पर बैठा था। मैं गोवा जाऊँ या नहीं यह मैं उनसे पूछना चाहता था लेकिन श्रीपंतमहाराजजी से यह पूछने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी क्योंकि सुबह मुझे उनका फोटो जरा कठोर भाव में लगा था। इसलिए मैं वैसे ही बैठा रहा तब रात के बारह

बजे मुझे मोगरे के फूलों की सुगंध आई। श्रीपंतमहाराजजी का उत्सव अश्विन महिने में था, तब मोगरे के फूल तो नहीं होते हैं। लेकिन आज भी मुझे याद है कि उस रात आसमान में मोगरे के फूलों की सुगंध आ रही थी। उस सुगंध का अनुभव करके मैं तल्लीन हुआ था तब मैने श्रीपंतमहाराजजी का यह ममता से भरा कहना सुना, 'बेटा जाग जाओं। कुछ प्राप्ति करना है तो उसके लिए उस शहर की जानकारी होना आवश्यक है। जहाँ जाने की आज्ञा तुम माँग रहे हो वह गोवा शहर है। यह शहर अन्य शहरों जैसा नहीं है। वहाँ के लोगों को उठते बैठते समय ईश्वर की आवश्यकता होती रहती है। उन्हें ईश्वर के प्रति श्रद्धा जरूर है लेकिन वह श्रद्धा देखकर जी उब जाता है। अभी तुम्हें मोगरे के फूलों की सुगंध का जो अनुभव हुआ उस 'मोग' का अर्थ 'प्रेम' है। लेकिन गोवा में वह प्रेम ईश्वर के प्रति प्रेम नहीं है। लोगों को इस मोग का अर्थ केवल तब समझ आता है जब उन्हें ईश्वर से कुछ माँगना होता है और तभी वे 'मोग' में यानि प्रेम में आते हैं और बाद में फिर भूल जाते हैं। इसलिए तुम प्रथम मोग यानि प्रेम प्राप्त करो और बाद में कार्य आरंभ करो। ''

इसके अनुसार मैने गोवा में प्रवेश किया। उस समय गोवा बहुत ही छोटा शहर था वहाँ हम एक होटल में ठहरे थे। उस समय मुंबई के केन्द्र में आने वाले एक गृहस्थ जो उस समय नौकरी के लिए गोवा आए थे, उनकी और मेरी वहाँ भेंट हुई। मुझे वहाँ देख कर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। फिर उन्होनें मुझे अपने घर आने के लिए आमंत्रित किया और ' आप गोवा में कार्य शुरू कीजिए ' ऐसी इच्छा तब उन्होने व्यक्त की। उस समय मैंने उन्हें यह कहा कि मैं गोवा में गुरूकार्य आरंभ करूंगा लेकिन यहाँ के देवताओं ने आज्ञा दी तो ही ! अभी तो मैं यहाँ गोवा देखने आया हूँ। बाद में परम पूज्य बाबा की आज्ञा लेकर फिर से आऊँगा। फिर उस समय गोवा और गोवा के देवस्थानों के दर्शन करके मैं पूना वापिस आया। पूना आने के बाद, गोवा में कार्य शुरू करने की बात मैं भूल गया।

उसके बाद छह महिने बीत गए। चैत्र पाड़वा यानि 'गुढ़ीपाड़वा' के दिन पूजन हुआ फिर उसी दिन, रात में मुझे देवी बुला रही हैं ऐसा सपना आया। सपने में मैने देखा कि एक सुहागन स्त्री मुझे बुला रही है, भव्य

मंदिर है और उसमें बैठे एक पंडित जी मुँह से (देवी महात्म्य) सप्तशती के पाठ का उच्चारण कर रहे हैं। सपने में जब यह देखा तो रात के तीन बजे थे। दूसरे दिन सुबह परम पूज्य बाबा की फोटो के सामने मैने यह प्रार्थना की कि, 'आरंभ से मेरी प्रार्थना, उपासना 'पुरूष' इस माध्यम से हो रही है। मेरे पिताजी श्रीदत्तगुरू की उपासना करते थे और मैं भी उसी मार्ग पर चल रहा हूँ। और फिर कल रात मैने जो सपना देखा उसमें मुझे प्रकृति के यानि देवी के दर्शन हुए और वह देवीजी मुझे बुला रही हैं ऐसा मैने देखा तो ये देवीजी कौन हैं ? " तब बाबा ने कहा, ' अरे पागल, वह तो तुम्हारी माँ है। माँ को भूलकर कैसे चलेगा? ' यह सुन कर उसी समय मुझे तीर्थक्षेत्र औदुंबर की याद आई। वहाँ रोज शाम को, नदी के दूसरे किनारे के देवी के मंदिर में जाकर मै वहाँ जाप करता था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह देवी और सपने में देखी देवी एक ही हैं। फिर बाबा ने आगे मुझे कहा कि, ' उस समय तुम्हें यह पूछा था कि जगत् का अर्थ क्या है ?' 'ज' यानि 'जननी' और 'ग' यानि 'गणेशजी' यानि ॐकार ! अब योग्य समय पर देवी ने तुमने गोवा बुलाया है। इसलिए तुम अवश्य गोवा जाओ। इसी पर आगे की साधना निर्भर है। " बाबा की इस आज्ञा के अनुसार मैं गोवा गया। गोवा में सैकड़ों मंदिर हैं। इनमें प्रमुख देवता कौन हैं ऐसा पूछने पर मुझे यह पता चला कि वहां श्रीशांतादुर्गा और श्रीमंगेश ये प्रमुख देवता हैं। गोवा जाने के पहले एक गृहस्थ ने मुझे कहा था कि 'जैसे महाराष्ट्र में ईश्वर को कुछ पूछने के लिए कौल (प्रश्न) लगाते हैं वैसे गोवा में देवता से प्रसाद लेने का रीति रिवाज है ! यदि देवी को हमारा कहना मान्य नहीं होगा तो 'प्रसाद' प्राप्त नहीं होता है। महाराष्ट्र में जो कौल (प्रश्न) होता है उसमें भक्त के लिए पुजारी जी ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, और ईश्वर के 'प्रसाद' के बारे में भक्त को बताते हैं। इसलिए उसमें पुजारीजी का कहना कितना और ईश्वर का कहना कितना यह सवाल मेरे मन में आया क्योंकि जैसे इन पुजारी जी को वंश परंपरा से ईश्वर की पूजा का अधिकार प्राप्त होता है उसी प्रकार उन्हें वंश परंपरा से कौल (प्रश्न) के माध्यम से ईश्वर, 'भक्त की इच्छा के संबंध में क्या कहते हैं' यह कहने का अधिकार भी प्राप्त होता है। मुझे गोवा की देवी के संबंध में ऐसी परंपरा से निर्णय नहीं चाहिए था क्योंकि वैसे भक्त और ईश्वर मैने बहुत बार देखे

थे। पहले पूना में भक्तों के साथ यह खेल किया था। वहाँ नवरात्री के पूजन के समय घर घर में कलश में फूंक मार कर देवी का संचार होने वाली महिलाएं होती हैं वैसे ही गाँव में देवता के उत्सव के समय भक्तों में उस देवता का संचार होता है। ये संचार सच है या झूठ इसकी परीक्षा मैने की थी। बहुत से लोगों को संचार से डर लगता है इसलिए जिनमें संचार होता है ऐसे व्यक्ति का बहुत सम्मान किया जाता है। और ईश्वर को बाजू रख कर ऐसे संचार हुए व्यक्ति का कहना ही देवी का या देवता का कहना है, ऐसा माना जाता है। इसलिए 'प्रसाद लेना' गलत नहीं है लेकिन प्रसाद लेने वाले भक्त को देवी की प्रचिती का क्या अनुभव प्राप्त होता है कि जिसके कारण वह 'प्रसाद हुआ' ऐसा कहता है यह एक प्रमुख सवाल है।

गोवा में श्रीशांतादुर्गा और श्रीमंगेश इन दोनो देवताओं के मंदिर में गया। श्रीशांतादुर्गा के मंदिर में उनके पैरों के नीचे तांबे का एक चौड़ा फलक (Sheet) है। उस पर मैने 'श्रीयन्त्र' यानि देवी की प्रतिमा देखी। देवी के दर्शन करके मैने देवी से मनः पूर्वक यह प्रार्थना की कि, " आपकी कृपा से जो कार्य मैने आरंभ किया है वह कार्य यदि योग्य है तो आप कृपया वैसे बताइए। असंख्य लोग आपके पास आकर प्रसाद लगाते हैं और 'प्रसाद हुआ' यह समाधान मान कर घर जाते हैं। लेकिन मुझे आपकी निश्चित सहमति की आवश्यकता है। लोग आपके माथे का फूल गिरने को या ऐसे अन्य प्रकार को आपकी सहमति मानते हैं लेकिन मुझे आपसे निश्चित संकेत की आवश्यकता है क्योंकि यह जो कार्य है वह केवल 'मैं करूंगा' ऐसे कहने से नहीं होगा। उस कार्य में आपका सहभागी होना आवश्यक है नही तो यह कार्य मैं गोवा में नहीं करूंगा " ऐसी प्रार्थना देवी से करके मैं उनके प्रसाद की प्रतीक्षा करता रहा। दर्शन के समय मैने देवी के पास बीड़ा और नारियल रखा था। थोड़े समय के बाद पुजारीजी ने मुझे बुलाकर प्रसाद लेने को कहा तब मैने उन्हें कहा कि, " मेरे देवी के साथ हुए संभाषण का आपको पता नहीं है इसलिए आप जल्दबाजी मत कीजिए। क्योंकि मुझे प्रसाद आपसे नहीं बल्कि देवीमाँ से प्राप्त हो ऐसी मेरी इच्छा है। " पुजारीजी को यह कह कर मैं देवी माँ से प्रसाद की प्रतीक्षा करते मंदिर में बैठा रहा। पहले औदुंबर में मुझे ऐसे ही छुहारे के

प्रसाद की प्राप्ति हुई थी। लेकिन उस समय मुझे प्रसाद का ज्ञान नहीं था। मेरे साथ जो गृहस्थ थे, उनकी देवी शांतादुर्गा थी, इसलिए उन्हें मैं मंदिर में क्यों रूका हुआ हूँ यह समझ नहीं आ रहा था। उनके साथ उनके जो पुजारीजी थे उन्होंने भी मुझसे यह पूछा कि मेरी क्या इच्छा है ? लेकिन मैने उन्हें कुछ नहीं बताया। जब हम शांतादुर्गा के मंदिर में आए थे तब देवी का मंगल स्नान हो रहा था। मंगल स्नान के बाद देवी की महापूजा हुई। महापूजा के बाद मेरे बदन में कंपकंपी आना शुरू हुआ। पहले जब ऐसी मेरी अवस्था होती थी तब मुझमें श्रीबहुचराई देवी का संचार होता था। देवी के मंदिर में जब मेरी फिर से वैसी अवस्था होने लगी तो मुझे भय लगा और इसलिए तुरंत देवी से विदा लेकर मैं मंदिर से चल पड़ा और पणजी में जिनके घर मुझे खाने पर बुलाया था उनके घर गया। उनके घर पूजा स्थान में बाबा की फोटो थी और श्रीशांतादुर्गा की भी फोटो थी। उस दिन मैंने वहाँ आरती की और उसके बाद खाना खाकर होटल आया और निराश होकर बालेकुंद्री वापस आया। पंतमहाराजजी ने मुझसे कहा कि, "जो प्रसाद तुमने माँगा है वह प्रसाद देवी तुम्हें अभी नहीं देंगी क्योंकि वह पारमार्थिक प्रसाद है। श्रीदेवी के दर्शन के लिए आने वाले बहुत लोग श्रीदेवी से ऐहिक माँगते हैं लेकिन हमे ऐहिक की आवश्यकता नहीं है इसलिए तुम प्रतीक्षा करो। देवी की कृपा निश्चित है, उसके बिना तुम गोवा नहीं जाते। जो शक्ति है उसका लाभ बाद में होगा। उस समय ये देवताएं गुरू शक्ति में विलीन होंगी। अब इस जगह सब भक्त जो नामस्मरण कर रहे हैं उस नामस्मरण का अर्थ क्या इन लोगों ने समझ लिया है ? क्योंकि कोई भी कार्य ज्ञानी होकर करने से ही उसके फल की प्राप्ति होती है नहीं तो अज्ञान के कारण शून्य प्राप्ति होती है। इस नामस्मरण का अर्थ बाद में इन भक्तों को जरूर समझ आएगा। तुम गोवा में कार्य शुरू करो। बच्चा छोटा होता है तो उसे उसी समय बुढ़ापा नहीं आ सकता है और यदि बचपन में बूढ़ा होने का एहसास जताया तो वह नकल है।

इस घटना के बाद गोवा में आना जाना जारी था। गोवा, पूना से तीन सौ मील की दूरी पर है। इतनी लंबी यात्रा और यात्रा का कोई साधन नहीं ऐसी परिस्थिति थी। पहले मैं मुंबई के भक्त की मोटर से गोवा जाता था।

लेकिन हर किसी को, 'अच्छा देखना' मुमकिन नहीं होता है, और इस जगत् में देवदर्शन के विरोध में भी बहुत लोग होते हैं। उस समय परम पूज्य हाजीमलंगबाबा का उर्स था और उस उर्स के लिए गोवा में सैकड़ों भक्त आने वाले थे। लेकिन ठीक उसी समय मैं जिनकी मोटर से गोवा जाता था उन गृहस्थ के भतीजे ने वह मोटर खोल कर रखी थी और मुझे संदेशा भेजा कि यह मोटर पंद्रह दिन के बाद ठीक होगी। अब क्या करें ? दो दिन के बाद ही हाजी बाबा का उर्स था। उस समय मैं मुंबई में था और वहां का उर्स होने के बाद गोवा जाने वाला था। इसलिए मैने यह विचार किया कि अब मुझे मोटर खरीदना आवश्यक है। हर समय लोगों पर निर्भर होकर यह कार्य नहीं होगा। तो अब प्लेन से या ट्रेन से गोवा जाकर बाद में मोटर खरीदने का विचार करेंगे। इसके अनुसार मैं गोवा गया और उर्स हुआ। उस समय परम पूज्य हाजीबाबा ने कहा, 'बच्चा डरो मत। अगले उर्स को तुम अपनी मोटर से गोवा आओ। हम कोई भिखारी नहीं हैं, यह सबको मालूम होना आवश्यक है।'' यह सुनकर मोटर लिए बिना पूना नहीं जाना है यह मैने मेरे मन में निश्चय किया और मोटर की खोज में लगा। विभूतियों का शब्द 'ब्रह्म' है। एक समय ब्रह्म झूठ साबित हो सकता है लेकिन विभूतियों का शब्द कभी व्यर्थ नहीं होता है। इस बात की प्रचिती का तब अनुभव हुआ। उस समय मेरे पास सौ रूपये भी नहीं थे और मोटर की कीमत पच्चीस हजार थी। लेकिन मैंने मेरे जीवन का आरंभ ही इस प्रकार किया था कि यदि मेरे पास सोना नहीं होगा तो भी मैं कभी उसकी जगह पीतल इस्तेमाल नहीं करूंगा। ऐसा जो मेरा दृढ़ निश्चय था उस का कारण मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि, मेरे ईश्वर मेरे साथ हैं!

28. 'साष्टांग प्रणाम करके आपके चरणों को वंदन करूंगा ।। आंखों से आपके स्वरूप का दर्शन करूंगा ।।'

मैं कार्य के लिए गोवा से दिल्ली और अन्य जगह जाकर वापस आ गया। गुरूमार्ग में बहुत अनुभव प्राप्त होने के कारण, गुरूलीला अगाध है यह मैने पूरी तरह से समझ लिया था। यदि श्रीगुरू ने साधक की परीक्षा ली तो 'मैं मैं' कहने वाले साधक कुछ ना कुछ बहाना बना कर गुरू से दूर हो जाते हैं। गुरूमार्ग यह गुरूमार्ग में आकर 'गुरू' होने के लिए नहीं है। लोग कहते हैं कि 'गुरू' यह हमारे सामने एक व्यक्ति है लेकिन गुरू का अर्थ 'ज्ञान' है। यह ज्ञान संपूर्ण चराचर में (विश्व में) भरा हुआ है लेकिन इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए साधक को दृष्टि होना आवश्यक है। दृष्टि के बिना सृष्टि क्या है यह बोध नहीं हो सकता। यहां 'दृष्टि' का अर्थ 'आँखे' नहीं हैं, इसलिए संतो ने कहा है कि 'घालीन लोटांगण, वंदीन चरण, डोलयानी पाहीन रूप तुझे (साष्टांग प्रणाम करके आपके चरणों को वंदन करूंगा और आंखो से आपके स्वरूप का दर्शन करूंगा)। हम, ' साष्टांग प्रणाम करूंगा ' यह जो कहते हैं वह प्रथम अवस्था है। लेकिन इस अवस्था को समझ लिए बिना ही साधक आगे जाता है। हमें जो जन्म प्राप्त होता है उस जन्म का दान देकर हमको 'दास' बनना आवश्यक है। और दास बनते समय हमारे कर्म में सुख है या दुख है ऐसी आशंका अंशमात्र भी (जरा सी भी) मन में नहीं रहनी चाहिए मतलब जन्म लेकर हमें उस जन्म का मालिक बनना आवश्यक है क्योंकि जब तक प्राप्त जन्म के मालिक नहीं बन सकते तब तक हमें, वह जन्म दान देने का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता और प्राप्त जन्म का दान देने के बाद, 'दास' यह अवस्था प्राप्त होती है। यह पहली अवस्था केवल एक ही जन्म में नहीं है तो जनम जनम प्रयत्न करने के बाद प्राप्त होती है। जो फूल ईश्वर को समर्पण करना है, उस फूल को पाँव नहीं लगाना, उसकी सुगंध नहीं सूंघना इत्यादि, इन बंधनो का पालन करके आचरण किया तो ईश्वर को अर्पण किया हुआ वह फूल यानि जीवन निर्मल (साफ) होता है। इसलिए

गुरूमार्ग में प्रथम अवस्था में आचार, विचार, उच्चार गुरू आज्ञा से करना आवश्यक है। इस अवस्था में अपनी जिद यानि हठीलापन नही चलता है। वह एक प्रकार का अंहकार है और वह कर्म का अहंकार होता है और उसी कर्म के कारण मनुष्य जगत् को खो बैठता है। इसलिए हमारे मन में यदि असंख्य विचार आए तो भी हमें उन विचारों को कार्यान्वित नहीं करना चाहिए। उन विचारों के अनुसार कार्य नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उस कर्म के अच्छे बुरे फलों से हमारा बचाव होगा और इसलिए हम पर दीक्षा की लगाम का (बागडोर का) काबू होना आवश्यक है। इस अवस्था में गुरू, भक्तों का रक्षण करते हैं। अनेक लोगों ने अभी तक रक्षण शब्द का शाब्दिक अर्थ नहीं समझा है। रक्षण इसका अर्थ प्रत्येक क्षण गुरूकृपा होना। इस गुरूकृपा से जीवन के प्रत्येक क्षण के साथ जो कर्म होता है उस कर्म से 'रक्ष रक्ष परमेश्वर' यानि ईश्वर रक्षा करो' ऐसा होना आवश्यक है। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षण जो अभय देते हैं वही परमेश्वर है। लेकिन हम प्रत्येक क्षण परमेश्वर को भूलते हैं। फिर भी वे हमारे जीवन की देखभाल करते हैं और हमारा जीवन निर्दोष हो इसके लिये अवतारी पुरूष प्रयत्न करते हैं लेकिन हम 'कृतज्ञ होना' इस कर्त्तव्य को ही भूल गये हैं।

प्रथम अवस्था के बाद दूसरी अवस्था, 'आपके चरणों को वंदन करूँगा' यह है। प्रथम अवस्था में 'दास' बनने के बाद दृष्टि को क्या नजर आता है ? तो दृष्टि को यह नजर आता है कि, यह जगत् आपका है। मेरा नहीं है। इस जगत् में मैने कर्म भोगने के लिए जन्म लिया था लेकिन आपकी भेंट होने के कारण, 'आप' और 'मैं' यह द्वैत भी समाप्त हुआ। इस जगत में रहते समय वासना का खेल जारी रहता है, बाद में वह खेल समाप्त होता है लेकिन फिर भी वासना बाकी रहती है और उन बाकी रही वासनाओं के कारण बार बार जन्म प्राप्त होता रहता है। इसके विपरीत आपकी कृपा से ऐसे जीवन की प्राप्ति हो जिससे मेरे जीवन में आपका 'वास' (निवास) होगा। और जब छोटे बड़े मुझे प्रणाम करेंगे तब उन्हें 'मैं' दिखाई ना देकर 'आप' दिखाई दें। अगले जन्म में भी आपको वंदन करने के लिए आप मुझे अपने चरणों के पास, आपकी सत्संगती में सदैव रखिए। मेरे जन्म के समय आपकी मुझे दी हुई दृष्टि का इस्तेमाल करने का ज्ञान

ना होने के कारण आप मुझे दिखाई नहीं देते हैं, यह भी ज्ञान मुझे नहीं है। मुझे इस ज्ञान का लाभ इस जन्म में हो ऐसी मेरी इच्छा है। कम से कम प्राप्त जन्म के मेरे इस जीवन का तो आपके चरणों मे समर्पण हो। हे ईश्वर, आपसे मैं इतनी ही प्रार्थना करता हूँ !

तीसरी अवस्था, 'आँखों से मैं आपके स्वरूप का दर्शन करूंगा ' यह है। यह साधक का अहंकार है क्योंकि आंखें बहुत छोटी हैं और परमात्मा का रूप उनसे बहुत गुना विशाल है। वैसे ही यह जो मैं प्रेम से कहता हूँ कि ' आंखों से मै आपके स्वरूप का दर्शन करूंगा ' यह सत्य नहीं है क्योंकि आप तो अरूप हैं। मेरी दृष्टि संकुचित है। इसके अलावा मेरी यह दृष्टि मुझे धोखा भी दे सकती है क्योंकि सोना और पीतल इन दोनो का रंग समान होता है लेकिन गुणधर्म अलग अलग है। ऐसी धोखादायक स्थिति आप मेरे जीवन में आने नहीं दीजिए। क्या सत्य है, क्या असत्य है इसका अर्थ ना समझने के कारण मेरे जीवन में अनर्थ हुआ है। मैं बार बार जन्म लेता हूँ और आप मुझे जन्म देते हैं। ऐसे कितने जन्म मैने लिए होंगे इसका कोई हिसाब नहीं है। आप मुझे एक ही जन्म ऐसा दीजिए कि उसमें मेरे आज तक लिए हुए सारे जन्मों की समाप्ति हो सके। इतनी ही मेरी अत्यधिक इच्छा है। आप 'दाता' हैं। जो कोई आपसे माँग करते हैं उनकी माँग की आप पूर्णता करते हैं लेकिन आपके बिना यह सब व्यर्थ है। मुझे आपके भजन, आरती या नामस्मरण की अमृतमय अवस्था में रहने दीजिए !

29. लंदन में कार्य करने की आज्ञा और कार्य

"ईश्वर को साष्टांग प्रणाम करना, ईश्वर के चरणों को वंदन करना और ईश्वर के दर्शन आँखों से करना" इन तीन अवस्था में जीवन व्यतीत हो", यह भूख मुझे लगी थी। उस समय वैसी प्रार्थना श्रीपंतमहाराजजी से करने के बाद उन्होंने मुझे यह आशीर्वाद दिया कि, 'तुम जब अपनी वाणी से मेरे रचे गीत गाओगे तब अँधा देख सकेगा, गूँगा बोल सकेगा और जो 'भूख' ऐसा कहते है वह 'भाक'(वचन) की माँग करेगा। ये 'तीन अवस्थाओं के ' मायने क्या है यह बाद में तुम स्वयं कहोगे। अब मध्य रात का समय है। थोड़े ही दिन में तुम उषः काल यानि 'सूर्योदय के पहले का काल' देखोगे। इसलिए तुम अब जगत् देखकर आओ जिससे तुम हमारी भारत भूमि में क्या कम है और क्या अधिक है यह समझ जाओगे। "

इसके थोड़े ही दिन के बाद लंदन से बुलावा आया। तब एक साल विचार किया कि हमारा मार्ग और उनकी दिशा अलग है क्योंकि वहां परधर्म है, अलग संस्कृति है। फिर उनका धर्म और संस्कृति समझ लेनी है या हमारा धर्म और संस्कृति उन्हें समझानी है ? क्योंकि यदि हमने समझौता किया तो हमारा तत्वज्ञान बदलेगा और उसके कारण जगत् का तत्वज्ञान भी बदलेगा। यह संघर्ष मेरे मन में हो रहा था। आखिर बाबा ने कहा कि, मेरी आज्ञा से जब तुमने नौकरी छोड़ दी तब तुम्हारे भाईबंदो ने बड़ा शोर मचाया था कि "तुमने नौकरी क्यो छोड़ दी ?, यह सब तुम्हारी बहानेबाजी चल रही है "। उस समय तुम्हारे माध्यम से मैने यह कहा था कि,' समय आने पर तुम सब यह देखोगे और समझोगे। यह कार्य मैं परदेस जाकर करूंगा। "उस समय उनके समझ में केवल यह आया था कि तुमने नौकरी छोड़ी है। कार्य का मतलब क्या है यह तब तुम्हारे रिश्तेदारों को नहीं समझ आया था। इसलिए अब तुम केवल विचार करने मत बैठो। लंदन का बुलावा आए या ना आए तो भी तुम लंदन होकर आओ। उसके बारे में बोलने का कुछ उपयोग नहीं है। "

बाबा की यह आज्ञा वंदनीय मान कर मैने लंदन जाने की तैयारियाँ की। जैसे जैसे लंदन जाने के दिन नजदीक आने लगे वैसे मैं

यह सोचने लगा कि वहाँ का जगत् कैसा होगा ? क्योंकि प्रथमतः उनकी भाषा अलग है। वे जो अंग्रेजी भाषा बोलते हैं वह उनकी मातृभाषा है और मेरी पढ़ाई तो केवल चार कक्षा ही हुई है तो अंग्रेजी कैसे बोलूँगा और कैसे लिखूँगा ? तर्खड़कर इस लेखक का लिखा अंग्रेजी व्याकरण ही मैने पढ़ा हुआ है। उसी पर मैं निर्भर हूँ। लेकिन अंग्रेजी भाषा के उच्चार मैं नहीं समझता था। इसलिए वहाँ जाने के बाद इन अंग्रेज लोगों से कैसे बोल सकूँगा ? यह अंग्रेजी भाषा अब मैं किसी से सीख लूँ तो वह मुमकिन नहीं हैं क्योंकि हमारे कार्य का विषय जगत् के विषय से अलग है। जब तक सुख है तब तक ईश्वर याद नहीं आते हैं और उनकी दया तो बिल्कुल ही याद नहीं आती है। हमारा विषय दैविक है। हमारा मार्ग का अर्थ क्या है यह उन्हें कैसे बताया जाए ? क्योंकि उस देश में इस मार्ग की आलोचना करने वाले बहुत हैं। इन पाश्चिमात्य लोगो की ऐसी राय है कि केवल पहनावा बदल लेने से दैवी मार्ग हो जाता है। इसलिए यदि उन्हें यह मार्ग सच्चा लगता भी हो तो भी इस मार्ग पर सौ प्रतिशत विश्वास कितने लोग करते हैं? इस विचार के ऐसे जगत् में कार्य करना है यह बड़ा कठिन कार्य है ऐसी मेरी विचारधारणा हो गई। फिर भी आखिर आज्ञापालन यही अपना कर्त्तव्य है यह समझकर मैं इंग्लैंड जाने के लिए तैयार हुआ। मेरे जाने के दिन मुझे विदा करने के लिए मुंबई के हवाई अड्डे पर अनेक लोग उपस्थित थे, लेकिन मैं स्वयं ही वहाँ उपस्थित नहीं था। मैं तो उसके पहले ही लंदन पहुंच गया था क्योंकि तब मेरे साथ केवल मैं खुद ही था। अनेक लोग परदेस जाते हैं लेकिन उनका परदेश गमन उनकी अपनी कीमत बेचने के लिए होता है। परन्तु मुझे परदेश में 'गमभन' यानि मूल अक्षर सिखाने थे। और उसके लिए वहाँ के किसी से पहचान होना आवश्यक था। यहाँ सैकड़ों लोग मुझे जानते हैं लेकिन वहाँ नये सिरे से प्रारंभ कैसे किया जाए? कुछ चमत्कार करके दिखाएँ या तत्वज्ञान के रूप में कुछ आदिदैविक मार्ग से भूत भविष्य के बारे में बताएँ? लेकिन ये दोनो भी मैं नहीं कर सकता था क्योंकि चमत्कार यह विषय परम पूज्य बाबा को मान्य नहीं था। ऐसे अनेक विषयों में मेरा मन तल्लीन था। लंदन की कुल यात्रा चौदह घंटो की थी। उस समय हवाई जहाज में बैठकर जब मैं मुंबई से दूर चल पड़ा तब, " बचोगे तो नाम कमाओगे, जमीन पर आओगे तो जगत्

में तुम्हारी हँसी होगी " यह मेरे कान में कह कर कोई हँस रहा है ऐसा मुझे लगा। तब मुझे हाजीबाबा का यह शेर याद आया कि, 'याद है तो बाद है, भूल गए तो बरबाद है।' इन चौदह घंटो में मैने विभूति की यह वाणी सुनी कि, लंदन में, " जीवन मायने क्या है " इतना ही विषय तुम समझाओ और यदि तुम उसकी प्रचिती का अनुभव करा सकोगे तो ही नाम कमाओगे ! केवल 'लंदन जाकर आया' इतना ही कहना उचित नहीं होगा "।

मैं लंदन में एक साल रहा था। इस अवधि में मैंने वहाँ की अनेक संस्थाओं से भेंट की। संस्थाओं का समाज संबंधित कार्य देख लिया। वह कार्य मैने केवल दूर से ही नहीं देखा बल्कि वे कैसे कार्य करते हैं इसका मैने अध्ययन किया। उस अध्ययन से मुझे अहसास हुआ कि हमारे यहां खुद का स्वार्थ इसके अलावा सामाजिक संस्थाओं के कार्य का कुछ अर्थ नहीं है। लंदन के लोग अध्यात्मिक संस्था से लेकर अनाथ आश्रम तक सब कार्य करते हैं। और यहाँ के नागरिकों का प्रमुख धर्म यह है कि, "किसी भी संस्था के कार्य की आलोचना करना यह गलत है, पाप है, और समाज कल्याण का जो कार्य हम नहीं कर सकते हैं वह कार्य यदि इन सामाजिक संस्थाओं के कर्मचारी कर रहे हैं तो उन्हें मदद करना हमारा कर्त्तव्य है यानि हमारा जन्मसिद्ध हक है"। इसी भावना की वजह से वहाँ इन सामाजिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं होती है। ये संस्था बिना संकोच कार्य कर सकती हैं। हर एक क्षेत्र में ऐसा कार्य होता रहता है। वहाँ नाताल–क्रिसमस यह जो प्रमुख त्यौहार है उस समय वे यह त्यौहार केवल वैयक्तिक त्यौहार समझकर नहीं मनाते हैं बल्कि वे औरों की आर्थिक सहायता करके मनाते हैं। हर जगह जब खरीददारी होती रहती है, ऐसे समय जो खर्चा किया जाता है उस खर्चे का कुछ भाग वे लोग सामाजिक संस्थाओं को देते हैं। हमारे यहाँ बिना मांगे कोई सहायता नहीं मिलती है क्योंकि औरों की सहायता करने में हमे संकोच की भावना होती है। इसके विपरीत वे लोग किसी का भी उपकार चुकाए बिना नहीं रहते हैं। वहां मुझे जिन घटनाओं का अनुभव हुआ उनका उल्लेख करना मेरा ईष्ट कर्त्तव्य है, इसलिए मैं यह लिख रहा हूँ। जगत् में बहुत से लोग मुफ्त की चीजें लेने वाले होते हैं लेकिन मुफ्त क्या लेना

है इसकी भी कोई हद होती है। लंदन में लोग औरों के पैसे डुबा सकते हैं लेकिन ईश्वर के नहीं। ईश्वर की पूजा करने वाले बहुत होते हैं और ईश्वर से लेने वाले भी बहुत होते हैं लेकिन ईश्वर को देने वाले लोग मैनें लंदन में ही देखे। इसके कारण, ईश्वर यह कल्पना ना होकर ईश्वर प्रत्यक्ष है यह इन लोंगो के कामों से समझ आता है। मिसाल के तौर पर एक गृहस्थ की यह हकीकत है। वे मुझे मिलने के लिए स्कॉटलैंड से लंदन आए थे। आने के बाद उन्होंने एक घंटा अपनी प्रापंचिक समस्याओं के बारे में मुझसे सवाल पूछे। फिर मेरा बताया हुआ सुनने के बाद उन्होंने बिना मांगे, मेरे टेबल पर पंद्रह पौंड़ रख दिए। वास्तव में मुझे यह अपेक्षा नहीं थी। उसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि यहाँ आपका गुजारा कैसे चल रहा है ? लंदन यह महंगा शहर है और जहाँ आप रह रहे हैं वह अमीर लोगों की बस्ती है। यहाँ का आपका हर रोज का इतना खर्च कौन कर रहा है? इत्यादि मेरी पूछताछ उन्होंने की। तब मैने उन्हें बताया कि मैं लंदन में पैसे कमाने नहीं आया हूँ , बल्कि कुछ ज्ञान प्राप्त हो और इस देश से स्नेह संबंध में वृद्धि हो इस उद्देश्य से तथा यहाँ के मानवी जीवन के मूलभूत मानवी तत्वों की सीख का अध्ययन करने के लिए आया हूँ। मेरा यह कहना सुनकर उन्होने कहा कि 'मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं धन्य हो गया हूँ।' इतना ही नहीं बल्कि उनकी आँखो में आंसू आए। उन्होने मुझसे कहा कि 'इतने दूर आकर, अपना देश अपना धर्म इनका योग्य प्रचार करने का कार्य आप जैसे लोग कर रहे हैं यह देख कर मुझे आश्चर्य हो रहा है। आपने मुझे जो निराकरण बताया है उसके अनुसार मैं वह निराकरण आचरण में लाऊंगा। और मेरी समस्या का निवारण होने के बाद मैं फिर आपसे मिलने आऊंगा या उसके बारे में आपको टेलिफोन करके बताऊंगा'। वास्तव में लंदन से एडिन्बरा बहुत दूर है लेकिन वहाँ से यह गृहस्थ निश्चित मन से मुझे मिलने के लिए लंदन आए और मुझसे मिलकर, "अब कठिनाईयां दूर होंगी" यह आत्मविश्वास साथ लेकर गए। दो हफ्तों बाद मेरी एक व्यक्ति से बात हुई जिन्होंने पहले अपना नाम और पता बताया और बाद में उन्होंने मुझसे कहा कि ''मेरा काम मकान के संबंध में था और उस समय आपने कहा था कि आपसे पूछे बिना मकान खरीदना नही। तो अब मैं और मेरी पत्नी ने तीन घर देखे हैं और इन तीनों में से आप जिस

मकान के लिए मान्यता देंगे वह मकान हम खरीद लेंगे।" इससे यह पता चलता है कि परदेश में भी श्रद्धा होती है और उनकी श्रद्धा का अनुभव मुझे लंदन में हुआ क्योंकि यदि वह व्यक्ति, मैं जिस मकान को मान्यता दूँगा वही मकान खरीदने वाले हैं तो उनके मकान के लिए विचार करना यह मेरा धर्म है। फिर उनके मकान के संबंध में विचार करके मैने उन्हें एक मकान का नम्बर बताया। तो वही घर उन्होंने अगले हफ्ते खरीद लिया और उसकी रजिस्ट्री भी हो गई। बाद में उन्होंने जब यह आनंददायी वार्ता मुझे टेलिफोन करके बताई तब मैने भी उन्हें आशीर्वाद दिए। हमारे इस टेलिफोन के संभाषण से यह विषय वास्तव में समाप्त हुआ था लेकिन दूसरे दिन सुबह मेरे नाम का रजिस्टर्ड खत आया जिसमें खत के साथ एक सौ एक पौंड का (हमारे दो हजार रूपये) चैक भेजा था और मैने जो उनका अभिनंदन करके उन्हें आशीर्वाद दिए थे उसके लिए उन्होंने मनःपूर्वक आभार प्रदर्शित किए थे। वास्तव में जब वे सवाल पूछने आए थे, तब उन्होंने उस समय गुरूदक्षिणा स्वरूप जो रकम दी थी वह अधिक थी इसलिए उनका यह जो काम हुआ उसके कारण मुझे उनसे कुछ भी अपेक्षा नहीं थी लेकिन खुद को जो मुझ से लाभ प्राप्त हुआ उसका मूल्य समझकर उन्होंने इतने दूर से वे पैसे भेजकर कृतज्ञता प्रकट की थी।

लंदन जाने के पहले बीस साल से मैं भारत में यह कार्य कर रहा हूँ मगर यहाँ अपनी समस्याओं का हल हुआ है यह बताने के लिए भी लोग वापस नहीं आते हैं। कुछ समारोह, गुरूपूर्णिमा तथा उर्स आदि महत्वपूर्ण दिन हम मनाते हैं मगर उनके बारे में कई दिन पहले निवेदन लिखकर भी उस दिन न आने वाले लोग होते हैं क्योंकि शायद वे सोचते हैं कि उन्हें उस दिन 'गुरूदक्षिणा', गुरूजी को दक्षिणा अर्पण करनी पड़ेगी! यह पाप न हो ऐसी सावधानता ये लोग बरतते हैं। यह अनुभव स्वदेश में आया था तथा इसके विपरीत अनुभव परदेश में आया ! यह सब लिखने का उद्देश्य यह है कि सिर्फ 'पैसा कमाना' यह कार्य न होकर जो लोग इस कार्य से जुड़े हुए हैं वे इस कार्य के बारे में कितने 'सचेत' हैं इसका अनुभव मैने लिया। वास्तव में यह कार्य किसी एक व्यक्ति के लिए न होकर वह पूरी दुनिया के लिए है अतः खुद की समस्या हल होने पर उस कृपा का लाभ अन्य दुःखी लोंगो को कैसे मिलेगा इसका विचार ये लोग करते रहते हैं।

आपको कुछ ज्ञान हो इस विचार से मैंने उपर कुछ अनुभव लिखे हैं। इसके अलावा वहाँ एक ऐसी संस्था है जिसका अध्ययन विषय 'परलोक' है। परलोक यानि मरणोपरात्त जीव की अवस्था क्या होती है ?, मृत्यु के बाद उस जीव का कोई कार्य है या नहीं, इसके बारे में वहाँ शोध ा जारी है। अतः ये मृत आत्माएं इहलोक से हितसंबंधित हैं या नही? यह जानने के लिए वहाँ के मध्यस्थ उनसे संबंध जोड़ते हैं। संबंध जुड़ जाता है या नहीं, तथा ये आत्मा सप्तलोक में से ही आती हैं या नहीं इसका भी शोध जारी है। मगर ऐसे आत्मा परलोक से आने के लिए अत्यंत उत्सुक होते हैं तो भी उनका परलोक में निश्चित स्थान कौन सा है यह भी समझ लेना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि कई बार ये आत्माएं कुछ भी बोल देते हैं और 'मैं अमुक हूँ ' ऐसा परिचय हमें देते हैं पर उनकी निश्चित दिशा हम जान नहीं सकते इसलिए हम उन आत्मा को 'विभूति' मानते हैं। 'विभूति' यह शब्द उच्चार करने के लिए आसान है लेकिन उस अवस्था से वे स्वेच्छा से ईहलोक में आने के लिए इच्छुक नहीं होते हैं। किसी माध्यम को यह इच्छा हो कि जगत् के कल्याण के लिए उसमें विभूति का प्रवेश हो तो भी उसकी इच्छा के अनुसार यह कार्य नहीं होता। विभूतियों को उस माध्यम के बारे में यह सत्य मान्य होना आवश्यक है कि इस माध्यम के जरिये लोक कल्याण कार्य का विषय काया वाचा मन से हो रहा है। और तभी वे विभूति सप्तलोक से ईहलोक में आते हैं। विभूति यह आत्मा ही है लेकिन उनका स्थान स्वर्गलोक में है। वह स्थान तब प्राप्त होता है जब ईहलोक या परलोक में आत्मा की कोई भी इच्छा बाकी नहीं होती है। हम आसानी से 'विभूति' इस शब्द का उच्चार करते हैं लेकिन वे बहुत श्रेष्ठ हैं। उनका स्थान पांचवे लोक से सांतवे लोक तक होता है। विभूति मध्यस्थ का माध्यम योग्य है या नहीं यह परीक्षा करते हैं।

जगत् में बहुत से लोगों के माध्यम से 'संचार' होता है। संचार यह अवस्था सच है या झूठ है यह विवाद की बात है। किसी भी आत्मा का शरीर में प्रवेश होना इसे लोग 'संचार' कहते हैं लेकिन विभूतियों का संचार होने के लिए माध्यम का आचार ईश्वर जैसे होना आवश्यक है और जिस प्रकार ईश्वर को लगाए भोग में कोई भी इच्छा नहीं होती है उसी प्रकार

माध्यम की, इच्छा उसके जीवन में जरासी भी नही रहनी चाहिए। कोई लोग संचार के नाम से अज्ञानी लोगों को लूटते हैं वह संचार ना होकर 'हिंसाचार' है यह निश्चित रूप से समझ लेना आवश्यक है।

'संचार' यह एक अवस्था है इसके अलावा परकाया प्रवेश यह एक साधना है। यह साधना क्या है इसका ज्ञान बहुत से लोगों को नहीं होता है। इसलिए परकाया प्रवेश यह 'कर्णपिशाच' (कान में बोलने वाला भूत) है ऐसा लोग कहते हैं। वास्तव में परकाया प्रवेश का अर्थ यह है कि पहले लोक से सातवें लोक तक या उसके अलावा जो आत्माएं पृथ्वी से नजदीक हैं उनसे संपर्क करना। इसमें पहली अवस्था में 'जीवात्मा' फिर उसके बाद प्रगति के अनुसार 'आत्मा' और 'परमात्मा' इन अवस्थाओं का लाभ प्राप्त होता है। मतलब परकाया प्रवेश में तीन अवस्थाएं होती हैं। साधक को इसका अहसास होना आवश्यक है कि इस माध्यम में परकाया प्रवेश होकर जीवका प्रवेश हुआ है या परमात्मा का प्रवेश हुआ है। बहुत से लोग पहली अवस्था का लाभ प्राप्त करते हैं क्योंकि पहली अवस्था के जीव, जीवात्मा, त्रिकाल का भविष्य बता सकते हैं जिसके कारण लोग इस अवस्था पर विश्वास करते हैं और उन्हीं को 'विभूति' कहते हैं।

लेकिन 'परकाया प्रवेश' और 'संचार' ये अलग अलग अवस्थाएं हैं। परकाया प्रवेश में जो आत्मा ईह जगत् में आती है वह किसी एक निश्चित कार्य से प्रवृत्त होकर आती है। वह आत्मा उसकी खुद की ईच्छा वासनाओं की पूर्णता के लिए नहीं आती है। उसका पिछले जन्म का जो कोई कार्य शेष रहा होता है उसकी पूर्णता के लिए वह आत्मा ईहलोक में आती है। ऐसे समय उस आत्मा को परलोक में कौनसा स्थान प्राप्त है, इसका ज्ञान होना आवश्यक होता है। ये आत्माएं स्वयं अपने आप होकर पृथ्वी पर नहीं आ सकती है, बल्कि उन्हें किसी मध्यस्थ या माध्यम की आवश्यकता होती है और उस माध्यम के जरिए परलोक की वह आत्मा ईहलोक में उसका ईष्ट कार्य कर सकती हैं। मृत्यु के बाद परलोक में जो स्थान प्राप्त होता है वह स्थान जीवन व्यतीत करते समय के आचार विचार और आहार इन पर निर्भर है। केवल ईश्वर के पीछे पड़ने से ईश्वर हमें

मुक्त करते हैं यह सच नहीं है, उसके लिए हमे ईश्वर का सहारा आवश्यक होता है। लेकिन ईश्वर हमें उनकी प्राप्ति नहीं करा देते हैं, उनकी प्राप्ति हमारे आचार विचार और जिस धर्म में हमने जन्म लिया है उस धर्म के अनुसार का हमारा आहार इन पर निर्भर है। आहार योग्य होना आवश्यक है क्योंकि आहार का संबंध अन्नमय कोष से होता है लेकिन मृत्यु के बाद के जीवन से अन्य चार कोषों का संबंध होता है। इसलिए जन्म लेने के बाद मरते दम तक केवल 'खाते रहना' ऐसा नहीं करना चाहिए। जो अन्न हम खाते हैं उसमें हमारी तीव्र वासना होती है। उस वासना को धीरे धीरे उम्र के अनुसार कम करने के बाद, वह वासना इतनी कम करना आवश्यक है कि केवल जितना अन्न हमे जीने के लिए आवश्यक है उतना ही अन्न खाना चाहिए। और हमारे खाने मे जरा सी भी वासना नहीं होनी चाहिए बल्कि उसकी अपेक्षा हमारे खाने में वास (गंध) होना आवश्यक है। यहां 'वास' शब्द का मतलब खाने की चीज का गंध ऐसा नहीं है बल्कि 'वास' शब्द का अर्थ जिस जिसका अनुभव किया उसका 'समाधान' यह है। अगर यह प्राप्त हुआ तो आत्मा को आगे की अवस्था प्राप्त होती है। नही तो आत्मा श्राद्ध करा लेने के लिए पीछे पड़ी रहती है।

जब लंदन जाने का निर्णय हो रहा था तब मेरे मन में यह विचार था कि वहाँ जाने के बाद क्या करना है ? वहाँ मनोरंजन में सौ प्रतिशत जीवन व्यर्थ खर्च हो सकता है और यदि वहाँ अध्ययन करना तय किया तो संपूर्ण जीवन भी पर्याप्त नहीं होगा ऐसा यह शहर है। जगत् में बहुत बड़े बड़े शहर हैं, मुंबई, कलकत्ता, टोकियो, न्यूयार्क इत्यादि, लेकिन उन शहरों को कोई भी अपना शहर नहीं कह सकता है क्योंकि युगयुग के अनुसार, क्या क्या बदलाव होते गए यह कहने लायक संस्कृति आज इन किसी भी शहर में नहीं है, यह साफ दिखाई देता है। आज हिंदुस्तान में भी बहुत शहर हैं लेकिन वहाँ रहने वाले समाज की संस्कृति क्या है यह सवाल है। उनके आचार विचार आधे भारतीय और आधे परदेशी होने के कारण उनकी संस्कृति कौनसी कह सकेंगे ? आज हम ऐसा अनुकरण करते हैं और हमारे इस जीवन को आधुनिक जीवन के प्रति स्वाभिमान है

ऐसा कहते हैं। बहुत से भारतीय जब भारत के बाहर जाते हैं तब वहां जाने के बाद 'हम भारतीय हैं' ऐसा कहने में भी उन्हें शर्म महसूस होती है।

एक हकीकत खास करके लिख रहा हूँ। हमारे नित्य जीवन में जैसा बर्ताव हम करते हैं उस बर्ताव के कारण हमारे ही भाईबंद हमे backward (पिछड़े हुए') कहते हैं। इंग्लैण्ड़ जाने के छह महिने बाद भारतीय हाई कमीशनर ने मुझे भोजन समारोह में आमंत्रित किया था। जहाँ मैं रह रहा था वह मकान एक भारतीय व्यक्ति का था। उनको भी उस भोजन समारोह का आमंत्रण था। तब उन्होंने मुझे पूछा कि, 'हाई कमीशनर के यहाँ भोजन के लिए जाना है तो क्या आप पाश्चात्य रीति से खाना खा सकेंगे ? ' मैने जवाब दिया कि, 'वहाँ जाने के बाद देखेंगे ' उस दिन उस भोजन समारोह के लिए पाँच भारतीय और आठ अंग्रेज इतने लोगों को आमंत्रण था। हम सब वहाँ गए। खाना भारतीय था। मेरे शाकाहारी होने के कारण जिन्होंने आमंत्रण दिया था उन्होने होटल से शाकाहारी खाना मंगवाया था। वास्तव में यह निजी घटना है लेकिन आत्मनिवेदन में सब लिखना आवश्यक होता है और परम पूज्य बाबा ने मुझे लंदन भेजा था वह मौज मजा करने के लिए नहीं भेजा था, बल्कि हमारे भारतीय लोग परदेश जाकर अपना देश, धर्म, न्याय, नीति कैसे भूल जाते हैं यह सीखने के लिए भेजा था।

खाने के टेबल पर जिन्होंने हम सबको आमंत्रित किया था उन्होंने indirectly यह सवाल पूछा कि 'आप क्या लेंगे' । छह महिने में, इस सवाल से मैं माहिर हुआ था इसलिए मैने कहा कि 'आप सब लोग जो लेना चाहते हैं वह लीजिए मुझे केवल ॲपल ज्यूस (सेब का रस) दीजिए।' मेरा यह जवाब सुनने के बाद वहाँ के भारतीय लोगों के मुँह देखने लायक हुए क्योंकि एक तो शाकाहारी खाना और उसके साथ फ्रूट ज्यूस (फलो का रस) यह सुन कर वे बहुत निराश हुए। मद्य और मांसाहारी खाना हो तो जिसे भूख नहीं है वे भी खाना खाने बैठते हैं ऐसी स्थिति में मेरे जैसे शाकाहारी आदमी को भोजन के लिए आंमंत्रित करना यह पाप ही है लेकिन ऐसा उन्हें लगता था। लेकिन, उन्होनें "जिस देश में हम रहते है

वहाँ के रहिवासी कैसे बर्ताव करते हैं यह तो कम से कम सीखनी चाहिए"। यह बात भी हमारे भारतीय लोगो ने नजर अंदाज कर दी है। मेरा जवाब सुनकर जिन्होंने हमें आमंत्रित किया था वे निश्चित रूप से यह समझ गए कि लंदन आकर भी मैं भारतीय हूँ। फिर उन्होंने अन्य लोगो को पूछा कि आप लोग क्या लेंगे ? 'पंगत या संगत' ? यानि सबके समान या खुद की इच्छा के अनुसार ? ऐसे पूछने पर वहाँ के अंग्रेज लोंगों ने कहा कि 'श्री भागवत' जो लेंगे वही हम लेंगे' लेकिन अन्य लोग जिन्होंने केवल पहनावा ही अंग्रेज लोगों के जैसा किया था उन्होंने कहा कि ' हम व्हिस्की लेंगे ' उसके अनुसार व्हिस्की मँगवाई गई। मुफ्त में मिले तो भी पीने पर और खाने पर कुछ बंधन होना आवश्यक है यह बात भी तब वहां आए लोग भूल गए थे। क्योंकि व्हिस्की का धर्म यह है कि हम कौन हैं यह भूल जाना, वही व्हिस्की है और वह ज्यादा हुई तो 'रिस्की ' है यानि खतरा है। भोजन समारोह में हम सब के लिए जो खाना मंगवाया था वह three course तीन क्रम में था। और खानसामा वह लाके देते थे। लेकिन खाते समय खानेवाले लोग यह सब भूल गए थे कि, "हमें भोजन का आमंत्रण किसने दिया है और इस भोजन समारोह के मुख्य निमंत्रित कौन हैं, तथा जिन्हें निमंत्रित किया गया है वे भारत से इतने दूर किस उद्देश्य से आए हैं वह विषय ग्रहण करना आवश्यक है"। इसके कारण मुझे वहाँ ऐसा अनुभव हुआ कि मैं इंग्लैंड में नहीं हूँ बल्कि भारत में हूँ, वैसे ही वहाँ के भारतीय पांच हजार मील की दूरी पर इंग्लैंड में ना होकर मुंबई में हैं ऐसा बर्ताव करते उन्हे देख कर मुझे उनपर तरस आया क्योंकि हमारे लोगों की परदेश में इस प्रकार की कीर्ति होकर सामाजिक दृष्टि से हमारा बहुत अधःपतन हुआ है।

वास्तव में हम जन्म से भारतीय हैं यह हमारे लिए भूषण की बात है। हमारे इस भारत में किस चीज की कमी है ? निसर्ग की देन हमें प्राप्त होकर भी उसे नजरअंदाज करके हम जीवन जी रहे हैं। अंग्रेज लोगों ने हम पर सौ साल राज किया लेकिन उन्होंने हमारे आचार विचार नहीं लिए। लेकिन उनके जैसा बर्ताव, यही 'संस्कृति' के नाम पर हमें धब्बा लग गया है और 'धोबी का कुत्ता ना घर का ना घाट का' ऐसी हमारी अवस्था हुई है।

स्वयं के मकान को 'वास्तु' कहते हैं। धर्मशाला को 'वास्तु' नहीं कहते हैं। घर की चार दिवारें हमारा जीवन बनाती हैं। हमारा जीवन यह हमारा धर्म है और इस धर्म के अनुसार बर्ताव करना यह सीख हमें हमारी वास्तु से प्राप्त होती है। इसलिए इस वास्तु की जितनी शुद्धता हम बनाए रखेंगे उतने ही हमारे आचार विचार पोषक रहकर हमारे परिवार के सदस्यों को सुख शांती समाधान प्राप्त होगा। लेकिन जीवन मतलब रोज का जीवन है इस विचार के कारण जीवन का मूल्य हम समझ नहीं पाते हैं।

परदेश में वास्तु की प्रतिष्ठा (महत्ता) नहीं होती है इसलिए वहाँ हर एक का बर्ताव किस प्रकार होता रहता है यह वहीं देखे बिना समझ नहीं आएगा। वहाँ पिता बेटा, पति पत्नि ये रिश्ते जैसे किराए के रिश्ते हुए हैं और उसी की प्रतिध्वनि हमारे यहाँ भी लगभग आ गई है इसका कारण प्रेम इस भावना का अभाव है। हमें औरों पर प्रेम करने के लिए और औरों को हम पर प्रेम करने के लिए हम दोनो के भी आचार विचार एक दूसरे से पोषक होना आवश्यक होता है। इसके कारण पहले जमाने में हमारे धर्म में आचार विचारों का ईश्वर से भी अधिक महत्व था। लेकिन आज हर एक व्यक्ति इच्छानुसार बर्ताव करता है। आज जो जागतिक अशांतता है इसका जड़मूल हम में ही है।

ऊपर लिखे भोजन समारोह के बाद पूरे साल तक मैं किसी के भी घर भोजन के लिए नही गया। लेकिन एक जर्मन परिवार के घर मैं हर बुधवार के दिन जाता था। वह जर्मन महिला उनके भारतीय स्नेही के (दोस्त के) सूचना के कारण मुझे मिलने आई। उनके स्नेही ने (दोस्त ने) यानि दिल्ली के हमारे भक्त ने उन्हें लिखा था कि, 'मेरे गुरू लंदन में आए हैं तो तुम उनसे अवश्य लाभ प्राप्त कर लों'। उन्होंने खत में आगे यह लिखा था कि 'मेरे गुरू से मैं दस साल से परिचित हूँ। हिंदुस्तान से लंदन में बहुत से लोग आते हैं और अध्यात्म मायने क्या है? इस विषय पर व्याख्यान देते हैं। लेकिन उनमें सच्चे कितने है और धन कमाने वाले कितने हैं यह प्रमुख प्रश्न है क्योंकि आज कल अध्यात्म यह पैसा कमाने का व्यवसाय हुआ है। लेकिन मेरे गुरू वैसे नहीं है। वे अत्यंत आसान

पद्धति से यह विषय और मार्ग इनका विवेचन (स्पष्टीकरण) करते हैं और नित्य साधना सूचित करते हैं। जो हमें नित्य नियम से करना आवश्यक होता है। इसलिए तुम मेरे गुरू से जरूर मिलो और अपने पति को भी उनसे मिलाओ। उससे आपको, मुझे जैसी शांती प्राप्त हुई है वैसी शांती प्राप्त होगी। मेरे गुरू लंदन में हैं और उनका पता इस प्रकार है।" ऐसा खत उन्होंने उस जर्मन परिवार को लिखा और मुझे भी खत लिखकर वैसे ही सूचित किया।

फिर भी यह खत आने के बाद प्रत्यक्ष भेंट होने के लिए पंद्रह दिन लगे क्योंकि वे दोनों जहाँ रहते थे वह भाग लंदन का 'सुस्वागतम' कह सकेंगे ऐसा था, इसलिए उन्हें संकोच हो रहा था। वे विचार कर रहे थे कि जिस मेहमान को वे आमंत्रित करना चाहते हैं उनके आचार विचार कैसे होंगे ? उनके इस संभ्रम में एक हफ्ता गया। बाद में उन्होंने यह निर्णय लिया कि वे मुझसे मिलने जाएंगे क्योंकि तब तक उन्हें भारत से उनके स्नेही का दूसरा खत आया कि मेरे गुरू से तुम्हारी भेंट हुई या नहीं ? इसलिए अब मुझसे मिलना उनके लिए आवश्यक हो गया। इसके अनुसार उन्होंने मुझसे टेलिफोन पर जब बात की तो मैने उन्हें बताया कि शाम को छह बजे आप मुझ से मिलने आईए। इस संभाषण के अनुसार शाम को छह बजे वे आई और उन्होंने दरवाजा खटखटाया। मैने उन्हें अंदर आने को कहा और उनके स्वागत के लिए दरवाजे तक गया। दरवाजा खोलने पर उन्होने मुझे कहा कि " मैं डी0बी0 भागवत से मिलना चाहती हूँ।" तो मैने उन्हें कहा कि, " आप जिस व्यक्ति से मिलना चाहती हैं वह व्यक्ति आपके सामने है "। यह सुनकर वे इतनी आनंदित हुई कि सारा संकोच छोड़ कर उन्होंने मुझे गले लगाया। बाद में मैं और वे एक दूसरे की ओर देखते रहे फिर मैंने कहा 'आईये बैठिये '। तब उन्होंने कहा कि "डिअर दादा, हम हमारे घर जाकर सब बातें करेंगे। यदि आज आपकी किसी से भेंट तय नहीं है तो हम अभी मेरी मोटर से हमारे घर जाएंगे "। लंदन में बहुत मोटर गाड़ियाँ हैं लेकिन आज तक मेरे हिस्से एक भी मोटर नही आई थी। सर्वप्रथम इन्हीं की गाड़ी मुझे बैठने को मिली। मेरी पोशाक उन्हें इतनी पंसद आई कि उन्होने दस बार मेरी

पोशाक की सराहना की। हम जब उनके घर जा रहे थे तब रास्ते में उन्होंने मुझे पूछा कि आप लंदन में कहाँ कहाँ घूमें ? क्या क्या देखा ? मैने उन्हें कहा कि लंदन देखने की अपेक्षा मुझे बहुत कुछ सुनाने की इच्छा है और उसी के लिए मैं लंदन आया हूँ। मेरा यह कहना सुन कर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि हजारों यात्री लंदन देखने आते हैं और मिर्च मसाला लगा कर लंदन का वर्णन करते रहते हैं। मैं ही ऐसा एक परदेसी उन्हें मिला कि जिसे लंदन देखने की इच्छा नहीं थीं। इतने में उनका घर आया। उनके घर जाते समय वह मोटर चला रही थी लेकिन मेरे विचारों की गति मोटर की गति से भी अधिक थी, इसका कारण यह था कि भारत में सैकड़ों लोगों से मिला था लेकिन आजकी यह भेंट अलग थी। ईश्वर से मिलते समय भी मुझे भय नहीं था लेकिन आज जर्मन परिवार से होने वाली ये भेंट अलग थी।

मोटर से उतर कर हम लिफ्ट से पांचवे माले पर गए। घर में प्रवेश करने के पहले अब किससे भेंट होगी यह उत्सुकता मेरे मन में थी, तब उस जर्मन महिला ने मेरे बारे में पति को कहते समय मेरे नाम का इस तरह उच्चार किया कि उसे लगा कि कितने जन्मों से हम मिलते आए हैं। उनके पति मेरे नजदीक आकर खड़े रहे और उन्होने मुझसे कहा कि "मेरा नाम मायकेल है ' और आपका नाम मेरी पत्नि ने अभी जोर से पुकार कर कहा है कि 'माय डियर दादा'। उसने यह जो उच्चार किया इसी में सब कुछ आया है"। मनुष्य ने जन्म लेकर यही प्राप्त करना है कि परदेस में भी अपनी कीमत का पता चले। हमारे यहां भक्तों का बर्ताव दो तरह का होता है यह मुझे उस समय समझ में आया। मेरे मुख पर "दादा" लेकिन मन में सदैव सुख का चिंतन और उस सुख की प्राप्ति दादा बाबा जब करा देंगे तब सब ठीक है। जर्मन परिवार के प्रेम का अनुभव मेरे लिए नया नहीं था लेकिन इतने प्यार से पुकारने के लिए धैर्य की आवश्यकता होती है। परदेश में अपने पति के सामने दूसरे आदमी को 'माय डियर' (मेरे प्यारे) कहना इतना आसान नहीं है। इस घटना से मन और उसकी हुई प्रगति का अंदाज आ जाता है।

आखिर हम तीनों ने एक दूसरे से कहा कि 'हमारी यह भेंट ईश्वर ने कराई है। इसलिए इस भेंट में संकोच नहीं करना चाहिए। तब उन्होंने मुझे कहा कि 'अगर आप खुले दिल से यहां रहेंगे तो हम वह हमारा सौभाग्य समझेंगे'। उस रात, रात के दो बजे तक हम बातें कर रहे थे। उसके बाद भोजन का विषय आया। उन्होंने खाना पकाया था। जब मैने कहा कि "मैं मांसाहारी नहीं हूँ। केवल शाकाहारी हूँ" तब वे दोनो हंसने लगे क्योंकि उन्हें लगता था कि शाकाहारी का मतलब बहुत सारी साग सब्जी और उसमें मटन या मच्छी। मेरे कहने से उन्हें पता चला कि 'शाकाहारी' का क्या अर्थ है। तब उन दोनो ने मुझसे क्षमा याचना की और मुझसे कहा कि अगली बार हम सब शाकाहार करेंगे। और आप जब तक लंदन में हैं तब तक हर बुधवार के दिन यहाँ आईए और आपको जो कुछ कहना है वह दिल खोल कर बोलिये। बाद में मुझे उनकी जानकारी हुई कि वे दोनो उपाधिधारी है। मायकेल का विषय 'राजकारण' और उनकी पत्नि का विषय 'तत्वज्ञान' है। उनके साथ एक साल कैसे बीत गया यह मेरे समझ मे नहीं आया।

लंदन में छुट्टी के दिन मतलब शनिवार के दिन मैं बाहर घूमने जाता था तब लंदन में देखने लायक क्या क्या है यह समझ आया। लंदन में प्रमुखतः अजायबघर और बगीचे देखने लायक हैं वैसे ही वहाँ पुराने जमाने की पेंटिग्ज (चित्र) भी देखने लायक थी। चित्रकला सीखना मेरा मूल स्वभाव था। घर की परिस्थिति के कारण मैं चित्रकला नहीं सीख सका। लेकिन बाद में मैने जगत् से चित्रकला सीखी। क्योंकि जगत् यह एक रंगभूमी है। इस भूमी में अलग अलग रंग है, फिर भी यह भूमी एक ही है। लेकिन इसका पता इन रंगीले लोगों को नहीं होता है। इसके कारण यह जगत् दुखी है ऐसा हम मानते हैं।

मूल रंग तीन है। और उनसे सात रंग बनते है। ये रंग हमेशा हमें दिखाई नहीं देते हैं, लेकिन इन तीन रंगो में ही विश्व का कार्य होता रहता है। प्रातःकाल में जो रंग हमें क्षितिज पर दिखाई देता है वही रंग बारह घंटो के बाद फिर से नजर आता है। और इन्हीं रंगो को उदय और अस्त

कहते हैं। जो रंग 'उदय' में है उसका अर्थ स्थिति है और 'अस्त' यानि शाम इसका अर्थ उत्पत्ती है। जन्म लेने से उत्पत्ती + स्थिति यानि लय यानि जीवन ऐसा अर्थ मैने उस जर्मन पति–पत्नी को कहा। विश्व की निर्मिती और कार्य, तथा जन्म लेने के बाद अपना कार्य क्या है इतना विषय मैने उनके सामने रखा। मायकेल और सिल्वा विद्याभ्यासी थे। जब मैं उनके घर गया था तब मैने वहाँ अलग अलग विषयों की किताबों से भरी अलमारी देखी थी इनमें पॉल ब्रँटन की वेद संबंधित किताबें, चिन्मयानंद की लिखी किताबें आदि किताबें मैने देखी थी। इसलिए मैने यह विचार किया कि मेरा कहना उनसे कुछ अलग होना आवश्यक है यदि वही मैने दोहराया तो वहीं तत्व है ऐसा उन्हें लगेगा। पहले जो सिखाया गया है उससे कुछ अलग सिखाना अब आवश्यक है, ऐसा तय करके मैं घर आया।

दूसरे दिन बृहस्पतिवार था। सुबह पूजा के बाद मैने बाबा से कहा कि, " यहाँ का जगत् अलग है। आप मुझे वापस बुलाईये। यहां के आचार विचार, यहाँ की भाषा ये मैं अवगत नहीं कर सकता हूँ। लंदन का नजारा मैने देखा है और समझा है इसलिए बंद मुट्ठी रख कर ही यहां से वापस जाना मेरे लिए ठीक होगा।" यह कह कर मैं बाबा के सामने रो पड़ा लेकिन बाबा से कुछ जवाब नहीं मिला। इतने में सुबह के दस बज चुके थे। आखिर नाश्ता करके मैं घूमने निकला और मैने मन में विचार किया कि बहुत दूर जाकर बाबा क्या कहते हैं इस पर विचार करूंगा। तभी मकान के नजदीक, बाहर के रास्ते पर ही सिल्वा मुझे मिल गई। उसने मुझसे कहा कि, मायकेल कुछ काम के लिए पेरिस गए है और शाम को वापस आयेंगे। मायकेल ने मुझे जाते समय कहा कि 'इस बीच की अवधी में तुम दादाजी के घर जाकर उनसे मिलो, वे तुम्हें निश्चित मिलेंगे'। सिल्वा के आने के कारण मुझे मेरा कार्यक्रम बदलना पड़ा। फिर सिल्वा और मैं एक गार्डन में गए, चारो और हरियाली थी। खाने में व्यर्थ समय ना जाए इस विचार से सिल्वा घर से आते समय ही खाना साथ लेकर आई थी। फिर सिल्वा ने ही कल का विषय आरंभ किया। मैने सिल्वा से कहा कि तुम्हारे पास तत्वज्ञान की बहुत सारी किताबे हैं तो तुम ही कोई विषय

का आरंभ करो, बाद में मैं बोलूंगा। तब उसने कहा कि, 'आज तक सैकड़ों किताबे पढ़ने से सिर चकरा गया है। इसलिए जिससे मेरा समाधान होगा ऐसा आप ही कुछ कहिए। होटल में जैसे मैन्यू कार्ड (पदार्थों की सूचि का कार्ड) होता है वैसा हमें नही चाहिए। हम दोनो की पार्श्वभूमी तैयार हो चुकी है।' ईश्वर और धर्म झूठ हैं ऐसा तो हम नहीं कहेंगे लेकिन, "ईश्वर का क्या अर्थ है ? ईश्वर किसे कहना है? धर्म का क्या मतलब है ? इस जगत् में धर्म के नाम पर विडंबना हो रही है फिर भी ईश्वर और धर्म का अर्थ क्या है ? "इनके जवाब अब तक नहीं मिल रहे हैं। जिस तत्वज्ञान को हमने पढ़ा है उनके लेखको ने स्वयं को इस मार्ग पर झोंक दिया है लेकिन हमारे जैसे आदमी प्रचिती आने पर ही उस तत्व ज्ञान को सच कह सकेंगे। भारत से बहुत से लोग आते है और व्याख्यान देने के बाद आखिर में यह मार्ग गहन है ऐसा ही मत प्रदर्शन करते है। इसलिए इस मार्ग पर बोलना हमें विष जैसे लगने लगा है। मेरे ऐसे कहने से आप गुस्सा मत होईये। हमारी श्रद्धा है भी और नहीं भी। इसी संभ्रम में हम है। आपको हमारे बारे में और हमारे जैसे अन्य लोगों के बारे में पता नहीं है। दूसरे महायुद्ध में हमारे माता पिता बम (Bomb) के हमले के कारण गुजर गए। फिर हमारी परवरिश रेडक्रास में हुई। इसलिए मुझे और मायकेल को 'माता पिता' और उनका प्रेम' इसका क्या अर्थ है इसके बारे में कुछ मालूम नहीं है। रेड़क्रास कैम्प में हम हररोज प्रार्थना करते थे और प्रार्थना के बाद धर्मगुरू कहते थे कि, "युद्ध जल्द ही समाप्त होगा और ईश्वर आपका रक्षण करेगा"। इसी विश्वास पर हम आज तक जी रहे हैं। लंदन यह हमारा शहर नहीं है, हमें हमारा जन्म स्थान का पता मालूम नहीं है और अब अगर वह पता मालूम हुआ तो भी अब हमारा वहाँ कौन होगा ? केवल जीने के लिए हमने लंदन शहर पंसद किया है। हमारा देश कौनसा है यह अब ईश्वर ही जाने। हमारे दुख भी ईश्वर ही जानते हैं इसलिए आप यहाँ आए और हमसे मिले। इसके कारण हम ईश्वर के जन्म जन्म के ऋणी हैं। यह जगत् कितना विशाल है और ऐसे विशाल जगत् में महायुद्ध हुआ तब ईश्वर ने हमारा रक्षण किया इसलिए हर रविवार के दिन चर्च में जाना हमारा धर्म है, हमारा कर्त्तव्य है यह समझकर हम जी रहे हैं। इस संपूर्ण जगत् में मेरा कोई नहीं है और मायकेल का भी कोई होगा ऐसा मुझे नहीं

लगता है। इसी के कारण जब आप पहली बार मिले तो "ममता" का अर्थ हमारी समझ में आया। ममता का स्पष्टीकरण किताबों में बताया गया है लेकिन ममता क्या है यह आपसे मिलने के बाद ही हमारी समझ में आया।

इतनी सी आशा पर भी मनुष्य जी सकता है, यह मैं उस दिन समझ गया। शाम को मैं मेरे घर आया और सिल्वा उसके घर गई। उस दिन से मैं यह विचार करने लगा कि यह जगत् क्या है। इस जगत् की गहराई पूरी तरह से समझ लेना आवश्यक है। लोग एक दूसरे को मिलते हैं तब उस भेंट में जीवन के कुछ गणित का समावेश है, यह कोई नहीं समझता है और इसके कारण एक दूसरे से मिल कर भी उस मिलने के कीमत शून्य होती है ।

अगले हफ्ते मैं उनके घर गया था। तब खाने मे केवल शाकाहारी चीजें बनाई गई थी। हमारे यहां गैर आचार विचारों से बर्ताव करना यह भूषण माना जाता है लेकिन उन दोनो ने स्वयं मांसाहारी होकर भी केवल मेरी संगती में (मेरे साथ) समय व्यतीत करने के लिए शाकाहारी खाना पसंद किया। इससे यह सिद्ध होता है कि निश्चय करने से व्यसन (नशा) हमारे आधीन हो सकता है।

इस प्रकार दिन बीत रहे थे। मैंने मायकेल और सिल्वा को हमारी समिती का कार्य क्या है इसकी पहचान करा दी। जन्म लेने वाले प्रत्येक मनुष्य का विकास होना आवश्यक है। वह विकास केवल पूजा पाठ से नहीं हो सकता उसके लिए नित्य पंद्रह मिनट की साधना करना आवश्यक है। यह साधना प्रामाणिकता से की गई तो हम धीरे धीरे ईश्वर के पास जा सकते हैं। ईश्वर के पास, ईश्वर की ओर नहीं क्योंकि ईश्वर की ओर हम आखिर में कोई इलाज ना होने के कारण जाते हैं। इन दो अवस्थाओं में बड़ा अन्तर है क्योंकि एक अवस्था अनंत है और दूसरी अवस्था अंत की है। यह समझ लेकर जो कोई साधना करता है उसे इह जगत् में ही ईश्वर की भेंट होती है। जैसे हमें ईश्वर की सहायता की आवश्यकता होती है वैसी हमें भी औरों की सहायता करना इसमें कोई नीचापन नही है। बल्कि

हमारी मदद औरों को उपकृत (उपकार) होती है इतना ही ज्ञान और साधना, मैं भारत में सबको सिखाता हूँ और परदेश में आकर उसी साधना के बारे में बताता हूँ। चमत्कार आदि करना मेरे लिए मना है। चमत्कार करना यानि सनकी (पागल) जैसा बर्ताव करना और बोलना ऐसा मैं समझता हूँ। चमत्कार का कोई उपयोग नहीं है। जन्म लेने वाले हर एक को मृत्यु है ही लेकिन जब तक हमें अहसास है तब तक ईश्वर की शरण में जाना यह हमारा कर्त्तव्य है।

इतना विषय मैने उन्हें अनेक मिसाल देकर समझाया और उन दौंनो को 'सेवक' के रूप में तैयार किया। और आज भी वे दोनो सेवक के कर्त्तव्य निभा रहे हैं, इस बात का मुझे फक्र है। मैने इंग्लैंड़ जाकर धन नहीं कमाया लेकिन इन्सानों से नाता जोड़ा, इसलिए उन्हें मेरी और मुझे उनकी सदैव याद आती है। यह परम पूज्य बाबा की ही कृपा है ऐसा मैं मानता हूँ।

करीबन एक साल के बाद मैने भारत वापस आने की तैयारी की। इस काल मे मैने संपूर्ण जगत् देखा यह कहना भी ठीक होगा क्योंकि लंदन शहर में मैंने जगत् के सभी जगह के लोग, उनकी भाषा, उनकी रहन सहन देखा मतलब कुल मिलाके सब देखा। दूर से पर्वत छोटा दिखाई देता है लेकिन चढ़ने के लिए वहीं पर्वत बहुत बड़ा होता है। वैसे ही 'कार्य' यह शब्द बहुत छोटा है यानि केवल दो अक्षरों का है लेकिन कार्य बहुत विशाल है। देह से जब क्रिया होती है तो उसे लोग 'कार्य' कहते हैं लेकिन 'कार्य' यह शब्द सागर जैसा है ।

कार्य करते करते हमारा अंत होगा लेकिन कार्य का प्रारंभ किसने और कब किया इसका अंत नहीं लगता है। फिर जो अनंत है जिसका अंत नहीं लगता है ऐसा 'यह कार्य मैने किया' यह कहना व्यर्थ है। जो 'कर्त्ता 'करानेवाले, बनाने वाले रचयिता, हैं वे 'ईश्वर' हैं। अपना कर्त्तव्य इतना ही है कि उनकी आज्ञा का पालन करना। हम ज्यादा सयाने हैं इसलिए कार्य का अर्थ या अनर्थ लगाते हैं। लेकिन यह 'बहुत चतुराई' (ज्यादा समझ) हमें किसने दी है इसका अर्थ समझना आवश्यक है। केवल विवाद करने

से, चतुराई प्राप्त नहीं होती है। इसलिए इस जगत् में हम कुछ भी नहीं हैं यह जब स्वयं समझ जाएंगे तब जगत् क्या है यह समझ आएगा। केवल फिजूल अंहकार यह हमारे विनाश का कारण होता है। औरों को दुःख देने के लिए कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन 'मीठा बोलना' इसके लिए भी साधना के बंधनों पर अमल करना आवश्यक है। इतनी सीख लेकर मैं लंदन से भारत वापस आ गया। भारत में रहते समय मैने 'मन और विचार' इनका अध्ययन साधना करके किया था लेकिन 'आचार' यह महत्वपूर्ण कार्यभाग जीवन में है यह ज्ञान भारत के बाहर लंदन जाने के बाद प्राप्त हुआ।

30. हिंदुस्तान पुनःआगमन और पुनश्च कार्य का प्रारंभ, आगे के कार्य के लिए परम पूज्य बाबा का मार्गदर्शन

हिंदुस्तान वापस आने के बाद मैने यह तय किया कि फिर से केवल कामकाज यानि ऐहिक समस्या सुलझाना, इससे कुछ अलग देना आवश्यक है। क्योंकि इस जगत् को कितना भी दिया गया तो भी यह जगत् 'बस' (काफी है) इन दो शब्दों का उच्चार हमारा अंत हुआ तो भी करने वाला नहीं है। इसलिए इस जगत को पच्चीस प्रतिशत ऐहिक और पचहत्तर प्रतिशत पारमार्थिक, इस प्रकार देना आवश्यक है और इसकी ही विश्व के लिए आवश्यकता है। इसके लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। ऐसा मैने विचार किया। मैं जगत् देखकर आया हूँ यह मेरा कहना जगत् ने मान लिया तो भी मेरा मन वह मान्य नहीं कर रहा था। क्योंकि जो महत्व का कार्य बाकी है उसका प्रारंभ करना चाहिए ऐसी अत्यधिक इच्छा हो रही थी। इसलिए परम पूज्य बाबा की प्रार्थना करके, 'आगे के कार्य के लिए आप मुझे कृपया मार्ग दर्शन करें' ऐसी विनती मैने उन्हें की। तब परम पूज्य बाबा ने कहा कि, " तुम्हारे पांच पीर क्या कहते हैं? " यह पूछ लो। केवल मेरी आज्ञा के लिए व्याकुल मत बनो। 'व्याकुल' इस शब्द का बोध प्राप्त करो। आज जगत् व्याकुल है सुख के लिए। यह इच्छा भीख मांगने की है। इस इच्छा की पूर्तता करने के लिए कार्य नहीं है यह ध्यान में रखो। अब तुम 'कार्य' 'कार्य' ऐसे कह रहे हो लेकिन जब तक बच्चा छोटा है तब तक उसका 'जनेऊं ' नहीं होगा। उसके बारे में मैं बाद में बताऊंगा। अब तक हमने जो कार्य किया है वह व्यर्थ नहीं जाएगा लेकिन जब तक 'चाड' (बिना अंकुर का धान) बाकी है तब तक कार्य को मत नापो। आगे का भाग बहुत महत्वपूर्ण है उसके लिए सौ प्रतिशत भक्ति करने वाले भक्तों की आवश्यकता है। केवल भक्ति का नाम लेकर जोरजबरदस्ती करने वाले भक्तों की आवश्यकता नहीं है। जब सौ प्रतिशत भक्ति करने वाले भक्त होंगे तब मैं आगे का मार्ग सूचित करूंगा। विपत्तियों के बारे में पूछताछ करने वाले समाज की अब आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मेरे काल का जगत् अलग था और आज का जगत् अलग है। आज के जगत् में यदि यह कह दिया कि तुम्हारे संकट दूर हो इसलिए तुम गुरू चरित्र की पोथी का पाठ करो तो यह सुनकर भी इस जगत् के लोग गुस्सा

हो जाते हैं। यह करने की अपेक्षा 'ईश्वर की प्राप्ति न होना ' यह उन्हें मंजूर है। दो वक्त का खाना तो मिल ही रहा है फिर ज्यादा कष्ट क्यों उठाएं? आज का दिन तो अच्छी तरह व्यतीत हुआ है, आगे का विचार बाद में करेंगे, ऐसा जो जगत् अब जन्म लेगा उस जगत् को आसान मार्ग दिखाना यही आज का परमार्थ है। इसलिए मेरी आज्ञा होने तक यही कार्य जारी रखो। इस काल में लोकसंग्रह करना यह हमारा कर्त्तव्य है इसलिए जो लोग आएंगे उनके दोष दिखाना, आलोचना करना कि जिससे वे मार्ग से दूर हो जाएंगे, ऐसा बर्ताव हमसे नहीं होना चाहिए। लोकसंग्रह यह हमारी अमानत है।

इसके अनुसार नित्य नियम से कामकाज हो रहा था। कामकाज में भक्तों को उनके दुख का कारण बता कर उन्हें निराकरण का तथा जीवन के धर्म का अर्थ क्या है, आदि मुलाकात हो रही थी। उस समय बहुत बार ऐसा लगता था कि सब भक्तों को एकत्रित कर 'सेमिनार' लिया जाए। उस 'सेमिनार' में अलग अलग विषयों के बारे में ना बता कर एक ही विषय को प्रमुखता दी जाए जिससे भक्त एक ही स्तर पर सब विषय समझ लेंगे। लेकिन केवल इच्छा होने से कोई उपयोग नहीं था। सब इच्छाएं परम पूज्य बाबा के अधीन थीं। इसलिए उसके अनुसार मैं प्रतिक्षा कर रहा था। इस काल में बारह साल बीत गए। यह कालावधी व्यर्थ नहीं गया। मुख्य साधना सिद्ध हो जाए ऐसा परम पूज्य बाबा का संदेश प्राप्त हुआ। पूर्वकाल में (बीते हुए काल मे) जो सेवा मैं कर रहा था वह सेवा मेरे स्वयं तक ही सीमित थी लेकिन अब जगत् को साधना सिखानी थी और वह साधना भी 'ॐकार ' साधना। पहले ही इसके बारे में लिखा है कि यह ॐकार साधना मुझे श्रीभैरवनाथ जी ने सिखाई थी और अब यह साधना जगत् को सिखानी है। इन दोनो में क्या फर्क है यह सवाल तब सामने आया। तब परम पूज्य बाबा ने स्पष्ट रूप में यह कहा कि 'जगत् को ॐकार साधना सिखाने के लिए 'कामकाज' मतलब ऐहिक समस्या का निराकरण यह बंद करने की आवश्यकता है। तभी आगे के कार्य का प्रारंभ होगा'। इस समय तक 2 तप यानि चौबीस साल की सेवा हुई थी और समिति का कार्य संपूर्ण भारत मे परिचित हुआ था। परम पूज्य बाबा ने कहा कि "ॐकार साधना की सिद्धता में जिन पुण्य विभूतियों का आशीर्वाद है उनका इस कार्य में

सहभाग है। इसलिए उनकी आज्ञा होना महत्वपूर्ण है।'' परम पूज्य बाबा का यह कहना सुनने के बाद मैं विभूतियों के आशीर्वाद के लिए, उस दिन की और उस समय की प्रतिक्षा करता रहा। वह सुदिन आ गया। इस साल मुंबई में गुरूपूर्णिमा मनाई गई। असंख्य लोग एकत्रित हुए थे। मैं श्रीआरती कर रहा था। इसके पहले भी मैने आरती की थी और उस आरती में देवश्री थे। लेकिन उस दिन आरती करते समय मुझे देवत्व का मतलब समझ आया। मैं इस जगत् में हूँ या कोई अलग जगत् में, यह तब मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मेरे आसपास भक्त थे, वे भी आरती कर रहे थे लेकिन उस दिन, "आरती में जो 'आर्तता' होती है वह क्या है" यह समझ आया।

आरती समाप्त होने के बाद प्रसाद लेकर लोग घर गए। लेकिन मेरी अवस्था अलग ही हुई थी क्योंकि परम पूज्य बाबा की ऐसी आज्ञा हुई थी कि 'आज के दिन से यह जगत् अपना नहीं है। अब नये से इस जगत् की निर्मिति करनी है। उसके लिए तुम्हें सब केन्द्रों पर कामकाज बंद रखना है । और अब तुम नये जगत की रचना का प्रारंभ करो। नया जग बनाना आसान नहीं है यह बात बाद में समझ आएगी।

वह दिन गुरू पूजन का दिन, 30 जून 1977 था। उस दिन से मुझे अलग किरण दिखाई देने लगे थे मतलब अपनी दिशा भिन्न है यह मालूम हुआ और, "अब ऐहिक जगत् से पारमार्थिक जीवन में प्रवेश करना है" यह मैने निश्चय किया।

बाद में मुंबई से पूना आने के बाद, नित्य साधना के बाद बाकी बचे समय में बंद कमरे में बैठकर मैं विचार कर रहा था लेकिन कार्य की रूपरेखा कैसे तैयार की जाए यह गणित मन में निश्चित नहीं हो रहा था। फिर नवरात्री का प्रारंभ हुआ। देवताओं की प्रतिष्ठापना करके सुबह शाम पूजा, आरती, साधना कर रहा था। तब पंचमी के दिन श्रीदेवी के दर्शन हुए। पहले एक दो बार, देवी के सौम्य और सुंदर ऐसे रूप के दर्शन हुए थे लेकिन उस दिन देवी का रूप अक्राल विक्राल, और क्रोध में है ऐसा, लगा। इसलिए मैने विचार किया कि ये श्रीमहाकालीजी होंगी। दशहरे के दिन परम पूज्य बाबा से उसके बारे में इस प्रकार मार्गदर्शन हुआ कि, ' वह शक्ति है, बाद में तुम्हें उस शक्ति की

प्रतिष्ठापना करनी है। उसके पहले आज जो शक्ति प्रसन्न हो गई है वह लय शक्ति है उसे धारण करो, फिर बाकी मैं बाद में बताऊँगा। ''

उसी दिन मैं बीमार हुआ। खाना हजम नहीं हो रहा था। उलटियाँ होने लगी। आखिर अस्पताल में भरती हुआ। आठ दिन के बाद अस्पताल से घर वापस आया। आराम करके दिवाली के बाद गोवा गया। वहाँ मैने, स्वयं कामकाज बंद किया और सबको बताया कि 'अब नियुक्त सेवक कामकाज करेंगे' ऐसी परम पूज्य बाबा की आज्ञा है। तुम सब इस आज्ञा का पालन करो। जगत् के हित के लिए मुझे आगे का कार्य करना है इसलिए अब मैं कामकाज नहीं करूंगा। जो नियुक्त सेवक हैं वे अब कामकाज करेंगे। यह उन्हें बताकर मै पूना वापस आया।

पूना आने के बाद, मैने दशहरे के पहले जिस अवस्था का अनुभव किया था, उसी की पुनरावृत्ती होने लगी। आखिर निराश होकर मैने परम पूज्य बाबा से यह विनती की कि, " जो कार्य आपको हमसे कराना है वह इस जन्म में होगा या नहीं इसकी गवाही मैं नहीं दे सकता। अभी कार्य का प्रारंभ ही नहीं हुआ, तो मैं बीमार हुआ और अब मृत्यु भी आ सकती है ऐसी मेरी अवस्था हुई है। ऐसी अवस्था किसी के भी हिस्से ना आए। अब तक जितना कार्य हुआ है उसे मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ। इसके बाद मैं पूना में चुपचाप बैठा रहा। लेकिन मैं चुप बैठा रहा तो भी बाबा खामोश नहीं बैठे थे। बाबा ने मुझे आज्ञा दी कि मैं जो तुम्हें कहता हूँ उसका केवल विचार मत करो। कार्य करो उसके लिए सामर्थ्य मैं दूंगा। तुम बीमार हुए लेकिन फिर भी तुम्हारी मृत्यु निश्चित नहीं होगी और यदि मृत्यु आनेवाली ही है तो कर्म से मत मरो, धर्म से मरो। इसीमें जीवन की सार्थकता है। निराश मत हो जाओ। हाथ में यदि शस्त्र है तो चोर भी चोरी करते समय नहीं ड़रते हैं फिर, तुम क्यों डरते हो ?''

बाबा का यह कहना सुनकर मैने यह निर्णय लिया कि जब तक जान में जान है तब तक परम पूज्य बाबा की 'आज्ञा अनुसार आचरण करता रहूँगा। आज्ञा के अनुसार आचरण', यही मेरा कर्त्तव्य है। इसी आत्मविश्वास से मैं आज तक खड़ा हूँ।

इसके बाद परम पूज्य बाबा का मार्गदर्शन इस प्रकार हुआ, " इसके आगे का कार्य यह जगत् को तारने के लिए (जगत् का रक्षण करने के लिए) है इसलिए तारक मंत्र सिद्ध होना आवश्यक है। तुम्हें जो ॐकार साधना बचपन में श्रीभैरवनाथजी ने सिखाई थी, उस साधना में आचार, विचार और बाद में उच्चार है। आज का जगत् स्वार्थ के कारण पिता को 'पिता' कहने वाला नहीं है। फिर ॐकार का परहेज ये लोग कैसे सम्हाल सकेंगे ? तुमने जो ॐकार सीखा है वह लय तत्व है। उसका मतलब नाद है। अब नाद–सूर–स्वर इस क्रम से साधना आसान करना आवश्यक है। इसलिए प्रथमतः ॐकार यह जो नाद है, वह शब्दरूप होना आवश्यक है ताकि लोगो को उसका उच्चार करना मुमकिन होगा। इसलिए इस मकर संक्राती के पहले तुम श्रीनृसिंहसरस्वती स्वामीजी से मिलने नरसोबावाड़ी जाओ। क्योंकि यह ॐकार केवल इन स्वामीजी के ही पास है। श्रीनृसिंहसरस्वती स्वामीजी का जन्म श्रीदत्तप्रभू के आशीर्वाद से हुआ है। जन्म के बाद हमारे बच्चे रोते हैं लेकिन नृसिंहसरस्वती स्वामीजी का जन्म रोने के लिए ना होकर जगत् को हँसाने के लिए है। तुम्हारे संदर्भ में भी ऐसी हकीकत है कि जब श्रीदत्त प्रभु ने तुम्हारे पिताजी को आशीर्वाद दिया तब तुम्हारा जन्म हुआ। यह साम्यता तुम्हारे और स्वामीजी के जन्म में है, केवल काल अलग है। इसलिए यह जो ॐकार उनके पास है उसकी मांग अगर तुमने की तो ही उनसे यह ॐकार प्राप्त होगा। यह ॐकार केवल कह कर, यह कार्य नहीं होगा और दूसरों को इसकी प्राप्ति होना भी मुमकिन नहीं होगा। इसलिए तुम्हें कामकाज बंद करने को कहा था क्योंकि सन्यासी के लिए ऐहिक प्राप्ति यह विष है और नृसिंह सरस्वती स्वामीजी यह जो ॐकार उनके जन्म के साथ ले आए थे, वह उनकी कृपा के बिना उनसे प्राप्त नहीं हो सकता है। इसलिए अगर तुमने एहिक प्राप्ति का लोभ किया तो ॐकार के बजाय शोर मच जाएगा यह ध्यान में रख कर नरसोबाबाड़ी जाओ। हम सब विभूति उस दिन की प्रतिक्षा करेंगे।"

तथास्तु तथास्तु तथास्तु।

तुम इसी जन्म में चिरंजीव हो जाओगे।। "

31. ॐकार स।धना सिद्वता–
श्रीनृसिंहसरस्वतीजी का मार्गदर्शन

परम पूज्य बाबा की आज्ञा के अनुसार मैं तीर्थक्षेत्र नरसोबावाड़ी में गया। वहाँ जाते समय मेरे मन में यह इच्छा थी कि इसी समय कार्य हो जाए। लेकिन वह कार्य सामान्य नहीं था। मेरे नरसोबावाड़ी में जाने के बाद जो ॐकार साधना मैने श्रीनृसिंहसरस्वती स्वामीजी से मांगनी थी उसका विषय बाजू रह गया और स्वामीजी ने ही मुझसे यह सवाल पूछा कि ॐकार का अर्थ क्या है ? उन्होंने मुझे कहा कि " पहले तुम ॐकार के स्वरूप की पहचान कर लो और उसके बाद ॐकार की माँग करो। प्रथमतः ॐकार का अर्थ क्या है यह जो सवाल पूछा है, उसका रूप देख लो। केवल ॐकार और उसकी साधना ऐसा मत कहो। यह आसमान की बिजली है इसलिए एक क्षण में है, तो एक क्षण में नहीं है। इसलिए वैसी अवस्था मत करा लो। तुम्हारे साथ विभूति है लेकिन फिर भी ॐकार यह निसर्ग (प्रकृति) है। उसका अध्ययन किए बिना अगला कदम मत उठाओ। सबसे पहले लोगों को क्या बताना है यह निश्चित कर लो, लेकिन कार्य की समाप्ति तक ' मौन रखना' आवश्यक है। जगत् के कल्याण के लिए ॐकार की आवश्यकता है। उसे प्राप्त करने का गणित मैं तुम्हें बताऊँगा। उसके अनुसार तुम एक साल तक प्रत्येक पूरणमासी को यहाँ आओ। यहाँ आने के बाद निसर्ग की देखभाल करने वाले रूद्र की प्रतिष्ठापना करके उसका होम हवनयुक्त विधि से उच्चार करना आवश्यक है। उसके लिए संपूर्ण साल जो ब्राह्मण रूद्र करेंगे, वे केवल वैदिक होकर नहीं चलेगा बल्कि उन्हे याज्ञिक भी होना आवश्यक है। इसलिए इसके अनुसार प्रथमतः इंतजाम करो क्योंकि जिन ब्राह्मणों का इस साधना में समावेश होगा उनको इस साधना कार्य के कालावधी में केवल अपने घर के देवताओं का ही पूजन करना है, उनको अन्य कोई भी विधि नहीं करनी चाहिए और नरसोबावाड़ी में जो ब्राह्मण हैं उनका भिक्षुकी यह व्यवसाय है इसलिए इस साधना के कार्यकाल में एक साल तक उन्हें भिक्षुकी बंद रखनी होगी तो उनके संपूर्ण साल का खर्चा तुम्हें चलाना होगा। इसके अनुसार पहले तुम

सबसे पूछ लो। फिर मैं तुम्हें इस साधना के कार्य के लिए 'शुभदिन' बताऊंगा। उस दिन प्रथमतः तुम और तुम्हारे शिष्यों को कायिक और वाचिक प्रायश्चित लेना आवश्यक है।"

ऊपर बताए अनुसार संपूर्ण इंतजाम हो गया। उसके बाद परम पूज्य स्वामीजी ने आज्ञा दी, और उसके अनुसार 22 दिसम्बर, 1977 को ॐकार साधना कार्य का आरंभ हुआ। उस दिन हवन के लिए जिन देवदेवताओं का आवाहन किया था वे इस प्रकार थे कि ग्रहमण्डल, श्रीपंचमुखी हनुमान, श्रीमहालक्ष्मी, श्रीमहासरस्वती, श्रीमहाकाली, श्रीवास्तुदेवता, श्रीनवनाथ आदि विभूति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और पंचतत्वामक देवता, और मुख्यतः श्रीरूद्र, और श्रीगणपती। इस तरह इन सब देवदेवताओं का पूजन अर्चन और उसके बाद हवन और पूर्णाहुती इस प्रकार की विधि के अनुसार हर बार इस तरह हवन हो रहा था और उसके बाद अन्नदान और द्रव्यदान आदि विधि होते थे।

इस प्रकार के विधि के अनुसार पहला हवन हो जाने के बाद परम पूज्य स्वामीजी ने मुझे आगे की योजना का नक्शा दिखाया और यह आज्ञा दी कि, "यह नक्शा परम पूज्य साई बाबा और विभुतियों को दिखाओ। इस नक्शें में तीनो लोक हैं। इसलिए यह कार्य अकेले का नहीं है। हम पूजन के लिए जो आवाहन करते हैं, वह आवाहन देवी देवताओं के लिए होता है। और सुपारी यह उन देवी देवताओं का प्रतीक मान कर उनके लिए सब विधि की जाती है। ऐसी विधि की सिद्धता जब शास्त्र, मंत्र और तंत्र इनसे युक्त होगी तब सिद्धता होती है। प्रथमतः जब तुमने ॐकार की मांग की थी तब मैने 'ना' कहा था। उसका कारण यह था कि पिछले पांच सौ साल में यहाँ अनेक लोग आके गए। उनमें से हर एक का एक ही सवाल था कि मेरा क्या होगा ? परमार्थ जोड़ने के लिए ऐहिक का त्याग करना आवश्यक होता है यह किसी को भी मालूम नहीं है। ऐहिक का अर्थ केवल पैसा नहीं है, साधक को अपना नामोनिशान भी भूलना आवश्यक होता है। इसलिए मैने उस समय तुम्हें 'ना' कहा था। लेकिन तुमने जो कुछ मांगा है वह केवल तुम्हारे स्वयं के लिए नहीं है और उसमें संपूर्ण जगत् का

उद्धार है इसलिए अब मैं तैयार हुआ हूँ। मैने तुम्हें जो नक्शा दिया है वह हम जो कहते है वैसा नक्शा नहीं हैं। यह नक्शा सिद्ध करते समय हमारे जीवन का 'नशा' नष्ट होना आवश्यक है।

मैं नरसोबावाड़ी से पूना गया और वहाँ से दिल्ली गया। इस यात्रा में यह विचार करता रहा कि यह नक्शा क्या होगा ? जगत् में बहुत से नक्शे देखे हैं, लेकिन मुझे लगा कि यह नक्शा सबसे अलग होगा। क्योंकि उसके बारे में कोई कल्पना या तर्क करके कुछ उपयोग नहीं था। आखिर यह नक्शा मैने सपने में देखा। उस समय मैं आगरा के होटल में था। करीबन भोर के तीन का समय था, उस समय जगत् का गणित परम पूज्य सलीम बाबा ने बताया। उन्होने मुझे पूछा कि 'यह जगत् कितने अंश का है '? तो मैने जवाब दिया कि ' तीन सौ साठ अंश का' तब उन्होने कहा कि 'देखा जाए तो यह जगत् महान है लेकिन यह जगत् छोटा भी है। हमें जो साधना सिद्ध करनी है उसके लिए महान जगत् का उपयोग नहीं है। उसके लिए जगत् छोटा मतलब 'मिनीएचर' (लघु रूप में) होना आवश्यक है। मुंबई से गोवा यह अंतर तीन सौ साठ मील है यह बात पकड़ लो, फिर यह गणित सुलझ जाएगा। इन तीन सौ साठ मील के अंतर (distance) के पांच भाग करो उससे स्वामीजी ने जो सिद्धता करने के लिए कहा है वह सिद्धता हो जाएगी। इसके लिए जो सहायता आवश्यक होगी वह सहायता पांच पीर करेंगे। यह साधना सिद्ध करने के पहले, पिछले बीस सालो से तुम उन्हे पांच पीर कहते थे और बहुत बार परम पूज्य साईबाबा ने भी यह पूछा था कि तुम्हारे 'पांच पीर' क्या कहते हैं? तो वह समय अब आया है। मुंबई से गोवा तक के इन पांच केन्द्रों को तुम पांच पीर कहो। यह पांच विभूति परलोकवासी होकर सैकड़ों साल बीत चुके हैं। उस समय इन पांच आत्माओं ने इस जगत् में ईश्वर के अवतार स्वरूप जन्म लिया था और उस प्राप्त जन्म में उनका जीवन ईश्वरमय हुआ था। ऐसी ये पांच आत्माएं यानि पांच विभूति इस साधना की देखभाल करेंगे। इन पांच पुण्य आत्माओं की स्थापना स्वर्गलोक में करो और ईहलोक में इन पांच पीरों को मुंबई से गोवा तक के पांच केन्द्रों के स्थान पर प्रतिष्ठापित करके, उपासना प्रारंभ करो। "

सबसे पूछ लो। फिर मैं तुम्हें इस साधना के कार्य के लिए 'शुभदिन' बताऊंगा। उस दिन प्रथमतः तुम और तुम्हारे शिष्यों को कायिक और वाचिक प्रायश्चित लेना आवश्यक है।''

ऊपर बताए अनुसार संपूर्ण इंतजाम हो गया। उसके बाद परम पूज्य स्वामीजी ने आज्ञा दी, और उसके अनुसार 22 दिसम्बर, 1977 को ॐकार साधना कार्य का आरंभ हुआ। उस दिन हवन के लिए जिन देवदेवताओं का आवाहन किया था वे इस प्रकार थे कि ग्रहमण्डल, श्रीपंचमुखी हनुमान, श्रीमहालक्ष्मी, श्रीमहासरस्वती, श्रीमहाकाली, श्रीवास्तुदेवता, श्रीनवनाथ आदि विभूति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और पंचतत्वामक देवता, और मुख्यतः श्रीरूद्र, और श्रीगणपती। इस तरह इन सब देवदेवताओं का पूजन अर्चन और उसके बाद हवन और पूर्णाहुती इस प्रकार की विधि के अनुसार हर बार इस तरह हवन हो रहा था और उसके बाद अन्नदान और द्रव्यदान आदि विधि होते थे।

इस प्रकार के विधि के अनुसार पहला हवन हो जाने के बाद परम पूज्य स्वामीजी ने मुझे आगे की योजना का नक्शा दिखाया और यह आज्ञा दी कि, ''यह नक्शा परम पूज्य साई बाबा और विभुतियों को दिखाओ। इस नक्शें में तीनो लोक हैं। इसलिए यह कार्य अकेले का नहीं है। हम पूजन के लिए जो आवाहन करते हैं, वह आवाहन देवी देवताओं के लिए होता है। और सुपारी यह उन देवी देवताओं का प्रतीक मान कर उनके लिए सब विधि की जाती है। ऐसी विधि की सिद्धता जब शास्त्र, मंत्र और तंत्र इनसे युक्त होगी तब सिद्धता होती है। प्रथमतः जब तुमने ॐकार की मांग की थी तब मैने 'ना' कहा था। उसका कारण यह था कि पिछले पांच सौ साल में यहाँ अनेक लोग आके गए। उनमें से हर एक का एक ही सवाल था कि मेरा क्या होगा ? परमार्थ जोड़ने के लिए ऐहिक का त्याग करना आवश्यक होता है यह किसी को भी मालूम नहीं है। ऐहिक का अर्थ केवल पैसा नहीं है, साधक को अपना नामोनिशान भी भूलना आवश्यक होता है। इसलिए मैने उस समय तुम्हें 'ना' कहा था। लेकिन तुमने जो कुछ मांगा है वह केवल तुम्हारे स्वयं के लिए नहीं है और उसमें संपूर्ण जगत् का

उद्धार है इसलिए अब मैं तैयार हुआ हूँ। मैने तुम्हें जो नक्शा दिया है वह हम जो कहते है वैसा नक्शा नहीं हैं। यह नक्शा सिद्ध करते समय हमारे जीवन का 'नशा' नष्ट होना आवश्यक है।

मैं नरसोबावाड़ी से पूना गया और वहाँ से दिल्ली गया। इस यात्रा में यह विचार करता रहा कि यह नक्शा क्या होगा ? जगत् में बहुत से नक्शे देखे हैं, लेकिन मुझे लगा कि यह नक्शा सबसे अलग होगा। क्योंकि उसके बारे में कोई कल्पना या तर्क करके कुछ उपयोग नहीं था। आखिर यह नक्शा मैने सपने में देखा। उस समय मैं आगरा के होटल में था। करीबन भोर के तीन का समय था, उस समय जगत् का गणित परम पूज्य सलीम बाबा ने बताया। उन्होने मुझे पूछा कि 'यह जगत् कितने अंश का है '? तो मैने जवाब दिया कि ' तीन सौ साठ अंश का' तब उन्होने कहा कि 'देखा जाए तो यह जगत् महान है लेकिन यह जगत् छोटा भी है। हमें जो साधना सिद्ध करनी है उसके लिए महान जगत् का उपयोग नहीं है। उसके लिए जगत् छोटा मतलब 'मिनीएचर' (लघु रूप में) होना आवश्यक है। मुंबई से गोवा यह अंतर तीन सौ साठ मील है यह बात पकड़ लो, फिर यह गणित सुलझ जाएगा। इन तीन सौ साठ मील के अंतर (distance) के पांच भाग करो उससे स्वामीजी ने जो सिद्धता करने के लिए कहा है वह सिद्धता हो जाएगी। इसके लिए जो सहायता आवश्यक होगी वह सहायता पांच पीर करेंगे। यह साधना सिद्ध करने के पहले, पिछले बीस सालो से तुम उन्हे पांच पीर कहते थे और बहुत बार परम पूज्य साईबाबा ने भी यह पूछा था कि तुम्हारे 'पांच पीर' क्या कहते हैं? तो वह समय अब आया है। मुंबई से गोवा तक के इन पांच केन्द्रों को तुम पांच पीर कहो। यह पांच विभूति परलोकवासी होकर सैकड़ों साल बीत चुके हैं। उस समय इन पांच आत्माओं ने इस जगत् में ईश्वर के अवतार स्वरूप जन्म लिया था और उस प्राप्त जन्म में उनका जीवन ईश्वरमय हुआ था। ऐसी ये पांच आत्माएं यानि पांच विभूति इस साधना की देखभाल करेंगे। इन पांच पुण्य आत्माओं की स्थापना स्वर्गलोक में करो और ईहलोक में इन पांच पीरों को मुंबई से गोवा तक के पांच केन्द्रों के स्थान पर प्रतिष्ठापित करके, उपासना प्रारंभ करो। "

ॐकार इस विषय में 'अ' 'उ' 'म' ऐसे तीन अक्षर हैं। और प्रत्येक अक्षर तीन अंगो से युक्त है। इन तीन अक्षरो की तीन परिक्रमा होगी। इसमें अ+उ = 'ओ' मतलब किसी के पुकारने के बाद हम उसे जवाब देते है वैसे अपने आत्मा ने भी अ+उ = ओ इस तरह जवाब देना होगा। यह होने के बाद ही म्+आधीमात्रा = 'अहं ब्रह्मास्मी' यानि 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार यह सिद्धता होगी। "

यह सिद्धता हो इसलिए ॐकार साधना के लिए जो भक्त उपस्थित रहेंगे उनको ऊपर बताए साधना के अंगो के अनुसार ॐकार का आस्थापूर्वक उच्चार करना आवश्यक है। ॐकार साधना में जो तीन अक्षर मतलब तीन लोक हैं, और जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय ये जो तीन अवस्था है इनका संबंध, उच्चार, मध्य, लय और स्वर, ताल, लय इनके साथ होने से तीन लोक और तीन अवस्था मिला कर, छह होंगे इसमें पांच विभूति यानि पांच केन्द्र और शेष एक श्रीसाईनाथ इन्होंने मिलकर ॐकार का निर्माण करना है। और उसके बाद उसकी स्थापना करनी है। उस निर्मिति को 'शक्तिपीठ' कहते हैं। यह जो सब मैने तुम्हे बताया है वह निर्माण करने के लिए कम से कम एक साल लगेगा। या शायद एक जन्म भी पर्याप्त नहीं होगा। इसलिए परहेज क्या होगा यह यदि तुम पूछोगे तो इसके लिए स्थल काल और समय इनका सही अनुमान साध्य होना आवश्यक हैं। एक घंटा पहले या एक घंटा बाद ऐसा कहने से यह सिद्धता नहीं होगी। यह अनुमान समझने के लिए ऐहिक अवस्था का त्याग करके सौ प्रतिशत पारमार्थिक अवस्था का होना आवश्यक है। जब हम कोई अवस्था सिद्ध करते हैं तब वैसी अवस्था यदि भूतकाल में घटित हुई होगी या भविष्यकाल में घटित होने वाली होगी तो वह समझना आवश्यक होता है। इसलिए तुम किसी भी मोह के आधीन मत होना। तभी यह कार्यसिद्धी होगी। यह कार्य तुमसे अकेले से नहीं होगा। जिस तरह बारीश बूंद बूंद कर जमीन पर आती है और उससे नदियां और तालाब बनते हैं उसी प्रकार प्रथमतः सब भक्तों को ॐकार कहने की आदत लगना आवश्यक है। प्रथमतः ही, ॐकार उच्चार नहीं हो सकेगा लेकिन प्रथमतः जिस शब्द का उच्चार होगा उस शब्द से ध्वनी निर्माण होना आवश्यक है और फिर

उस ध्वनी से लहरें निर्माण होनी चाहिए। सब केन्द्रों पर भक्तों ने इस प्रकार से साधना करके ॐकार का उच्चार करना आवश्यक है, तब ॐकार का पहला अक्षर 'अ' सिद्ध होगा।

उसके बाद साधना का भाग करके 'अ' यानि ॐकार सबको सिखाया और भक्त ध्वनि–लहरी–ध्वनि ऐसी साधना करने लगे। उस समय नृसिंह सरस्वती स्वामीजी ने कहा कि "अब तुम ॐकार का पहला अक्षर 'अ' सिद्ध करने के लिए नरसोबाबाड़ी में आओ'। तब उन्नीस सौ अठहत्तर की गुरूपूर्णिमा के दिन यह आज्ञा हुई कि पिछले हवन विधि के समान ही सिद्धता की सब क्रिया करनी है। लेकिन इस समय पूर्णमासी के पहले दो दिन और बाद के तीन दिन ऐसे पाँच दिन पाँच रात नरसोबाबाडी में ही रहना होगा इन पांच दिनों में नरसोबाबाड़ी की सीमा लांघना उचित न होगा। इसके अलावा तुमने अब तक लोगो को ऐहिक जीवन का जो लाभ दिया है और जिसके लिए औदुंबर में साधना सिद्धता की है, उसका लाभ गुरूदक्षिणा करके तुम मुझे अर्पण करो और फिर ॐकार साधना के 'अ' की प्राप्ति के लिए प्रारंभ करो। लेकिन यह दक्षता लो कि यह कार्य करते समय यदि लोग तुम्हारे दर्शन करने आए और उन्होंने पूज्य भावना से दी हुई गुरूदक्षिणा को तुमने स्वीकार किया तो अगली साधना मे अटकाव आ सकता है।

उस समय जो भक्त नरसोबाबाड़ी मे आए थे उन्होंने जो दीक्षा ली थी और जिस दीक्षा से उन्हें ऐहिक लाभ हुआ था उस दीक्षा के मुल्य के बदले, उन सबको आगे की साधना स्वीकार करनी थी। इसलिए मैने उन सबसे विनती की कि वे सब नदी के किनारे जाकर स्नान करें और उसके बाद परम पूज्य नृसिंह सरस्वती के सामने वीड़ा, दक्षिणा, श्रीफल रख कर हवन के लिए उपस्थित हो जाएं। उस समय मुझे हुए आनंद का मैं वर्णन नहीं कर सकता। सबको वह दृश्य देखने की दृष्टि प्राप्त नहीं हुई थी लेकिन मैने जो दृश्य देखा उसका वर्णन मैं लिख रहा हूँ। सब जब गुरूजी के घर आए तब उसके पहले उन्होंने गंगा में स्नान किया था, तो उसके परिणामस्वरूप मैने तब क्या देखा होगा ? तब मैने यह देखा कि उन

सबको स्थूल देह नहीं है। यह दृश्य देखकर मुझे रोना आया। इस जगत् में जन्म लेने के बाद सबको यह जगत् देखने का बहुत मोह होता है, तथा इसी देह में इच्छा वासना बाकी रहती है, इन लोगों का वही देह यदि दिख नहीं रहा है तो इन सबको अब क्या देना बाकी है ऐसा प्रश्न मेरे आँखो के सामने खड़ा रहा। इतने में गुरूजी की पुकार सुनाई दी कि ' दादा तैयारी हुई क्या ?' तब मैं मूल अवस्था में आ गया और मैने कहा, ' हाँ सब तैयारी हुई है। '

32. ॐकार
'अ' तत्व की सिद्धता

स्वाहाकार विधि का आरंभ हुआ। वेद मंत्रों का शब्द सुनाई देने लगा। जीवन मे मेरी यह इच्छा थी कि मैं कभी ना कभी तो ऐसे मंत्र सुनुंगा। मुझे यह लगन थी कि मैं खूब पढ़ूँ , संस्कृत की पढ़ाई करूँ। लेकिन ईश्वर की इच्छा अलग थी। इसलिए में पढ़ाई नहीं कर सका था। लेकिन उस दिन मेरी वैसी अवस्था हुई जैसे कि श्रीज्ञानेश्वर जी ने कहा कि 'सुवर्ण का दिन अमृत में देखा है।' श्रीक्षेत्र नरसोबावाड़ी मे वहाँ के विद्वान ब्राह्मण ॐकार साधना के लिए सिद्ध हुए हैं, इससे और सुख जगत् में क्या होगा ? ऐसा मैने विचार किया। इस जन्म में यह पुण्य कार्य मेरे हाथों हो जाए यह ईश्वर का संकेत है। अब परम पूज्य स्वामीजी की आज्ञानुसार एक साल या, बारह सालके समय तक मैं सेवा करूंगा। यदि इस सेवा में लोग शामिल नहीं हुए तो मैं परम पूज्य बाबा का दिया हुआ घर भी बेच दूंगा लेकिन पीछे नहीं हटूंगा। यह विचार मैने मेरे मन में किया और मैं हवन के लिए बैठ गया।

उस दिन, पहले सर्व देवदेवताओं का पूजन किया। तब उस दिन चौपाल पर एक ही देवी दिखाई दी। वह देवी श्रीमहासरस्वती थीं। इसका अर्थ यह हुआ कि ॐकार का प्रथम अक्षर 'अ' यह सिद्ध होने का आरंभ हुआ है। यह निश्चित हुआ। अक्षरों की पहचान 'अ से ज्ञ ' तक है। 'ज्ञ' यानि गणेश जी इनके दर्शन प्रथमतः ही उस हवन में हुए थे और तब यह एहसास हुआ था कि " आगे जब उनकी आज्ञा होगी तब तुम्हें श्रीगणेशजी के दर्शन होंगे। "

पहला हवन और दूसरा हवन इनमें क्या अंतर है ? वास्तव मे देखनेवालों के लिए दोनो विधि समान थी। लेकिन पहला हवन हम तीनों ने किया था। उस दिन आगे के कार्य का प्रारंभ हो गया। उसके लिए हम तीनों भी ऐहिक प्राप्ति नहीं करते थे। मैंने कामकाज बंद किया था और दीपक और लक्ष्मणराव इन्हें परम पूज्य हाजी बाबा ने जो बताया था कि

' पैसे की प्राप्ति ना करके दादाजी के कार्य में सहायता करो ' उसके अनुसार उन दोनो ने नौकरी ना करके आज्ञा का पालन किया।

हवन होने के बाद पहले गोवा गए। पहले हवन के बाद श्रीदत्त जयंती थी। गोवा आने के बाद कुछ अवधि तक श्री सुखटणकर के घर रह कर भिक्षा माँगकर खाना और ॐकार साधना करना यही क्रम जारी था। उस समय यदि हम उसे ॐकार कहते थे तो भी वह ॐकार साधना नहीं थी। जिस प्रकार छोटा बच्चा 'मां बाबा' कहने की शुरूआत करता है, वैसी सब भक्तों की अवस्था थी। उस समय ग्यारह बार ॐकार, ग्यारह बार ॐ श्रीनवनाथाय नमः और ग्यारह बार ॐ श्रीसाईनाथाय नमः ऐसी साधना थी। ऐसी साधना से क्या लाभ प्राप्त होगा यह मालूम नहीं था। मतलब जीवन को आकार प्राप्त नहीं हुआ था। मतलब हम जो जन्म लेते हैं वह जन्म कर्म के लिए मतलब ऐहिक सुख के लिए है, लेकिन जन्म लेकर जो पारमार्थिक जीवन प्राप्त होना आवश्यक है उस पारमार्थिक जीवन को आकार प्राप्त नहीं हुआ था। उस समय यह आज्ञा हुई कि, ' जैसे ऐहिक जीवन में पंद्रह माध्यम हैं वैसे परमार्थ मे भी पंद्रह अंग है। उनकी पहचान मै तुम्हें बाद में करा दूंगा। तब तक हवन का इंतजाम करो।''

जन्म लेकर केवल पैसे की प्राप्ति भूषणावह (भूषण) नहीं है। साधक जब 'ॐ भवति भिक्षां देही'। ऐसा कहता है तब परमार्थ का आरंभ होता है।

आज्ञानुसार कुल, नौ पूरणमासी को हवन होने के बाद नौ पूरणमासी के हवनो की समाप्ति महारूद्रस्वाहाकार में हुई। इन नौ पूरणमासी को मैं अलग अलग अनुभव प्राप्त कर सका। कोई इसे अनुभव कहते हैं, कोई प्रचिती कहते हैं, कोई साधना कहते हैं। लेकिन इनका अर्थ क्या है यह जवाब निश्चित रूप से नहीं दे सकते हैं। मतलब चीनी मीठी है लेकिन उसका अनुभव खारा है या कड़वा है यह कहने जैसी बात हो गई।

आज 'आत्मनिवेदन लिखो' यह आज्ञा हुई है इसलिए सब कुछ लिखना आवश्यक है। लेकिन यह सुनने के बाद यह सब सच है या झूठ

है यह विवाद हो सकता है तो यह बात ऐसी हुई, "जैसे बकरी की तो जान जाती है, फिर भी उसे खानेवाला कहता है कि खाने के लिए सख्त है"। साधना सिद्ध करना आसान कार्य नहीं है। मन की इच्छा अनुसार सुख प्राप्त होने के लिए आवश्यक कर्म होकर भी वह कर्म हमारे आधीन नहीं होता है। फिर साधना तो कितनी कठिन है। इसलिए इसका अवलोकन करना आवश्यक है।

इस प्रकार पहली पूरणमासी को ॐकार के प्रथम अक्षर 'अ' का प्रारंभ किया गया। उस दिन से मेरा शरीर कमजोर होने लगा। मेरी कमजोरी को किसी ने आधी व्याधी कहा, फिर भी वह बीमारी नहीं थी। गुरूमार्ग में 'बीमारी होना' यह दोष 'गुरू को दोष' लगने जैसा होता है। इसलिए आचार यह महत्वपूर्ण है। लेकिन मुझे उन आचारों की आदत नहीं थी। मेरे आचार, पिंड के अनुसार थे, मैं ॐकार साधना सिद्ध करने के लिये उन आचारो में बदलाव करके ब्रह्माण्ड के आचार सीखने लगा था। इसके कारण ये नौ पूरणमासी के समय मैं बहुत बार बीमार हुआ। सेवा जारी थी लेकिन सवाल यह था कि दवा या दुआ ? इसलिए ईश्वर की शरण में गया और कहा कि मुझे पहले दुआ चाहिए और बाद में दवा चाहिए। शरीर का धर्म है, उसके अनुसार शरीर को जिंदा रखना आवश्यक है इसलिए दवा आवश्यक है लेकिन सर्वप्रथम दुआ की ही आवश्यकता होती है। उसके अनुसार आज तक साधना करना जारी है। लेकिन जैसे हम क्षितिज के नजदीक आते हैं, तो क्षितिज और आगे है ऐसा दिखाई देता है उस प्रकार साधना का अंत नहीं है। साधना अनंत है। इसलिए साधना से अंधकार नष्ट होता है मतलब जगत् का अज्ञान दूर होता है। आज तक सैकड़ों आविष्कार हुए हैं, आगे और भी आविष्कार होंगे लेकिन जब हमें बोध होगा तब हमें यह समझ आएगा कि इन आविष्कारों के पीछे साधना है। हमारी साधना प्रापंचिक–प्रपंच के लिए है, ईश्वर की, विश्व की साधना जारी है। इसलिए श्रीज्ञानेश्वरजी ने कहा है कि वह 'पसायज्ञान' है लेकिन हम उसे 'पसायदान' कहते है, मतलब पेट के लिए दान चाहते हैं। जिस दिन हम विश्व के लिए माँगेंगें उस दिन हम धन्य हो जाएंगें।

इन नौ पूरणमासी की विधि यथायोग्य हो जाने के बाद हम तीनों, फतेहपुर सीकरी गए। वहाँ परम पूज्य सलीम बाबा के दर्शन लेकर उन्हें पूछा कि, 'अब आगे क्या आज्ञा है ?' तब तक सभी केन्द्रों पर ॐकार साधना जारी थी। तब फतेहपुर सीकरी में यह आज्ञा हुई कि "नौ पूरणमासी को ये जो होम हवन विधि हुए है, उनसे मूल ॐकार का स्वरूप बदल गया है।

ॐकार का मूल तत्व, 'रवी (सूरज)' है। लेकिन आम आदमी के लिए उसको धारण करना मुमकिन नहीं है। इसलिए उसका प्रकाश चंद्रमा के जरिए लेना आवश्यक है। चंद्र की कला प्रतिपदा से पौर्णीमातक बढ़ती जाती है। यह निसर्ग का (प्राकृतिक) धर्म है और साधक को इसी धर्म के अनुसार चलना आवश्यक है। कुल नौ पूर्णीमा का हमने हवन किया, मतलब नौं में तीन भाग किए जो तीनों लोकों के लिए हुए। इन प्रत्येक भाग में उत्पत्ति स्थिति लय ये तीन अवस्था एकरूप होकर ॐकार यानि ब्रह्माण्ड़ होता है। इहलोक में जब 'लय अवस्था' होती है तब परलोक में 'उत्पत्ति अवस्था' होती है उसी प्रकार जब परलोक में 'लय अवस्था' होती है तब इहलोक में 'उत्पत्ति अवस्था' होती है, ऐसी ब्रह्माण्ड की रचना है। ये तीनों एकरूप होने से 'स्थिति अवस्था' निर्माण होती है। और आज जगत् को इसी अवस्था की आवश्यकता है। घर द्वार कुटी में भी शांती नहीं है इसलिए श्रीज्ञानेश्वरजी ने कहा है कि 'ये तीनो एक हो गए' मतलब इस काल में जब तीनों स्थिति एक होगी वह अवस्था श्रीगुरूकृपा से ही होगी। इसलिए श्रीगुरू को परमेश्वर मानकर उनकी पूजा अर्चना करना आवश्यक है। लेकिन श्रीगुरू का आडंबर या झूठी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। 'प्रथम चरण, फिर शरण' ये दोनो क्रियाएं हम मानवों के हाथों हो जाने के बाद 'तीसरा जगत्' यानि 'मानवता' इस युग का जन्म होगा। इसलिए फिर से नरसोबावाड़ी जाना है, वहाँ ईश्वर है लेकिन वे दिखाई नहीं देते है। वहाँ केवल गुरूचरण यानि श्रीगुरू की पादुका दिखाई देती है। भक्त ने उन चरणों की शरण में जाना आवश्यक है क्योंकि उन पादुकाओं में सब कुछ है, देखा जाए तो सबकुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं है।

यदि 'प्रेम' का अभाव होगा तो जन्म प्राप्त होकर भी वह 'प्रेत' जैसा (मृत शरीर जैसा) है। आगे का कार्य अत्यन्त कठिन है, इसलिए प्रलय की आहट बाद में समझने से कोई उपयोग नहीं होगा। जब तक बारिश होती है तभी अनाज बोना आवश्यक है। खानेवाले बाद में आएंगें, साधक को उनका इंतजार करके नहीं बैठना चाहिए।''

इतना मार्गदर्शन प्राप्त होने के बाद पूना आया और फिर नरसोबाबाड़ी जाकर वहाँ के विद्वान गुरूजी श्री सोलापुरकर इनसे मिला। मैने उन्हें कहा कि आगामी आज्ञा, 'श्री महारूद्रस्वाहाकार करने के लिए' है। लेकिन इसकी प्रसिद्धि नहीं होनी चाहिए। जिसकी इच्छा होगी वह बिन बुलाए आ जाएगा। फिर उनसे इस विधि के लिए आवश्यक चीजों की सूची लेकर मैं वापस आया और उसके अनुसार प्रबंध करने लगा। साधारणतः गुरूजी ने, 'यदि ये चीजें मुमकिन है तो लाईये' ऐसा लिखा था लेकिन सब सामग्री लेकर जब मैं नरसोबावाड़ी गया तो मेरी लाई हुई साधन सामग्री देख कर वहाँ के लोगो ने यह कहा कि, '' पिछले सौ सालों से ऐसी विधि इस तीर्थक्षेत्र में नहीं हुई है। वाकई जगत् के कल्याण के लिए ऐसी विधि किसी ने नहीं की है।'' मनुष्य अनेक विधि करता है लेकिन वह विधि औरों के लिए नही बल्कि अपने स्वयं के कल्याण के लिए करता है। लेकिन यह महारूद्रस्वाहाकार विधि जगत् के लिए थी और उसके कारण प्रथम दिन से आखिरी दिन तक सब लोग इस स्वाहाकार का लाभ और लोभ (प्रेम) लेते रहे। जैसे बताया गया था उसके अनुसार आखिरी दिन महारूद्रस्वाहाकार पूर्ण हुआ। उस दिन नरसोबावाड़ी के सब लोगों को महाप्रसाद और यथोचित (योग्य) द्रव्य देने के बाद मैं पूना आया। उस समय के आनंद का वर्णन करना मेरे लिए मुमकिन नहीं है।

बाद में, मैं परम पूज्य बाबा के सामने बैठा था। जैसे किसी को अकस्मात लाखों रूपयों की धन प्राप्ति हो जाए वैसा उस समय मुझे लग रहा था। उस समय परम पूज्य बाबा ने मुझे कहा कि, ''महत् प्रयत्नों से तुम्हें जो साधना प्राप्त हुई है, उसका उपयोग जगत् के लिए होना आवश्यक है। नही तो यह साधना तुम्हें हजम नहीं होगी। यदि यह

ॐकार साधना तुम्हारे माध्यम से प्राप्त हुई हैं तो भी उससे लाभ लेने वाले हिस्सेदार तीनो लोकों में होना आवश्यक है, जिसके कारण 'वंशविमोचन' यह क्या है यह जगत् समझेगा।"

यह सुन कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। तब आगे मुझे यह सुनाई दिया कि, " जितना यह कार्य आसान था उससे अधिक कठिन कार्य हमें आगे करना है। वह कार्य समझ लो।' नौ पूरणमासी को हवन विधि हुए है मतलब ॐकार का 'अ' यह अक्षर सिद्ध हुआ है। अब इसके आगे ॐकार के 'म्' अक्षर तक जाना है। ॐकार 'उ' यह अक्षर अभी सिद्ध नहीं करना है तो पहले इन तीन अक्षरों में से को जो 'अ' प्राप्त हुआ है उसकी प्रचिति का अनुभव लोगों को प्राप्त होना आवश्यक है। तो ही 'म्' की प्राप्ति होगी।" यह जो बताया गया यह पहले मेरे समझ में नहीं आया। मेरे मन में यह सवाल आया कि ॐकार 'अ' अक्षर सिद्ध हुआ है और 'अ' की प्रचिति का अनुभव जगत् को प्राप्त होने के बाद 'म्' की प्राप्ति होगी यह जो बताया गया है और यह जो मैंने सुना है इसका क्या अर्थ है ? दिन ब दिन बीत रहे थे। लेकिन मुझे जवाब नहीं मिल रहा था। आखिर मैं गोवा गया। वहां आज्ञा हुई कि 'इस समय नवरात्री का पूजन गोवा में करो' इस आज्ञा के अनुसार मैने सबको बताया कि, इस साल नवरात्री का पूजन मैं गोवा में करूँगा।"

33. 'उ' तत्व की सिद्धता,
शिरोड़ा का ज्ञानयज्ञ, श्रीसाईशक प्रतिमा

गोवा में बहुत सारे मंदिर हैं लेकिन उनमें बोलनेवाले देव कितने, चलनेवाले देव कितने और बिना बोले चले कार्य करनेवाले देव कितने ऐसे बहुत सारे सवाल वहाँ थे और इन सवालों के कारण वहाँ पागल बनने की नौबत आई। जो कठिन कार्य था वह कार्य हमने किया लेकिन अब उससे भी कठिन प्रश्न सुलझाने की जिम्मेदारी हम पर आ गई। जीवन के आरंभ में, मैं आज्ञा के अनुसार औदुंबर गया, दूसरे समय नरसोबावाड़ी गया और आज्ञा का पालन किया। अब तीसरी बार यह आज्ञा हुई है कि, "जो सिद्ध किया है उसको तीनो लोकों के लिए तीन भाग करो, इतना गणित है लेकिन यह गणित शांती से सुलझाना आवश्यक है। यदि जल्दबाजी की तो इससे ब्रह्महत्या होगी और उसका भूत माथे पर सवार होगा। मैं गुरूमार्ग में आकर शांत हुआ हूँ। पहले इतना शांत नही था। लेकिन अब उससे भी शांत हुए बिना यह 'अगणित' सुलझाना मुमकिन नहीं होगा। गुरूमार्ग में प्रत्येक बात हमारे मन के मुताबिक होना इसका मतलब गुरूमार्ग नहीं है क्योंकि गुरूमार्ग यह ब्रह्माण्ड़ का मार्ग है। हमारा जन्म पिंड से हुआ है तो स्वाभाविकतः पिंड के अनुसार इच्छा होना यह देह का धर्म है और इसलिए उन इच्छाओं के अनुसार घटित नहीं होना यह भी गुरूमार्ग है। इसलिए गुरूमार्ग में 'आज्ञा' यह सबसे महत्वूपर्ण है। मतलब गुरू की इच्छा क्या है (यह समझकर) उसके अनुसार आचरण करना आवश्यक है यह निश्चय करके मैं गोवा में रूक गया।

गोवा में मुझे यह आज्ञा हुई कि, 'नवरात्री के पहले तुम भक्तों के लिए सम्मेलन लो और वह सम्मेलन गोवा में ही हो।' ऐसी आज्ञा सुनकर मैं सम्मेलन के लिए जगह की तलाश करने लगा। पणजी में जगह काफी नहीं थी इसलिए शिरोड़ा में कामाक्षीदेवी मंदिर की धर्मशाला यह जगह सम्मेलन के लिए तय हुई। पहला सम्मेलन 1977 सितम्बर में हुआ था और उसमें पचहत्तर भक्त उपस्थित थे। सम्मेलन का विषय, 'जीवन उत्पत्ति' यह था। इस प्रकार मुलाकात लेने की पहली बारी थी लेकिन वह सम्मेलन

यशस्वी तरीके से पूर्ण हुआ। और तब सम्मेलन में आए भक्तों ने पूछा कि, 'अब हम फिर कब मिलेंगे ?' मैने उत्तर दिया, 'आगे देखा जाएगा'। सब भक्त अलग ही आनंद में अपने घर वापस गए। मैं भी घर वापस आया। लेकिन उस दिन से दशहरा होने तक मैं एक अलग अवस्था में था। उसमें बहुत विचारों का मंथन हुआ कि जगत् को कोई अलग मार्ग सूचित करना आवश्यक है।

नवरात्री पूजन, आरती और खुद के लिए मुलाकात इस कार्यक्रम में बड़े आनंद से दिन बीते। उस समय आगे की दिशा क्या है यह मालूम हुआ। नरसोबावाड़ी में ॐकार का 'अ' अक्षर सिद्ध हुआ। इस अक्षर को 'उ' अक्षर की जोड़ प्राप्त होना आवश्यक है। इसलिए ज्ञान याने 'उ' तत्व के लिए प्रथमतः यह सम्मेलन हुआ। मतलब 'उ' तत्व का आरंभ हुआ। अगर 'उ' यानि 'ज्ञान' यह नहीं सिखाओगे तो लोगों को 'अ+ज्ञान' ऐसा 'अज्ञान' प्राप्त होगा। इसलिए केवल 'अ' अक्षर सिद्ध होने से उपयोग नहीं है। 'उ' यानि 'ज्ञान' इसका लाभ हुआ तो ही मनुष्य सज्ञान होता है। इसलिए हर साल सम्मेलन लो। उसमें सुबह और दोपहर को ॐकार साधना और मुलाकात ऐसा क्रम रखकर तुम भक्तों को ज्ञानी करो। जीवन के प्रति अज्ञान यह श्राप है। सब साधकों ने आज तक यही किया है और यह शास्त्र समझे बिना लोगों को साधना दे दी है।

कुल आठ सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में महत्व का विषय था "शक्तिपीठ"। जन्म लेने वाले हर एक को जन्म का क्या मतलब है यह समझना आवश्यक है, मतलब पिंड की पहचान होना आवश्यक है। इसलिए भक्तों के लिए आठ सम्मेलन् लिए गए और उनमें, ब्रह्माण्ड का क्या अर्थ है इसकी पहचान साधना द्वारा समझ लेना आवश्यक है यह सीख दी। 'ब्रह्माण्ड' का केवल शाब्दिक विवेचन (स्पष्टीकरण) करने की अपेक्षा उसकी प्रचिति या अनुभव होना आवश्यक है। साधना में पिंड के अंग, 'उच्चार मध्य लय हैं और ब्रह्माण्ड के अंग, "स्वर, ताल सूर" है और ये सिद्ध हुए बिना ॐकार का निर्माण नहीं होता है। ये अंग सिद्ध होने से षट्कोन की आकृती बनने के बाद ही शक्ति को आह्वाहन करना आवश्यक होता है। शक्ति के आह्वाहन के लिए पहले पीठ यानि स्थान तैयार करना आवश्यक है। यह पीठ छह अंगो से युक्त है और ये छह अंग

विशिष्ट (विशेष) प्रमाण में कहना आवश्यक है। उसके पहले पिंड की शुद्धता करनी चाहिए। पिंड मे एक भी दोष बाकी नहीं रहना चाहिए तो ही पिंड तैयार होता है और फिर बाद में ब्रह्माण्ड़ को आह्वाहन करना होता है।

इस प्रकार सब केन्द्रों पर नित्य साधना जारी थी। नवरात्री में श्रीमहालक्ष्मी, श्रीमहासरस्वती और श्रीमहाकाली इनका अनुष्ठान लगाया था। उस समय उन्होंने ऐसा कहा था कि, "हम तीन शक्ति अपनी स्व–इच्छा से एकरूप हो जाएंगी तब शक्तिपीठ की स्थापना होगी। और इस शक्तिपीठ में इस त्रिभुवन में समाई शक्ति जब एकरूप होगी तब भविष्य में इस जगत् को सुख शांती समाधान का लाभ होगा। इसलिए इस दशहरे को हम गुरूशक्ति में विलीन होंगी "। ऐसा आश्वासन देकर उन्होंने आगे कहा कि " भविष्य में कोई और अलग मार्ग की खोज करने से उसका फल प्राप्त होना संभव नहीं होगा क्योंकि प्रचलित वर्तमान काल में श्रीगुरू यही परमेश्वर हैं, यह तुम सबको मान लेना आवश्यक है। हम और श्रीगुरू अलग अलग हैं ऐसा अज्ञान भक्तों में होने के कारण गुरूभेंट होकर, गुरू द्वारा दीक्षा देकर और नर से नारायण बनने का आशीर्वाद देकर भी यह जगत् अज्ञान के कारण ईश्वर की खोज कर रहा है। लेकिन भविष्य में जगत् का मार्गदर्शक ऐसा गुरूमार्ग ही है और उसी मार्ग से जाना हितकर है।" ऐसा आश्वासन सब देवदेवताओं ने दशहरे के दिन दिया। इसलिए 'श्रीसाईशक एक' की घोषणा दशहरे के दिन की गई।

'श्रीसाईशक ' इस शक का शुभारंभ 1982 साल में दशहरे के दिन हुआ और उसके प्रतीक के रूप में चांदी की श्रीसाईशक प्रतिमा बनाकर वह सब भक्तों को पूजन करने के लिए दी गई थी और अब भी दे रहे हैं। यह प्रतिमा ईश्वर ही है क्योंकि आज तक जो ईश्वर के प्रतीक हमारे पूजन में थे उन देवदेवताओं के प्रतीक पूजन में रखने की हमारी इच्छा होकर भी भविष्य में ये प्रतीक प्राप्त होना संभव नहीं है।

इसलिए श्रीसाईशक, श्रीकारण, श्रीमहाकारण इन तीन प्रतिमाओं में उत्पत्ति, स्थिति, लय, इन तीनों शक्ति का समावेश हुआ है। इसलिए इन

प्रतिमाओं से देवदेवता अलग हैं ऐसे विचार से आप भक्त अलग ना होइये। यदि इन देवताओं ने ही यह निश्चित किया है कि, "हम सब को एकत्रित होकर इस जगत् को तारने वाली (जगत् का रक्षण, उद्धार करनेवाली) केवल एक ही शक्ति निर्माण किए बिना इस जगत् को सुख शांती प्राप्त नही होगी," तो सूज्ञ लोगो को यह विचार करना आवश्यक है कि हमारे ही अज्ञान के कारण हमारा जीवन दुखमय हो सकता है। तुम सब भक्तों को सुख की प्राप्ति हो इसलिए तुम्हारे जन्म के पहले ही यह योजना ईश्वर ने बनाई है। यह योजना परम पूज्य बाबा और दादा इन्होंने नहीं निर्माण की, तो यह योजना पच्चीस सौ सालों के पहले की है। जो शक्तिपीठ आज हमें दिखाई देता है उस शक्ति की स्थापना नवनाथों ने की है। यह शक्ति अनादि, अनंत है और उस शक्ति की सेवा करना यह हम मानवों का धर्म है। आज दुनिया में काफी धर्म प्रस्थापित किए हुए हैं, उसके अनुसार कर्म, और उनका तत्वज्ञान यह सब समझ के परे है और जीवन सहजता से जीने का धर्म कौनसा है ? यह ज्ञान नहीं हैं, तब परम पूज्य साईबाबा यानि श्रीदत्तप्रभू ने अवतार लेकर यह सिद्धान्त प्रस्थापित किया है कि, "साई यानि मानवता' यही आज का श्रेष्ठ धर्म है और इस धर्म की साधना है ॐकार साधना। यही उपाय जन्म लेने के लिए और जीवन रक्षण के लिए है और उसके अनुसार आचरण करना यही मोक्ष और मुक्ति है। श्रीसाईशक प्रतिमा पर जो प्रतीक है, वे दो चरण जो हैं उन्हीं का अर्थ मोक्ष और मुक्ति है, इससे अधिक किसी की भी आवश्यकता नहीं है।"

जो आठ सम्मेलन लिए गए उनमें ऐसी सीख दी गई कि जीवन का मतलब क्या है ? और जन्म लेकर केवल सुख का उपभोग लेते रहना और ईश्वर से अधिक सुख माँगते रहना यह अज्ञानी होने का लक्षण होकर जीवन का जो कुछ कार्य है वह प्राप्त करने के लिए हम मानवों ने सदैव प्रयत्न करना इसीमें जीवन की सार्थकता है। इस प्रकार यह ज्ञानयज्ञ होने के बाद आठवें सम्मेलन में शक्तिपीठ का आह्वाहन किया गया। और उसके बाद फरवरी में 'साईधाम' बनाने के लिए गुढ़ी पाड़वा के दिन भूमि पूजन किया गया। इस अवधि तक ॐकार साधना का 'उ' यानि 'ज्ञान होना' इस का अर्थ सब की समझ में आया था और इसलिए सब उत्साह में थे।

34. शक्तिपीठ- स्थापना का प्रारंभ- 'उ' तत्व में श्रीगजानन की प्राप्ति

"शक्तिपीठ मायने क्या है ? जिस प्रकार देवदेवताओं की प्रतिमाएँ और टाक (तांक) यानि प्रतीक होते हैं, या जीवन में कठिनाईयां आने के बाद देवताओं के यंत्र बनाते हैं उस प्रकार शक्तिपीठ है क्या?" यह पूछताछ बहुत से लोगों ने की थी लेकिन मैने उस समय इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया था क्योंकि जब कोई साधक अपनी साधना सिद्ध करता है तब वह साधन सिद्ध होने तक साधक को मौन रखना आवश्यक होता है। उस साधन के बारे में साधक को अपना बेटा या अपनी पत्नि से भी कुछ भी कहना नहीं चाहिए। क्योंकि यदि सिद्धता होने के पहले साधना का उच्चार किया गया तो उसका परिणाम क्या होगा यह कहना मुमकिन नहीं है। साधना के प्रारंभ के पहले जो संकल्प करना होता है वह संकल्प सिद्ध होने के पहले औरों को बताया गया तो वह संकल्प 'विकल्प' हो जाता है। इसलिए साधक को यह जिम्मेदारी निभाना आवश्यक होता है। इसके अनुसार शक्तिपीठ की स्थापना होने तक, सब भक्त केन्द्र पर नित्य साधना जारी रखें ऐसी बिनती सब केन्द्र के भक्तों को की गई थी। इस अवधि में, गणित के अनुसार गोवा से मुंबई तक के पाँच केन्द्र कार्य के लिए योग्य माने गए थे। लेकिन बहुत से लोग अलग अलग सवाल और आशंकाएं पूछ रहे थे जैसे वंदनीय दादाजी मुंबई क्यों नहीं आते हैं ? हमेशा गोवा क्यों जाते हैं ?"

शक्तिपीठ की स्थापना होने तक मुझे स्थल काल समय इनके गणित के बंधनों का पालन करना आवश्यक था। लेकिन फिर भी उस समय केन्द्र पर पिछले बीस सालों से जो भक्त आ रहे थे उनका केवल यही कहना था कि 'हम वंदनीय दादा को तकलीफ देना नहीं चाहते हैं, ' हम केवल एक ही सवाल पूछना चाहते हैं और उनके वे प्रश्न बहुत ही मामूली थे जैसे 'लड़की की शादी कब होगी या लड़के की जो नौकरी है उससे अच्छी नौकरी कब मिलेगी ' आदि। उनके ये प्रश्न मैने सुलझाए होते या नहीं भी सुलझाए होते, तो भी उससे कोई हानि नहीं होनेवाली थी,

लेकिन परम पूज्य बाबा की आज्ञा से जिस कार्य का मैने प्रारम्भ किया था वह कार्य ठीक तरह से हो रहा है या नहीं इसकी किसी ने पूछताछ नहीं की इसलिए मुझे दुख होता है। भक्तों के जीवन में, समय समय पर समस्याएं आती रहेंगी लेकिन, "उनके निराकरण के लिए परम पूज्य बाबा की कृपा हम सबके साथ है," ऐसा विश्वास होने के कारण ही, मैने स्वयं कामकाज करना बंद करके, मैं दूसरे साधन की सिद्धता के कार्य में जुट गया था। तो भक्तों को कम से कम इतना विश्वास तो अपने मन में निर्माण करना आवश्यक था कि, "हमारे साथ कृपा है और हमारे सारे प्रश्न परम पूज्य बाबा और वंदनीय दादा जरूर देख लेंगे"। परम पूज्य साईबाबा ने मुझे जो कार्य करने के लिए कहा था वह कार्य पच्चीस सौ साल से रूका था। भक्तों के प्रश्न वैयक्तिक थे लेकिन परम पूज्य बाबा का प्रश्न संपूर्ण जगत् के लिए था। गुरूमार्ग में सैकड़ों भक्त आते हैं और जाते हैं लेकिन सबूरी किसने रखी है यह सवाल है क्योंकि आज गुरूमार्ग यह केवल ऐहिक काम कर लेने का ही मार्ग है ऐसा समझा जाता है। लेकिन ऐसी अवस्था भक्तों की ना हो और उससे आगे के कार्य में रूकावट ना आए इसलिए परम पूज्य बाबा ने पहले ही सब भक्तों के सुख के लिए प्रबंध कर रखा था और वह प्रबंध था 'तीन प्रतिमाएं'। सब भक्तों को ये प्रतिमाएँ दी जाने के बाद शक्तिपीठ का आह्वाहन किया गया। शक्तिपीठ के आह्वाहन में आप भक्तों को कुछ नहीं करना पड़ा। आप भक्तों ने केवल तीन प्रतिमाओं का मूल्य दे दिया है, लेकिन यह कार्य करते समय मैं, मेरा जीवन भी खो सकता था इससे अधिक इसके बारे में कुछ लिखना योग्य नहीं है।

'साईधाम' की योजना का कार्य जारी था। उस समय मुझे यह आज्ञा हुई कि, "ॐ के जो तीन अक्षर यानि तीन शक्ति इस त्रिभुवन में है उनमें से दो सिद्ध हुई है अब तीसरा अक्षर 'म' यानि तीसरी शक्ति सिद्ध करनी है इसलिए तुम तैयार रहो।" उस समय मैं हमेशा की तरह गोवा मे था। उस दिन आरती और नित्य साधना के बाद यह आज्ञा हुई कि, 'तुम कल रत्नागिरी जाओ। वहाँ जाने के बाद वहाँ जो अगली आज्ञा होगी उसके अनुसार तुम कार्य करो।" इसके अनुसार मैं अन्य भक्तों के साथ रत्नागिरी में हमारा जो केन्द्र था वहाँ गया। उस केन्द्र पर दोपहर के समय

आए एक भक्त ने मुझे यह विनती की कि, "आप शाम को मेरे घर आइये और वहाँ आरती कीजिये। " फिर वे रत्नागिरी से अपने गांव गए। शाम को मैं उनके घर गया। वहाँ आरती हुई। सब भक्तों ने तीर्थ प्रसाद लिया। मैं परम पूज्य बाबा के सामने बैठा था तब आरती के लिए वहाँ आए उस गांव के देवस्थान के मालिक ने मुझे कहा कि, " मुझे एक प्रश्न पूछना है। अगर आपकी इजाजत हो तो पूछता हूँ।" उस समय तुरंत परम पूज्य बाबा ने मुझे कहा कि "इनका यह प्रश्न सामान्य नहीं है। इसलिए उस पर गहराई से विचार करो। इस गांव की स्थिति कठिन है। यह प्रश्न किसी एक का ना होकर संपूर्ण क्षेत्र का है।" बाबा की यह बात सुनकर मैं जागृत हुआ। तब तक मेरी स्थिति अलग थी, जैसे पहले विभूतियों के संचार के समय मेरी अवस्था होती थी वैसी तब मेरी अवस्था हुई।

फिर देवस्थान के मालिक से मैने कुछ सवाल पूछे कि, " यह मंदिर इतना पुराना होकर भी इस मंदिर के देवता की कृपा गाववालों पर नहीं है, जिसके कारण गांव में बरकत नहीं है, यहाँ के सब लोग कष्ट सह रहे हैं फिर भी उन्हें फल की प्राप्ति नहीं हो रही है, इसका कारण यह है कि गांव में जो मूल देवस्थान है उसके देवता यहाँ नहीं हैं, मुझे एक मंदिर और दो देवताएं दिखाई देते हैं, ऐसा क्यों है ? अगर आपको इस मंदिर के इतिहास के बारे मे कुछ जानकारी है तो वह आप मुझे बताईये। " तब उन्होंने कहा कि " पहले इस देवस्थान में लक्ष्मी नारायण की मूर्ति थी। हमारे गांव के कुछ ही दूरी पर जो दूसरा गांव है, उस गांव के मंदिर में भगवान की मूर्ति ना होने के कारण उस गांव के लोगों ने हमारे देवस्थान की मूर्ति चुरा कर उसकी स्थापना उनके गांव के मंदिर में की थी, तबसे हमारा देवस्थान मूर्ति के बिना खाली ही था। कुछ साल बाद पेशवेजी को यह मालूम हुआ कि रत्नागिरी के नजदीक के शिरगांव में बनाया गया मंदिर मूर्ति के बिना खाली है। पेशवेजी श्रीगणेशजी के भक्त थे अतः उन्होंने अब हमारे देवस्थान में जो मूर्ति है उस श्रीगणेशजी की मूर्ति की हमारे देवस्थान में स्थापना की, और मंदिर के खर्चे के लिए दान भी दी। अभी हम जहाँ बैठे हैं वह, यह वास्तु भी पेशवेजी ने ही दी है। इस देवस्थान का इतना ही इतिहास मुझे मालूम है। अब आप ही इसके बारे मे कुछ कीजिये। "

उस देवस्थान का इतिहास सुनने के बाद मैं वहाँ से रत्नागिरी आया। दूसरे दिन केन्द्र पर आरती की। बहुत से लोग तब दर्शन के लिए आए थे, उस समय उन लोगों को से मिलकर मैं एक कमरे में बैठा रहा और मेरे साथ जो सेवक थे उन्हें मैने कहा कि "अब कामकाज तुम करो। मैं कमरे में बैठता हूँ कामकाज पूर्ण होने के बाद तुम मुझे मिलो।" कमरे में बैठकर मैं साधना करने लगा लेकिन पहले जैसी साधना नही हो रही थी। बहुत देर तक बैठकर भी कुछ जवाब नहीं मिला इसलिए मैं यह शोध लेने लगा कि क्या मेरे हाथों कुछ गलती हुई है। आखिर एक दृश्य दिखाई दिया कि ' शिरगांव के गणेशजी के मंदिर में एक स्त्री गणेशजी को कह रही है कि "आप मेरा मंदिर छोड़ दीजिए। अब आपकी यहां आवश्यकता नहीं है, आप जहाँ से आए हैं वहाँ जाईए। आज अनेक साल से जो लोग दुखी हैं उन्हें आप सुखी कीजिए। " यह जो दृश्य मैनें देखा वह दृश्य मैने पहले कभी नहीं देखा था। इसके बाद मैं परम पूज्य बाबा की प्रार्थना करके उनका क्या आदेश है इसकी प्रतीक्षा कर रहा था तब परम पूज्य बाबा ने यह कहा कि, ' गोवा में तुम्हें बताया था कि कल रत्नागिरी जाओ और वहां जाने के बाद तुम्हें यह समझ आएगा कि आगे का क्या कार्य है। तो ॐकार साधना मे जो 'म्' तत्व यानि श्रीगणेशजी की जो कमी थी, उसकी प्राप्ति का समय आया है। इसलिए श्रीलक्ष्मीजी जिस मंदिर की मांग कर रही हैं वह मंदिर उन्हें देकर तुम श्रीगणेशजी को तुम्हारे साथ रखो। तुम्हें इस बालरूप श्रीगणेशजी का जतन करना है। और ॐकार साधना का 'म' तत्व सिद्ध होने के बाद मतलब 'म्' तत्व की साधना सिद्ध होने के बाद हमें शक्तिपीठ की स्थापना करनी है। " इस घटना से मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और लगा कि यदि देवी देवताओं में भी विवाद होते हैं तो फिर मनुष्यों की नस नस में जो झगड़े बस गए हैं उनके बारे मे समझना मुमकिन नहीं है, यह सत्य है।

उस देवस्थान में ईष्ट देवता का आदरपूर्वक सम्मान करने के बाद श्रीगणेशजी को साथ लेकर मैं गोवा आया। दूसरे दिन सुबह हमेशा के अनुसार आरती की और साधना में बदल किया। जो नामस्मरण ' ॐ श्री साईनाथाय नमः' कहते थे उसके बजाय 'ॐ नमः शिवाय' यह पंचाक्षरी

नामस्मरण करना प्रारम्भ किया और यह कहने की विनती सब केन्द्र के भक्तों को की। "ॐ नमः शिवाय' यह नामस्मरण श्रीशंकरभगवान के प्रति नहीं है। 'म्' यह अक्षर लय तत्व का कारक है। लय का अर्थ शून्य अवस्था यानि पूर्णत्व है। वह प्राप्त करने के लिए साधना में पांच कोषों का समावेश होना आवश्यक है और उसके लिए नाभी स्थान से ब्रह्म स्थान तक ॐकार और नामस्मरण यह साधना करना आवश्यक है। जब ये पांच स्थान शुद्ध होंगे तब – अ+उ+म = ॐ यह सिद्ध होगा। फिर भी इसके बाद ॐकार साधना संपूर्ण हुई ऐसा मत कहो। बहुत से लोगों को ॐकार साधना यानि क्या, यह समझ नहीं है और वह समझना मुमकिन नहीं है। इसलिए जितनी अपनी ताकत होती है उतना ही सागर में तैरना, योग्य है। जैसे सागर का अंत नहीं है वैसी ही यह साधना है।"

इस प्रकार साधना जारी थी। उस समय मेरे साथ जो भक्त साधना कर रहे थे उन्हें यदि उस समय पूछा होता कि क्या अनुभव प्राप्त हुआ तो उनके लिए भी वह अनुभव बताना मुमकिन नहीं था। मुझे भी अलग अलग अनुभव और प्रतिसाद की प्राप्ति हो रही थी। जैसे जैसे दिन जाने लगे और नियोजित दिन नजदीक आने लगा तो मैं भयभीत होने लगा क्योंकि जब कोई एक साधना निश्चित की जाती है तो वह 'शक्ति का आवाहन' होता है। वह शक्ति कब प्राप्त होगी यह बता नही सकते हैं। शक्ति यह निसर्ग (प्रकृति) की संपत्ती है। किसी विशिष्ट काल में ही वह सिद्ध होगी, यह नहीं कह सकते हैं क्योंकि शक्ति किसी की नौकर नहीं है। जैसे बारिश, जो होती है वह प्रकृति के अनुसार होती है और वेधशाला भी यह निश्चित रूप से नहीं बता सकती है कि किस विशिष्ट दिन को बारिश होगी। इसी प्रकार साधना भी हमारे आधीन नहीं है। साधना के लिए साधक को स्थल काल समय आदि से सिद्ध होना आवश्यक होता है। जैसे निसर्ग में बारिश के पहले बादल आते हैं या आम के पहले पेड़ पर बौर आता है वैसी ही उस समय मेरी अवस्था हुई थी क्योंकि आगे 'शक्तिपीठ' की स्थापना करनी थी और इसके लिए 'साईधाम' का काम विशिष्ट दिनों में पूर्ण होना आवश्यक था। इसलिए 'साईधाम' की वास्तु कब बनती है, उसकी ओर मेरा ध्यान था। 'साईधाम' बनाना आसान नहीं था।

एक घर हमारे मन के मुताबिक नही बनता है और यह तो 'साई–धाम' (साई का घर) था, तमाम (सब) भक्तों का 'निजधाम' था। वह जिम्मेदारी सीधी साधी नहीं थी। आज 'साईधाम' बन गया है लेकिन यदि उस समय 'साईधाम' की वास्तु नहीं बनती तो जिस शक्ति का आगमन होनेवाला था और बाद में उसकी प्रतिष्ठापना 'शक्तिपीठ' स्वरूप में करनी थी उसके बजाय तब मेरी बली जा सकती थी। ऐसा दिव्य(बड़ा कठिन कार्य) शक्तिपीठ है। 'शक्तिपीठ' में चार ही अक्षर हैं लेकिन उसमें आठ दिशाओं का समावेश है मतलब 'जयजयकार'। यह साधना हम सब भक्तों को केवल हम सब को साईबाबा के दास होने के कारण ही प्राप्त हुई है। हम किसी वस्तु को गति दे सकते हैं लेकिन 'गति को' प्रतिमा बनाना यह ईहलोक में ही नहीं तो स्वर्गलोक में भी कठिन है। ऐसी साधना परमपूज्य बाबा ने हम भक्तों को सिखाई है।

बाद मे 'साईधाम' का कार्य संपूर्ण हुआ। शक्तिपीठ की स्थापना चैत्र पूर्णिमा को करनी थी। इसलिए सब केन्द्र के भक्तों को आमंत्रित किया गया। प्रथमतः ऐसा लगा कि 'साईधाम' की वास्तु सिद्ध करने के लिए विद्वान ब्राह्मणों को आमंत्रित किया जाए लेकिन बाद में यह ध्यान में आया कि ऐसा सोचना यह हमारी कितनी बड़ी गलती है। साईधाम यह बाबा की वास्तू है। उसका 'निजधाम' होना आवश्यक है इसलिए यह वास्तु स्वयं सिद्ध करेंगे। इसलिए उन विचारों के लिए मैने बाबा से क्षमायाचना की। इसके बाद पणजी केन्द्र 'साईधाम' में आया और ॐकार साधना की जो सांगता (समाप्ति) 'म' इस अक्षर की प्राप्ति से करनी थी उसकी तैयारियाँ 'साईधाम' में साधना द्वारा शुरू हुई। रत्नागिरी से वापस आने के बाद, 'अब निश्चित साधना शुरू हुई' यह मालूम होने लगा। जैसे बेटा जब तक छोटा है तब तक हम उससे लाड़ प्यार करते हैं लेकिन उसकी दाढ़ी मूँछ आने के बाद हम यह समझ लेते हैं कि अब वह प्रौढ़ (बड़ा) हुआ है वैसे मुझे अब अपनी साधना प्रौढ़ हुई है ऐसा प्रतीत होने लगा। फिर 'म' यह अक्षर कहाँ सिद्ध होगा, नरसोबावाड़ी, गोवा, रत्नागिरी या गोकर्ण में ? ये विचार मन में आने लगे। एक दिन, मैं जब घूमने मांडवी नदी के पुल पर गया था उस समय अचानक आकाश में बादल छाये, बिजली चमकने लगी,

तो वापस आते समय मैं एक भक्त के घर रूक गया। बहुत बारिश हुई और बिजली की आवाज सुनी तब मैने आकाश में जो बिजली की चमक देखी वह ॐकार स्वरूप में थी और उस समय मुझे ऐसे लगा कि इस ॐकार की दिशा गोकर्ण की ओर है। पहले यानि पुरातन काल में रावण ने श्रीशंकर भगवान को प्रसन्न करके जब आत्मलिंग यानि ब्रह्माण्ड की प्राप्ति की थी तब श्रीगणेशजी ने उस आत्मलिंग को रावण से प्राप्त किया था और वही आत्मलिंग गोकर्ण में है इस विचार के कारण मैं शोध करने लगा था। लेकिन गुरूमार्ग में 'शोध लेना' यह श्राप है और 'बोध लेना' यह कृपाशीर्वाद है इसलिए बाबा की आज्ञा क्या है ' इसकी उत्सुकता से प्रतिक्षा कर रहा था तब बाबा ने यह बताया कि " गोकर्ण में आत्मलिंग यानि ब्रह्माड है। उसके बारह अंग है और बारह स्थान हैं वे हमें नहीं चाहिए क्योंकि हमारी ॐकार साधना में ॐकार के जो बारह अंग हैं वे हमें प्राप्त होना आवश्यक है। वे बारह अंग 'स्वर और सूर' इनकी एकरूपता के लिए आवश्यक हैं। वहीं 'म' तत्व यानि 'वाणी' है। इस तत्व में स्वर और सूर इनका संगम होना आवश्यक है जिसके कारण आने वाले भक्तों को सौ प्रतिशत आशीर्वाद की प्राप्ति होगी। यह तत्व श्रीगोरक्षनाथजी के पास है। इसलिए तुम बत्तीस शिराळा जाओं।"

35. कर्म-आधीन अवस्था की प्राप्ति

मैं पहले दो बार बत्तीसशिराळा गया था लेकिन तब केवल वहां के श्रीगोरक्षनाथ जी के स्थान के दर्शन करने गया था। फिर भी उस समय वहाँ मेरी पूर्वस्मृती जागृत हुई थी और तब वहां से यह विचार करके मैं वापस आया था कि हमारा आगे का कार्य श्रीगोरक्षनाथ जी पर निर्भर है इसलिए बाद में इनका बुलावा आने के बाद यहाँ फिर से आएंगे। बाद में जब एक बार मैं कर्हाड़ में था तब श्रीगोरक्षनाथजी का बुलावा आया कि, 'तुम यहाँ आओ' तो उसके अनुसार कुछ भक्तों के साथ मैं बत्तीसशिराळा गया था। उस समय सबकी ओर से श्री गोरक्षनाथजी के सामने एक श्रीफल रखकर आँखे बंद करके जब मैं प्रार्थना कर रहा था तब मेरे आँखे खोलने से पहले ही वहाँ के पुजारी ने मेरा रखा श्रीफल 'प्रसाद' करके देने के लिए उठाया और मेरे साथ आए हुए एक भक्त ने आगे आकर उस श्रीफल को स्वीकार किया। मेरी प्रार्थना पूर्ण होने के पहले ही पुजारी जी ने श्रीफल उठाया और मेरे बजाय उस श्रीफल को स्वीकार अन्य भक्त ने किया यह अवमान या प्रमाद तब हो गया। मैनें आँखे खोली इतने में ही लाखों कतईयां मक्खियों का झुण्ड़ (समूह) उस भक्त की ओर आया तब वह भक्त इधर उधर दौड़ने लगा, वैसे ही तब मेरे मना करने पर भी जो भक्त वहाँ आए थे उनके पीछे भी कतईयां मक्खियां लगी थीं क्योंकि वे भक्त आज्ञा ना होते हुए भी वहाँ आए थे। आखिर मेरे और वहाँ के महंत जी के प्रार्थना करने के बाद वे कतईयां मक्खियां शांत हुई। आज इस प्रसंग के बाद कुछ साल बीत गए हैं लेकिन उस प्रसंग का महत्व मैं आज लिख रहा हूँ। उस समय आई वे 'कतईयां मक्खियां' नहीं थी तो उनके रूपमें श्रीगोरक्षनाथजी ने हमें आगे का कार्य बहुत बिकट (कठिन) है इसका यह एहसास करा दिया था कि जो भक्त इस मार्ग के लिए अपात्र होंगे उन्हें पहले सिद्ध करना आवश्यक है नहीं तो कर्मरूपी कतईयां मक्खियां उन्हें काटेंगी। इसलिए सब भक्तों को 'कर्म आधीन' यह अवस्था प्राप्त होना आवश्यक है जिसके लिए मैं बाद में तुम्हें बुलाऊँगा।''

जो साधना उस समय की जाती थी उस साधना में यह विषय नहीं था कि 'कर्म आधीन' हो जाए। उस समय साधना में यह आशीर्वाद था कि कर्मो

35. कर्म-आधीन अवस्था की प्राप्ति

मैं पहले दो बार बत्तीसशिराळा गया था लेकिन तब केवल वहां के श्रीगोरक्षनाथ जी के स्थान के दर्शन करने गया था। फिर भी उस समय वहाँ मेरी पूर्वस्मृती जागृत हुई थी और तब वहां से यह विचार करके मैं वापस आया था कि हमारा आगे का कार्य श्रीगोरक्षनाथ जी पर निर्भर है इसलिए बाद में इनका बुलावा आने के बाद यहाँ फिर से आएंगे। बाद में जब एक बार मैं कर्हाड़ में था तब श्रीगोरक्षनाथजी का बुलावा आया कि, 'तुम यहाँ आओ' तो उसके अनुसार कुछ भक्तों के साथ मैं बत्तीसशिराळा गया था। उस समय सबकी ओर से श्री गोरक्षनाथजी के सामने एक श्रीफल रखकर आँखे बंद करके जब मैं प्रार्थना कर रहा था तब मेरे आँखे खोलने से पहले ही वहाँ के पुजारी ने मेरा रखा श्रीफल 'प्रसाद' करके देने के लिए उठाया और मेरे साथ आए हुए एक भक्त ने आगे आकर उस श्रीफल को स्वीकार किया। मेरी प्रार्थना पूर्ण होने के पहले ही पुजारी जी ने श्रीफल उठाया और मेरे बजाय उस श्रीफल को स्वीकार अन्य भक्त ने किया यह अवमान या प्रमाद तब हो गया। मैनें आँखे खोली इतने में ही लाखों कतईयां मक्खियों का झुण्ड़ (समूह) उस भक्त की ओर आया तब वह भक्त इधर उधर दौड़ने लगा, वैसे ही तब मेरे मना करने पर भी जो भक्त वहाँ आए थे उनके पीछे भी कतईयां मक्खियां लगी थीं क्योंकि वे भक्त आज्ञा ना होते हुए भी वहाँ आए थे। आखिर मेरे और वहाँ के महंत जी के प्रार्थना करने के बाद वे कतईयां मक्खियां शांत हुई। आज इस प्रसंग के बाद कुछ साल बीत गए हैं लेकिन उस प्रसंग का महत्व मैं आज लिख रहा हूँ। उस समय आई वे 'कतईयां मक्खियां' नहीं थी तो उनके रूपमें श्रीगोरक्षनाथजी ने हमें आगे का कार्य बहुत बिकट (कठिन) है इसका यह एहसास करा दिया था कि जो भक्त इस मार्ग के लिए अपात्र होंगे उन्हें पहले सिद्ध करना आवश्यक है नहीं तो कर्मरूपी कतईयां मक्खियां उन्हें काटेंगी। इसलिए सब भक्तों को 'कर्म आधीन' यह अवस्था प्राप्त होना आवश्यक है जिसके लिए मैं बाद में तुम्हें बुलाऊँगा।''

जो साधना उस समय की जाती थी उस साधना में यह विषय नहीं था कि 'कर्म आधीन' हो जाए। उस समय साधना में यह आशीर्वाद था कि कर्मो

का केवल विमोचन हो जाए। मतलब जो कर्म प्रतिकूल है वे कर्म अनुकूल होना यह साधना तब सिद्ध हुई थी। लेकिन अब कर्म आधीन हो इसलिए साधना सिद्ध करना आवश्यक था जिससे कर्म का ईष्ट फल निश्चित तय कर सकेंगे। मतलब कठिन मार्ग बाकी है और क्या करें यह समझ नहीं आ रहा था इसके कारण मैं निराश हो रहा था। उस समय सम्मेलन जारी थे। फिर मुझे दिन रात 'अहं, त्वं, इदं' ये शब्द सुनाई देने लगे लेकिन इन शब्दों का अर्थ समझ नहीं आता था। आज मैं सबको 'अहं, त्वं, इदं ' इन शब्दों का अर्थ समझा सकता हूँ लेकिन उस समय, "ये शब्द मेरे ही समझ में नहीं आते हैं तो औरों को उनके बारे मे क्या बताए" यह प्रश्न था। जिस प्रकार मुझे स्थित्यंतर, स्थिति और अवस्था इनका अर्थ बाद में समझ आया यह मैनें पहले लिखा है, वैसे ही उपर लिखे 'अहं, त्वं, इदं ' इन शब्दों का अर्थ अब समझना है और वह अर्थ समझने के बाद मैं उसे सिद्ध करूंगा यह विचार मै कर रहा था। तब श्रीगोरक्षनाथजी ने बताया कि, ' जो भक्त हैं वे सेवक होना आवश्यक है। ' 'सोना लो' कहने पर उसे सोने के लोभ से पागल आदमी भी हाँ कहेंगे लेकिन 'मिट्टी लो' कहने से मिट्टी कौन लेगा ? यह सवाल तब खड़ा रहा। 'भक्त' इस से 'सेवक' इस अवस्था में स्थित्यंतर होना आवश्यक है तो मैं स्वयं ही सेवक हूँ या नहीं, यह आशंका मन में आई। आज हम केवल भक्ति कर रहे हैं इसलिए हम भक्त हैं यह सच नहीं है। जैसे मिट्टी का रूपांतर पहले लोहे में होना आवश्यक होता है तभी लोहे का सोना हो सकेगा। केवल मिट्टी होने से उपयोग नहीं है। पारस लोहे को सोना बनाता है लेकिन इसके लिए मिट्टी का लोहा (लोखण्ड़) होना आवश्यक है। लोहा–लोखण्ड़ का क्या अर्थ है ? 'लो–खण्ड़' मतलब 'लोककल्याण की सेवा में खंड (रुकावट) नहीं होना ' और ऐसी भक्त की धारणा होने के बाद उस भक्त को सेवक कर सकेंगे। इतना विषय गोवा में समझ आया।

इसे के बाद मैंने बाबा से पूछा कि, ' आगे का क्या मार्ग है ?' उस समय दीपावली थी। पाड़वा के दिन केन्द्र में आरती हुई। भक्तों ने तब वहाँ सजावट की थी और सब जगह दिये जलाए थे। तब परम पूज्य बाबा ने पूछा कि " ये जो दिये जलाए हैं उनमें तेल कितना है और पानी कितना है ? और जो दिए जलाए गए हैं उनमें से कितने, जल रहे हैं यह अपने मन में सोच लो फिर मैं आगे का

साधन बताऊँगा। केवल 'दीपावली' हुई यह कहना उचित नहीं है तो वह दीपावली हमें 'पावली' यानि लाभदायक हुई या नहीं यह सोचना आवश्यक है।"

फिर 'कर्म आधीन' यह अवस्था कैसे प्राप्त होगी, उसके लिए क्या प्रयत्न करना आवश्यक है यह विचार मैं कर रहा था। उसी समय गुरूबंधुओं को लेकर मैं दिल्ली आया था, मन में कुछ सोच विचार भी नहीं था तब 'कुतुबबाबा' इन परम पूज्य विभूति का आगमन हुआ। उस दिन भोर को जब मैं जाग गया तो मुझे लगा कि कोई मुझे पुकार रहा है। बाद में फिर से नींद आने लगी लेकिन वह नींद नहीं थी। उस अवस्था मे मैने जो मज़ार देखी वैसी मज़ार मैने जगत् में पहले कभी नहीं देखी थी। क्योंकि जगत् में जो मज़ार है उन पर पत्थर या संगेमरमर की चौकी लगाई होती है। लेकिन उस दिन मुझे जिस मज़ार के दर्शन हुए वह मिट्टी की मज़ार थी और, "वैसी मज़ार जगत् में एक ही है, और ''तुम वहाँ के दर्शन करके आओ'' ऐसी आवाज तब मैने सुनी। इसके अनुसार मैने सुबह उठकर स्नान किया और आरती करके सब भक्तों को लेकर मैं मज़ार के दर्शन के लिए गया। लेकिन हमें रास्ता पता नहीं था। पूछने पर एक व्यक्ति ने कहा, 'सीधे जाओ' फिर दाहिनी तरफ मुड़ो, फिर बांई तरफ मुड़ो ' वास्तव में यह कहना किसी को भी सीधा साधा लगेगा लेकिन मुझे उस वाक्य में गूढ़ अर्थ क्या है यह समझ आया क्योंकि दिल्ली आने के पहले श्रीगोरक्षनाथजी ने जो मुझे कहा था कि 'कर्म आधीन कर लो और बाद में मुझे मिलो।''

फिर हम सब उस दरगाह में गए। वहां के मुजावर ने जैसा बताया वैसा पूजा का साहित्य मँगवा कर पूजा की। फिर मन में यह प्रश्न निर्माण हुआ कि अब प्रार्थना क्या करें ? क्योंकि मुजावर जो प्रार्थना बता रहे थे वह प्रार्थना ऐहिक थी। इसलिए तब मैं खामोशं रहा। तब मज़ार से यह संदेशा मिला कि, ' तुम जिस कार्य के लिए आए हो वह कार्य पूर्ण होगा ऐसा मेरा आशीर्वाद है। अब तुम वापस जंाओ। मेरा इस कार्य में आगमन हमेशा जैसा नहीं है। अत्यंत अल्प अवधि में यह साधन सिद्ध होना आवश्यक है। भगवान का भंडारा यानि महाप्रसाद होता है और तब उसमें बहुत सारे आदमी आकर खाना खाके जाते हैं लेकिन उन्हें पेट की भूख

है या ईश्वर की, इसका विचार करो। परलोक में जो आत्माए हैं वे अगणित हैं इसलिए सर्वप्रथम जिनका वंशविमोचन और दीक्षा हुई है ऐसी आत्माओं को यह साधन पहले बताओ और फिर बाद में अन्य लोगों को बताओ। जब मनुष्य परलोकवासी होता है और उसका शरीर दहन करने के लिए ले जाते हैं तब उस मृत शरीर का मुँह सामने होता है। उसका दहन करके लोग उससे छुटकारा पाना चाहते हैं लेकिन इसके लिए जो विधि शास्त्रों में बताई गई है उनकी परवाह ना करके, अज्ञान के कारण जो विधि करनी नहीं चाहिए ऐसी विधि की जाती है और इसके कारण परलोक में जाने के बाद भी आत्मा की कर्मो से मुक्तता नहीं होती है। वास्तव में इस विधि की चर्चा करना गैर है। लेकिन 'कर्म आधीन होना' इसका मतलब क्या है यह विचार करना आवश्यक है। मनुष्य की मृत्यु के बाद जो दहन विधि है वह करने से उसकी आत्मा का आगे का मार्ग सुलभ होता है। मतलब पिछले जन्म के आखिरी संस्कार यथायोग्य हुए तो पुनश्चः जन्म प्राप्ति के समय जो तीन ऋणानुबंध जुड़ जाते हैं वे कर्म से एकरूप ना होकर कर्त्तव्य में जुड़ जाते हैं और ये कर्त्तव्य दानधर्म तथा ईश्वर सेवा करने से मुक्त होते हैं और दानधर्म तथा ईश्वर सेवा ना करने के कारण यह कर्त्तव्य, कर्त्तव्य ना रहकर 'कर्म' के रूप में भुगतना पड़ता है। इसलिए महारूद्र स्वाहाकार होने के बाद, वंश के जो दोष विमोचित किए गए उन दोषों का प्रायश्चित करने के लिए श्रीपंतमहाराजजी के यहाँ 'अन्नदान' यह योजना कार्यान्वित की है और उसमें हमारे भक्तों के नाम से कुछ रकम जमा की है और बाकी जिम्मेदारी श्रीपंतमहाराजजी ने ली है। इसके अलावा अभी भी जो आत्माएं 'कर्म आधीन ' हैं उनसे तकलीफ ना हो इसलिए तीन शेष पूजन में रखे हैं और उनका पूजन 'साईधाम' में हो रहा है। बाद में आज्ञा के बाद उनका बत्तीसशिराळा में विसर्जन किया जाएगा '' यह परम पूज्य कुतुबबाबा ने कहा। इसके अनुसार सब भक्तों का जीवन जो 'कर्माधीन' था वह 'कर्म आधीन 'हुआ और उसकी सांगता (समापन) बत्तीसशिराळा इस श्रीगोरक्षनाथजी के पवित्र तीर्थक्षेत्र मे हुई। उस समय यद्यपि मैं कहाड़ में था तो भी बीमार होने के कारण हॉस्पिटल में था। लेकिन यह विधि संपूर्ण हुई। मतलब वंशविमोचन यह विधि परिपूर्ण हुई फिर भी इस विधि की तकलीफ कभी कभी होती है।

36. साधना में बदल

बाद में परम पूज्य श्रीगोरक्षनाथजी की आज्ञा के अनुसार साधना में बदल किया। पहले सब भक्त जो ॐकार करते थे और जिस प्रकार से नाम स्मरण करते थे उसमें पांच स्थान यानि पांच कोश इनका समावेश था। ये पांच स्थान यानि पांच कोश एक दूसरे के पूरक हो जाने के बाद कंठस्थान को प्रमुख मानकर उसका जो स्वर है उस स्वर में सब साधना करना आवश्यक है। देह और आत्मा यानि पिंड और ब्रह्माण्ड इनकी गति अलग अलग है इसलिए श्रीपंतमहाराजजी ने एक आरती में कहा है कि 'गुरू के बिना गति प्राप्त नहीं होती है'। पिंड की निश्चित गति नहीं है लेकिन ब्रह्माण्ड की निश्चित गति होती है। इसलिए हम जो साधना कर रहे है, वह पिंड के अनुसार नहीं होनी चाहिए। यदि हम पिंड की गति के अनुसार साधना करेंगे तो हमारी प्रगति होने की अपेक्षा हमारी अधोगति होगी। इसलिए आप भक्तों को साधना का ज्ञान होना आवश्यक है और उसे बारिकी से देखकर साधना करना आवश्यक है। जो साधना आपको सिखाई गई है उस साधना की सिद्धता में यदि विलंब हुआ तो कोई हर्ज नहीं लेकिन जो आपको साध्य होगी वह दूसरी अवस्था है। आपकी पहली अवस्था 'साधक अवस्था' थी, अब आपको 'सिद्ध अवस्था' प्राप्त हुई है। यह अवस्था प्राप्त होने के लिए आपको कोई तप या तपश्चर्या नहीं करनी पड़ी थी तो केवल गुरूमार्ग को स्वीकार करने से ही आपको उसका लाभ प्राप्त हुआ है। नहीं तो इस जन्म में यह अवस्था प्राप्त होना बहुत मुश्किल है।

जीवन के आरंभ में श्रीभैरवानाथजी ने मुझे कहा था कि "तबला सीख लो नहीं तो तुम्हारे जीवन का तबेला (घोड़े बांधने की जगह) होगी और फिर तुम कहोगे कि ईश्वर से मिलकर भी जन्म व्यर्थ हो गया "। इस तरह जीवन व्यर्थ ना हो इसलिए पहली अवस्था में 'ताल' पर ध्यान देना आवश्यक है। जीवन में 'ताल' का ख्याल रखना मुश्किल है। पच्चीस साल की उम्र को 'गद्धेपंचविशी'–गधे जैसी अवस्था' कहा जाता है क्योंकि उस समय ताल का ख्याल रखना बहुत कठिन है। कंठस्थान मे दो ध्वनि होती है। पहली ध्वनि पिंड की है और दूसरी ध्वनि आत्मा की है। पिंड की

आवाज में, साधना में यदि लाखो बार नामस्मरण किया गया तो भी परलोक जाने के बाद उस नामस्मरण का स्मरण नहीं रहता है इसलिए सीमित साधना यदि आत्मा से की गई तो इस जीवन के उपकारों का ऋण अदा हो जाता है। पिंड की आवाज में लाखों बार नामस्मरण किया तो भी परलोक जाते समय यही जवाब मिलता है कि 'नीचे उतरो' मतलब 'फिर से जन्म लो' इसलिए सूज्ञ लोगों को साधना का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। 'साधना' यह तीन अक्षरों का शब्द है लेकिन इह जन्म में इन 'तीन' अक्षरों का अर्थ समझने से तीनो लोकों की प्राप्ति अनायास होती है।

इस साधना में प्रथमतः 'उच्चार' महत्वपूर्ण है। सर्वाभूति यानि सब प्राणियों में एक ही आत्मा है। जनम प्राप्त होने के बाद जो द्वैत दिखाई देता है वह अज्ञान है। ' मैं किसी एक का हूँ ' यहां से द्वैत का आरंभ होता है। जाती–पाती, धर्म पंथ, गुरूमार्ग और आखिर देव देवता इनके कारण हमारे उच्चार फिर आचार और उनके अनुसार विचार ये भिन्न भिन्न होते हैं और हो गए हैं। जगत् में जो जीव हैं उन सबमें 'नर' सर्वश्रेष्ठ है और आखिर इस नर का 'नारायण' होता है लेकिन कब ? यह वाक्य केवल कहने से नर का नारायण नहीं होता बल्कि यदि आचार विचारों में बदल किया तो ही 'नर का नारायण' होगा और उसके लिए जगत् में एक ही मार्ग है वह है गुरूमार्ग। गुरूमार्ग की सीख क्या है इसका अभ्यास करना आवश्यक है। यह मार्ग ईश्वर से मुलाकात होने के लिए नही है। ईश्वर हमारे पास हैं इसकी औरो को पहचान होने के लिए अपना आचरण बदलना आवश्यक है। खुद से दूसरों को दुख पहुंचाने के बजाय हमे 'जगत को आनंदमय करना है' यह विचार निर्माण करना आवश्यक है और उसके लिए साधना है। मतलब मुझे औरो से क्या लाभ होगा इस विचार का त्याग करके धन प्राप्ति के लोभ का त्याग किया तो जगत् को सुखी कर सकेंगे। जब तक लोभ है तब तक जगत् हमसे अनेक योजन (असंख्य मील) दूर है और फिर हमे नर से नारायण इस अवस्था की प्राप्ति ना होकर हमारा ही रामायण होगा। इसलिए कोई मंत्र, महाभारत या रामायण पढ़ने के बजाय 'हम कैसे बचेंगे' इसका बोध लेना आवश्यक है।

करीबन चालीस साल पहले परमपूज्य बाबा ने आज्ञा दी इसलिए इस कार्य का आरंभ हुआ। उस समय परम पूज्य बाबा के जो भक्त कार्य में आएंगे उनके लिए जो प्रार्थना लिखकर दी, वह प्रार्थना हम सुबह शाम करते हैं। उस प्रार्थना का अर्थ क्या है यह समझ लेना आवश्यक है, अब केवल तोते जैसा नहीं बोलना चाहिए। इस प्रार्थना में जो विषय है उसका मनन और चिंतन होना आवश्यक है। उस प्रार्थना की केवल एक ही पंक्ति अध्ययन करने के लिए ली तो उसके लिए यह जन्म भी पर्याप्त नहीं है। मतलब जो है वह तुम्हारे साथ ही है लेकिन अज्ञान के कारण हम राह से भटक गए है।

श्रीनाथपंथ में एक ही वाक्य है और उस वाक्य में ही सब कुछ है। वह वाक्य है 'अलख निरंजन'। इन दो शब्दों में दो अर्थ है एक पिंड और दूसरा ब्रह्माण्ड। और तीसरे हम हैं जिन्हें इन दो तत्वों को जोड़ना है। इसका अर्थ 'नाथपंथ' है वरना हमारे हिस्से 'अनाथपंथ' आएगा।

साधना के बारे मे इतना बताने से यह ज्ञान होगा कि जो साधना हम कर रहे हैं वह इतनी विशाल और विराट है कि उसके अंत का पता नहीं चलता है। लेकिन हमारे साथ अनंत है। इसलिए साधना मे आस्था निर्माण होनी चाहिये। इस साधना का विचार यदि हम शास्त्रीय दृष्टि से करेंगे तो हमारे बारे में परमपूज्य बाबा को यह विश्वास है, कि इस जन्म में जन्म लेकर हम जन्म के उपकारों का ऋण अदा करेंगे और दूसरों का कल्याण करेंगे लेकिन हमे यह विश्वास नहीं है। जब यह समझ आएगा कि बाहर का जगत् मृगजल है तभी यह जन्म व्यर्थ ना हो यह नितध्यास लगेगा। लेकिन आज इस प्राप्त जन्म की कीमत ना खुद को है ना औरों को, इसलिए संपूर्ण जन्म 'चिंता' करते करते अंत में हमारा यह जन्म 'चिता' होगा यह इस नर जन्म की कहानी है। इसलिए गुरू बार बार जन्म लेते हैं और हमारे लिए जो पोषक है वह हमे बताते हैं क्योंकि भक्त का यह जन्म व्यर्थ ना हो यह, भक्त की चिंता, श्रीगुरू को होती है।

श्रीगोरक्षनाथजी ने साधना का गणित सूचित किया है। यह गणित कठिन है फिर भी इससे साधना का फल साधक को निश्चित प्राप्त होगा।

इसके अलावा हम यह जो साधना इस जन्म में कर रहे हैं वह साधना हमें अगले जन्म में समझ आएगी। इस साधना में प्रमाणबद्ध संथा है इसलिए इस साधना का लाभ इहजन्म और परलोक इन दोनो के लिए है। संथा का अर्थ यह है कि संथा से (मंद गति से) उच्चार विचार और आचार। इसी का अर्थ परम पूज्य बाबा की बताई हुई 'सबूरी' है। हम आम खाने की इच्छा करते हैं लेकिन अज्ञान के कारण कच्चा आम खाकर 'आम खट्टा है' यह कहते हैं। यह गलती हमारी है। हमारे बगीचे के आम के पेड़ पर हमारा हक है तो भी उसके फल पर हमारा काबू नहीं है। जब निसर्ग (प्रकृति) इन कच्चे आम को पक्के आम बनाएगी तभी वे मीठे होंगे। इसी प्रकार हमारा कर्म हमारा होता है लेकिन उस कर्म का फल देना यह आत्मा का धर्म है और यह बात ना समझने के कारण लोग 'कर्म दशा है ' 'कर्म की तकलीफ है' यह कहते हैं। साधना मे जो तीन अंग है वे तीन अंग समझ लेने से साधना बोझ जैसी नहीं लगती है। यदि हम मार्गदर्शन के अनुसार साधना करेंगे तो वह साधना इस तरह होती है जैसे रंगो के परे, ईश्वर के रंग में रंग जाना। चित्रकला में मुख्य तीन रंग होते हैं और इन तीन रंगो से सात रंग बनते हैं यानि इंद्रधनुष, लेकिन यदि ये सात रंग साधक को समझ नहीं आए तो उनसे काला रंग बनता है। काला रंग अशुभ माना जाता है लेकिन साधना पूर्ण होने के बाद वही काला रंग सफेद रंग बनता है यह अनुभव होता है। इसलिए श्रीगोरक्षनाथजी ने ॐकार साधना के बारह अंग सूचित किए हैं और साधना करते समय वे अंग प्रमाणबद्ध (प्रमाण के अनुसार) होना आवश्यक है यह भी सूचित किया।

साधना मार्ग में बहुत से लोगों को यह लगता है कि उनका विकास हुआ है, इसलिए वे बोलते समय इस तरह बर्ताव करते हैं जैसे वे जगत् से अलग हैं। लेकिन इन लोगों को 'विकास' का अर्थ ही समझ नहीं आया है। 'विकार' का साथ छोड़ने से ही 'विकास' होता है यह एक अर्थ है और दूसरा अर्थ यह है कि जीवन मे जो कोई विषय है उन विषयों को छोड़ कर श्रीगुरू को साथ लेकर श्रीगुरू की आस रखी तो विकास होता है। जिसका विकास होता है उसे उसके बारे मे स्वयं कुछ कहने की आवश्यकता नही होती है। जिस तरह सूरज का उदय हुआ है यह कहने

की आवश्यकता नही होती है उसी तरह जीवन मे जो अंधकार होता है वह जाकर, उसकी जगह प्रकाश निर्माण होना इसी का अर्थ 'विकास' होता है।

यदि श्रीगोरक्षनाथजी ने यह दीक्षा दी तो भी आम भक्तों को वह सिखाने के लिए परमपूज्य श्रीपंतमहाराजजी की आज्ञा आवश्यक है ऐसा परमपूज्य बाबा ने कहा। परमपूज्य बाबा ने उसका कारण यह बताया कि, " आम लोगो को साधना सिखाने के लिए साधना शब्द रूप में होना आवश्यक है। तुम्हें जो साधना श्रीभैरवनाथजी, परमपूज्य श्रीगोरक्षनाथजी और बाद मे श्रीनरसिंहसरस्वती जी इन्होंने सिखाई है वह साधना नाद रूप में है। उस नाद का रूपांतर शब्द रूप में होना आवश्यक है। इसका अर्थ भक्तों को साधना का लाभ 'लहर' रूप मे करा देना है। यह होने के लिए आने वाले भक्तों की मिजाज ना रख कर, हमे केवल साधना से एकनिष्ठ होना आवश्यक है। जब कार्य का आरंभ हुआ था तब आने वाले भक्त उनके समय के अनुसार आते थे, उस समय लोक संग्रह करना था। अब आने वाले भक्तों की सुविधा ना देखकर उन्हें आदत कैसे लगेगी इसका विचार करना आवश्यक है। इसलिए श्रीपंतमहाराज इस महान पुरूष का साधना में समावेश करना है, मतलब ब्रह्माण्ड के महत्वपूर्ण तीन अंग और पिंड के छह अंग इनका लाभ होने के लिए श्रीपंतमहाराजजी इस महान पुरूष के आशीर्वाद की आवश्यकता है।"

परमपूज्य बाबा की इस आज्ञा के बाद मैने परम पूज्य बाबा के सामने यानि शक्तिपीठ के सामने श्रीफल रखकर प्रार्थना की और जो संकल्प बताया था वह लेकर बालेकुंद्री में श्रीपंतमहाराजजी के यहाँ गया। उस समय के श्रीपंतमहाराजजी, पहले देखे श्रीपंतमहाराजजी से अलग लगे। उस दिन मैं बेलगांव में सुबह साधना करने के बाद आराम करने लेटा था। मेरे आसपास कोई नहीं था। तब वह नींद नहीं थी। वह उड़ान थी जिसके कारण तब मुझे यह अहसास हुआ कि मैने श्रीगोरक्षनाथजी को बत्तीसशिराळा में देखा और उन्होंने मुझे कहा कि, 'मुझे श्रीपंतमहाराजजी के यहाँ जाना है।' तब मैने उन्हें कहा कि 'इस समय बेलगांव जाने के लिए बस (मोटरगाड़ी) नही है तो कैसे जाएंगे ? तब श्रीगोरक्षनाथजी ने प्रत्यक्ष यह कृती कर दिखाई कि उनका एक

चरण बत्तीसशिराला में है और दूसरा चरण बालेकुंद्री में है और उनके दो चरणों में बहुत कम अंतर है। इस दृश्य का यह एक व्यवहारिक अर्थ हुआ लेकिन बाद मे दूसरा अर्थ समझ आया कि यह साधना इहलोक और परलोक के लिए है। इहलोक की जिम्मेदारी श्रीपंतमहाराजजी ने ली है और परलोक की जिम्मेदारी श्रीगोरक्षनाथजी ने ली है इसलिए उन दोनो की मुलाकात बालेकुंद्री में हुई और उन दोनो के साथ परलोक के लिए स्वामीजी हैं, यह साधन भविष्य में सिद्ध करना है। इसलिए ॐकार के जो अंग हैं उनका अर्थ श्रीपंतमहाराजजी ने यह बताया है कि पहले जमाने में जब वारकरी (पंढरपुर की यात्रा करने वाले) बारह साल पंढरपुर की यात्रा करते थे तब समय पर्याप्त था। अब समय कम है। इसलिए आत्मा की मुक्तता 'वायुगमन' से यानि हवाई जहाज की गति से करना आवश्यक है। यहाँ विमान का (हवाई जहाज) अर्थ अलग है। हम हमेशा सोचते रहते हैं कि क्या होगा ? कैसे होगा? लेकिन इसका शोध मत लो अब तुम गुरूमार्गी हो इसलिए कुछ भी विचार ना करके जो गुरू कर रहे हैं उसी में मेरा कल्याण है यह विश्वास निर्माण करो। 'वि' मतलब 'विचार' ना करके श्रीगुरू जो आज्ञा करेंगे वह 'मान' लेना। इस तरह 'विमान' इस साधना से जगत् सुखी होगा। संतो की भाषा गहन, गूढ़, अलग होती है। उसमें का विज्ञान आदि, हमारी समझ आएगा तो हम धन्य होंगे। "

ॐकार साधना में नौ अंग है यानि, तीन देह और प्रत्येक देह में काया वाचा मन, ये हैं। इन नौ माध्यमों से ॐकार साधना करने से एक ही जन्म में ब्रह्मप्राप्ति होती है। इसलिए तीन यज्ञोपवीत (जनेऊ) है। इस प्रत्येक यज्ञोपवीत में (जनेऊ) तीन धागे हैं और प्रत्येक धागा तीन धागों से बना है। मतलब प्रत्येक यज्ञोपवीत में नौ धागे और तीन यज्ञोपवीत में सत्ताईस धागे हैं मतलब सत्ताईस नक्षत्र यानि निसर्ग। मराठी में जो एक कहावत है कि 'सूत से (धागे से) स्वर्ग तक पहुंचना' वह झूठ नहीं है। लेकिन उस कहावत का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। ऐसा बोध श्रीपंतमहाराजजी ने बालेकुंद्री में किया और उसके बाद बेलगांव के सम्मेलन में नौ अंगो से साधना सिखाई।

उस समय बत्तीसशिराला के नजदीक के मांगले गांव के जो एक भक्त नित्य नियम से श्रीगोरक्षनाथजी के दर्शन करने बत्तीसशिराला जाते

थे उनके साथ श्रीगोरक्षनाथजी के लिए संदेशा भेजकर मैने श्रीगोरक्षनाथजी को यह विनती की कि, ' जो साधना आपने दी है वह साधना करने के लिए बड़ी कठिन है। उस साधना में यदि एक भी उच्चार गलत हुआ तो आपकी बताई वह साधना व्यर्थ होगी। इसलिए यदि आप ही कृपा करेंगे तो वह साधना करना मुमकिन होगा, हमारे यहाँ जो बहुत से भक्त आते हैं उन्हें ऐहिक की चाह है, यह साधना तो केवल पारमार्थिक है मतलब यह साधना करने के लिए ऐहिक जीवन का सन्यास लेना आवश्यक होगा और तभी परमार्थ की प्राप्ति होगी। मेरा यह विचार है कि, यह कार्य आसान हो इसलिए मेरा जन्म है, तो फिर यदि मैने ही यह साधना कठिन की तो यह उसका अपवाद (exception) है ऐसा जगत् कहेगा। इसलिए यदि आप तीनों ने मिल कर एक मार्ग सूचित किया तो सबका कल्याण होगा।''

इसके अनुसार श्रीपंतमहाराजजी का संदेश मिला कि, 'सब भक्तों को लेकर यहाँ आओ' मेरे और गुरू गोरक्षनाथजी के मार्गदर्शन के अनुसार जो साधना, हम कर रहे हैं वह साधना केवल कल्पना नही है। यह साधना प्रत्यक्ष चैतन्यमय है और उसकी अनुभूति मिलनी ही चाहिए। जैसे निसर्ग में गर्मी, बारिश, ठंड़ इन ऋतुओं का कार्य जारी रहता है और उस वातावरण मे जब हम रहते हैं तो उन ऋतुओं का अनुभव हमे प्राप्त होता है उसी प्रकार साधना में होता है। नित्य के जीवन से अलग जीवन की जिंदगी जिसमें है ऐसा जीवन यह साधना है। साधना नित्य नियम से करना आवश्यक है। साधना तुरंत प्राप्त नहीं होती है। ऐहिक जीवन एक क्षण में भिखारी को लखपती बनाता है लेकिन पारमार्थिक जीवन यदि अचानक प्राप्त हुआ तो हम कैलासवासी हो जाएंगे (मर जाएंगे) इसलिए यह विषय शास्त्रीय दृष्टि से समझ लो क्योंकि जब श्रीभैरवनाथजी ने तुम्हें साधना सिखाई और तुमने सीखी वह जगत् और आज का जगत् भिन्न भिन्न है। उस समय जग के 'ज' का मतलब 'जगत् जननी' और 'ग' का मतलब 'गणेशजी' था। आज पचास सालों में यह जगत् बदल गया है। आज का जगत् हल्दी के आधे टुकड़े से पीला होने वाला है। आज के जगत् का अर्थ है कि इसमें 'ज' का मतलब 'जन्म लेना' और 'ग' का मतलब 'गति से बर्ताव करना और बोलना'। अब हम मानवों के यही दो

आभूषण हुए हैं, इसलिए परमेश्वर है या नही यह प्रश्न है, और यह कब समझ आता है ? जब हम 'क ख ग' ये मूलाक्षर भूल जाएंगे तब इस जीवन का अर्थ क्या है यह समझ आएगा। जन्म लेकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरूषार्थ की प्राप्ति कर लेना यह हमारा आद्य कर्त्तव्य है। मनुष्य जो जन्म लेता है वह जन्म केवल खुद के लिए नहीं होता है। जन्म लेना एक निमित्त है और अगर जन्म लेकर एक व्यक्ति सज्ञान हुआ तो उसकी आगे की बयालीस पीढ़ियाँ सज्ञान होंगी। इसी तरह यदि जन्म लेने के बाद एक व्यक्ति का जन्म व्यर्थ हुआ तो उसकी अगली पीढ़ीयों को उससे नीचे के स्तर का जन्म प्राप्त होता है। जन्म लेना यह 'खान' है। उस खान से रत्न और सोना निर्माण होना आवश्यक है। लेकिन यदि यह समझ नही लिया तो उस खान से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

गुरूमार्ग में जो साधना है, वह अनेक प्रकार की है। मैं साधना कर रहा हूँ यह केवल कहने से नहीं चलता है। साधना की पहली अवस्था में साधना में जो नामी तत्व है उसकी पहचान कर लेना आवश्यक है। यानि जैसे श्रीराम, ॐ नमः शिवाय आदि नामस्मरणों में कौनसा नामी तत्व है यह साधक को समझना आवश्यक है। नामी यानि 'ना' का मतलब जिस देवता का नामस्मरण करते हैं उस देवता का नाम और 'मी' यानि 'स्वयं', इस तरह नाम लेते समय अहं, त्वं, इदं यह मालूम होना आवश्यक है। क्योंकि देवदेवताओं के जो नाम है, उनमें उत्पत्ति स्थिति लय ये जो तीन अवस्थाएं हैं इनका उच्चार होने से ही नामीतत्व सिद्ध होगा। केवल विशिष्ठ संख्या में नामस्मरण करने से नामीतत्व सिद्ध नहीं होगा। उसके लिए निर्गुण अवस्था आवश्यक है और उसका उच्चार करने की संथा सीखना आवश्यक है। बहुतों को ऐसा लगता है कि उठते बैठते ईश्वर का नाम लेते रहें। लेकिन जो नाम हम लेते हैं वह नाम चैतन्यमय होना आवश्यक है। जिस तरह फूलों का या फलों का पेड़ लगाते समय वह पेड़ जमीन के उपरी हिस्से में लगाने से पेड़ को, फूल फल नहीं आते है इसलिए पेड़ जमीन में गहराई में लगाने से पेड़ बड़ा होता है वरना वह पेड़ हमारे काम नहीं आता इसी तरह नामीतत्व का बीज हमारे मन की गहराई में बोना आवश्यक है जिससे उसमें फल फूल आएंगे। '

यह ज्ञान प्राप्त होने के कारण, नामी तत्व का अर्थ क्या है यह मालूम हुआ। उसी प्रकार यह भी मालूम हुआ कि अब तक जो ॐकार कर रहे थे वह ध्वनि था, ॐकार नहीं था। परमपूज्य बाबा ने यह गणित बताया कि 'दो बर्तनों का एक दूसरे पर आघात होने से ध्वनि निर्माण होती है। ध्वनि निर्माण होने के लिए माध्यम आवश्यक है और ध्वनि को प्रवाहित करने के लिए भी माध्यम आवश्यक है। माध्यम से ही ध्वनि निर्माण होगी, उससे लहर निर्माण होगी और लहरों से फिर से ध्वनि निर्माण होगी।' बाबा का यह कहना सुनकर जैसे अज्ञानी मनुष्य को गणित सुनाने से वह मूढ़ होता है वैसे मै मूढ़ हो गया क्योंकि पहले जो ॐकार मैने सीखा था वह ध्वनि नहीं था, तो नाद था और तब ध्वनि और नाद में क्या फर्क है यह पहली बार समझ आया। ध्वनि और नाद में यह फर्क है कि ध्वनि 'पिंड' का है और नाद 'ब्रह्माण्ड' का है, यह बोध तब हुआ था। यह जगत् जो निर्माण हुआ है उस जगत् को केवल सुख का मार्ग बताने से उपयोग नहीं है बल्कि इस जगत् को ब्रह्माण्ड की पहचान करा देना आवश्यक है।

37. साधना का अर्थ, इह जन्म का गणित, सत्कर्म

पिंड की पहचान वस्तुपदार्थ से होती है लेकिन ब्रह्माण्ड की पहचान के लिए क्या है ? यह सवाल दो साल से मेरे सामने था। आखिर मैने परमपूज्य श्रीपंतमहाराजजी से कहा कि, 'आपने सब कुछ दिया है लेकिन यदि आप घी किसमें है और कैसे निकालना है यह नही बताएँगे तो हमारी साधना व्यर्थ जाएगी'। उस समय मै पंद्रह दिन बेलगांव में था लेकिन मुझे कुछ पता नहीं चला। आखिर मैं बालेकुंद्री में श्रीपंतमहाराजजी के यहाँ गया तब उन्होने मुझसे पूछा कि, ''साधना शब्द में जो दो अर्थ हैं वे क्या तुमने समझ लिए हैं ? वे समझ लेने के बाद मैं तुम्हे आगे का मार्ग बताऊँगा। इसलिए तुम श्रीगोरक्षनाथजी को खत भेजो और उस खत का जवाब आने के बाद यहाँ आओ।'' इसके अनुसार मैने गोवा जाकर श्रीगोरक्षनाथजी को यह प्रार्थना की कि, 'साधना का पहला अर्थ इस प्रकार है। "जब हमें कुछ इच्छा होती है तब वह इच्छा पूर्ण होने के लिए हम जो कोशिश करते हैं उसे 'साधना' कहते हैं। ऐसी 'साधना' काफी लोग करते हैं पर इच्छित प्राप्ति के बाद वे साधना करना छोड़ देते हैं।" साधना का दूसरा अर्थ यह है कि, "साधना' का 'सा' यानि इहलोक 'ध' यानि 'परलोक' और 'ना' यानि 'स्वर्गलोक' है और जन्म लेने के बाद हमें इन तीनो लोकों की पहचान कर लेनी है और वह पहचान 'स्वर' इस माध्यम से कर लेनी है। जब हम साधना 'शब्द' से न करके 'स्वर' से करेंगे तब हमें 'नाद' सुनाई देगा। यह 'नाद' ही तीनो लोकों की प्राप्ति है। इसका अर्थ यह है कि तीनो लोकों का जो प्रतिपालन करता है वह 'नाद' यानि 'ब्रह्म' यह साधना का दूसरा अर्थ है। कुल सात स्वर हैं पहले दो इहलोक के, उनके बाद के दो परलोक के और शेष तीन स्वर्गलोक, के ऐसे साधना में सात सुर हैं। इन सुरों से भजन, आरती, नामस्मरण करने से इन माध्यमों से साधक सिद्ध होता है और साधना 'साध्य' हुई यह कहा जाता है। लेकिन अभीतक यदि 'सा' की प्राप्ति नहीं हुई तो ईश्वर की प्राप्ति हुई यह कहना आभास है।''

जब यह बोध मुझे हुआ तब मैने आशा ही छोड़ दी क्योंकि मुझे यह लगने लगा कि जिसे मैं साधना कह रहा था वह तो बंदरलीला है, वह साधना पिंड का अंग है, ब्रह्माण्ड का अंग नही है। इसकी अपेक्षा इस रास्ते ना जाना ही बेहतर होगा। क्योंकि यदि साधना मे कोई गलती हुई तो सब व्यर्थ हुआ। यदि अनजाने में दूध में नमक पड़ा तो क्या लाभ होगा? इसलिए इस मार्ग में 'अवधान' महत्वपूर्ण है।

"बहुतों को यह लगता है कि, अब हम अधिकारी हुए हैं तो अब हमे सब करने की सहूलियत है इसलिए कार्य के आरंभ मे जो विचार साधना के लिए पोषक होते हैं वे अंत तक वैसे नहीं रहते। औरों को हमारी साधक अवस्था की प्रशंसा करने के कारण हम कहाँ हैं यह हमारे ध्यान में नहीं आता है। साधक अवस्था में यह समय अत्यंत महत्वपूर्ण है और इस समय साधक ने स्वयं को सम्हालना अत्यंत आवश्यक है।

वास्तव में हमारे आसपास जो जगत् है उसे सदैव किसी ना किसी चीज की कमी होती है। याच्क कभी भी 'मुझे फलानी चीजें प्राप्त हुई है' यह कह कर समाधानी नही होता है। ऐसे समय साधक को यह जानना आवश्यक है कि यह, याच्क की हवस (तीव्र लोभ) है, अभ्यास नहीं है। गुरूमार्ग में समाधानी होना इसका अर्थ यह है कि 'विकास' हुआ है। और यह अध्ययन करके समझ लेना आवश्यक है, नही तो हमारी साधना हमसे दूर जाती है यानि हम हमारी साधना को खो बैठते हैं। किसी धातु को आकार देते समय यदि उसमें बिगाड़ हुआ तो वह आकार फिर से जोड़ नहीं सकते हैं। उसी प्रकार साधना से जो आकार प्राप्त होता है उसमें बिगाड़ हुआ तो इस जन्म में वह आकार फिर से प्राप्त नहीं होता है। इसलिए साधक को साधना में 'अवधान अवस्था' कायम रखना आवश्यक है। श्रीगुरू किसी के नौकर नहीं हैं कि हमें उनके यहाँ जाने के बाद वे तुरंत हमे आशीर्वाद देंगे, यह मुमकिन नहीं है। हम श्रीगुरू को मिलते हैं और श्रीगुरू हमसे मिलते हैं यह मिलाप जब होता है तब हम कहते हैं कि श्रीगुरू की हम पर कृपा हुई। लेकिन श्रीगुरू हमारे साथ हँसे, उन्होंने हमसे बात की तो वह कृपा नही है। जब हम गुरूमार्गी होते हैं तब श्रीगुरू

हमारे साथ रह कर हमारा निरीक्षण करते हैं, क्योंकि हमारा जीवन यह बहुत बड़ी यात्रा है इसलिए हमारे जीवन मे ईश्वर कब हैं और नश्वर (नाश होने वाला) कब है इसकी जाँच श्रीगुरू सदैव करते रहते हैं। हमारे मन के मुताबिक हुआ तो ईश्वर है और मन के मुताबिक नहीं हुआ तो ईश्वर नहीं है, नश्वर है, यह खेल हमारे जीवन में सदैव जारी रहता है लेकिन इस तरह की मूर्खता का व्यवहार श्रीगुरू कभी नहीं करते हैं। श्रीगुरू केवल हमारा कर्म अनुकूल कर देते हैं। अब उस अनुकूल कर्म से सुख का उपभोग लेना है या गुरूमुख को पहचानना है यह हमें खुद जान लेना आवश्यक है। इसके बाद 'गुरूकृपा' और 'आशीर्वाद' ये दो शब्द हैं। 'कृपा' का मतलब जो कठिनाई है वह निवारण होना यानि एक ही जन्म का प्रबंध और 'कृपाशीर्वाद' मतलब अनेक जन्मों तक हमें गुरू के दास होना है।

ऊपर लिखा यह अर्थ जब भक्त को समझ आएगा तब भक्त भक्ति करने लगेगा। 'शक्ति' यह आसान मार्ग है यह छोड़ कर जब 'भक्ति' इस कठिन मार्ग के लिए हम कदम उठाते हैं तब हमें यह समझ आता है कि हमारा विकास आरंभ हुआ है। 'विकास' में दो शब्द हैं 'वि' यानि विचार या विकार। इस अवस्था में यदि विचार होगा तो श्रीगुरू की 'कास' यानि साथ पकड़ कर रखना आवश्यक है क्योंकि 'कासव' यानि कछुआ मंद गति से चलता है। लेकिन सब जल्द गति से हो यह हम चाहते हैं। भक्त यह चाहता है कि वह जो मांगता है वह उसे क्षण में प्राप्त हो लेकिन यदि श्रीगुरू ने वह दे दिया तो भी उसे सम्भाल कर रखना अत्यंत मुश्किल होता है। इसलिए श्रीगुरू जो देते हैं वह कछुएं की गति से देते हैं। जब तक हमारा आचार और विचार, उच्चार से एकरूप नहीं होता है तब तक साध्
ना करना आवश्यक है और उसके लिए जन्म भी पर्याप्त नहीं है। क्योंकि 'साध्य' बाद में है। उसके पहले साधना श्रेष्ठ है यह हम भूल जाते हैं। इसका कारण यह है कि नित्य की नमक रोटी की अपेक्षा मिठाई मिले तो अच्छा लगता है लेकिन हर रोज मिठाई हजम करना कठिन है। उसी प्रकार कुछ भी साधना ना करके यदि ऐश्वर्य प्राप्त हुआ तो वह ऐश्वर्य हजम नहीं होता है और बाद में नष्ट होता है। इसलिए नित्य नियम से साधना करना यह साधक का कर्त्तव्य है। यदि साधना का 'नियम' नहीं

होगा तो यह साधना नही होती है। गुरूमार्ग में जो साधन होते हैं उन्हें नियम में रखना आवश्यक है। जो नियम पिंड के लिए है उसके अनुसार हमें आचरण करना इसे साधना नहीं कह सकते हैं। ब्रह्माण्ड के लिए जो नियम है वह यदि हमने सीख लिया तो उसे साधना कह सकेंगे। इसलिए भक्तों के कल्याण के लिए श्रीगुरू साधना 'नियम' में रखते हैं। इसके लिए यदि ज्यादा अवधि लगी तो भी साधक को साधना के नियम नहीं तोड़ना चाहिए। यदि नियम के अनुसार साधना की तो उसका लाभ हमारी अपेक्षा के परे होता है और यदि नियम का पालन नहीं किया तो जीवन व्यर्थ खर्च होगा इसका साधक को विचार करना आवश्यक है," यह गुरूउपदेश श्रीपंतमहाराजजी ने किया। श्रीपंतमहाराजजी के इस उपदेश के अनुसार मैने तीन साल बहुत प्रयत्न किए। ॐकार के जो बारह अंग हैं उसमें से केवल तीन अंग भी यदि भक्तों ने आत्मसात किए और औंरो को सिखाए तो प्राप्त जीवन का सोना होगा। ये तीन अंग और बाकी के अन्य नौ अंग यानि कुल बारह अंग हैं जो सिद्ध करने के लिए मेरे प्राणों की बाजी लगी थी। उसके बाद मैं फिर से जीवित हुआ लेकिन भक्त अभी तक अपनी जगह जीवित नहीं हैं इसका मुझे दुख है। शायद यह साधना मुफ्त है इसलिए इसकी कीमत किसी के समझ में नहीं आती होगी। मेरा संपूर्ण शरीर सब रोगो से ग्रस्त है लेकिन उन्हें मैं जो मात कर रहा हूँ वह केवल ॐकार साधना से ! इससे अधिक प्रचिति क्या चाहिए ? स्वयं को रोग का शिकार बनाना और फिर साधना से वह रोग ठीक होता है या नही इसका अनुभव लेना और उस प्रचिति के बारे में सब को बताना यह क्रम जारी है।

इह जगत् में जन्म लेने के बाद उसका गणित समझ लेना आवश्यक है। जन्म लेते समय कर्म की बाजू सौ प्रतिशत होती है। लेकिन उस कर्म के अनुसार इह जन्म में केवल सुख का लाभ प्राप्त कर लेना हितकारक नहीं है। आज जो सुख हमें प्राप्त होता है वह पूर्व कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है और वह सुख केवल एक का ही ना होकर उस कर्म के सुख में औरों का भी समावेश होता है यह हम भूल जाते हैं। इसलिए श्रीगुरू हमें कर्म का गणित समझाते हैं। जीवन में सुख की प्राप्ति पच्चीस प्रतिशत और समाधान और साधना मिल कर पचास प्रतिशत यह कर्म का गणित है।

जीवन में कितनी भी सुख की प्राप्ति हुई तो भी समाधान प्राप्त होना यह ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समाधान हमारे अगले जन्म का सत्कर्म होगा और यह अवस्था साधना से प्राप्त होती है।

सुख	90 अंश
शांति	90 अंश
समाधान साधना	180 अंश
कुल	360 अंश

यह परिपूर्ण जीवन है। इसमें जो जीवन हम कार्यान्वित करते हैं वह दो सौ सत्तर अंश है और साधना के लिये नब्बे अंश कर्म व्यतीत होता है वह 'सत्कर्म' है। देवता की पूजा, आरती यह सत्कर्म नहीं है तो वे अंग हैं और काया, जब इन अंगो से युक्त क्रिया करती है तब हमें 'समाधान' इस अवस्था का लाभ होता है इसका अर्थ यह है कि सत्कर्म का निर्माण होना। प्रत्येक क्रिया, काया वाचा मन से करने से सुख शांती समाधान आदि का लाभ होता है। केवल माँगने से सुख भी नहीं मिलता और समाधान भी नहीं मिलता। इसलिए साधक को ज्ञानी होकर साधना करना आवश्यक है। 'गुरूमार्ग में बारह साल से हूँ ' यह केवल कहना गलत है। गुरूमार्ग के क्या लक्षण हैं यह समझ लेना आवश्यक है। इह जन्म में केवल ऐहिक सुखों की प्राप्ति होना यह सत्कर्मो का गलत उपयोग है। वास्तव में जो कर्म प्रतिकूल हैं उन्हें अनुकूल कर लेना और जो कर्म अनुकूल हुआ है उस कर्म का उपयोग जीवन साकार करने के लिए होना आवश्यक है। सुबह हम जो नींद से जग जाते हैं वह जाग जाना केवल नींद से जग जाना नहीं है बल्कि हमारे अज्ञान के कारण हमसे हो गया गलत कर्म हम फिर से ना करे इसलिए ईश्वर हमें जागृत करते हैं। हम सुबह केवल 'चहा' यानि चाय के लिए उठते है लेकिन 'चाह' ईश्वर के लिए हो, केवल चाय के लिये ना हो इसका विचार करना हमारा ईष्ट कर्त्तव्य है।

ईश्वर मे हमें जगाया–जागृत किया है इसका अहसास होने के बाद हमारा कर्त्तव्य क्या है इसका विचार करना आवश्यक है। चौबीस घंटो का

एक दिन होता है और ऐसे घंटे, दिन, साल गुजरते रहते हैं और आखिर में यह समझ आता है कि हमारा जीवन क्षणभंगुर–क्षण में नष्ट होनेवाला है। लेकिन इस ज्ञान का उस समय क्या उपयोग होगा ? लेकिन केवल यह अहसास हुआ तो भी उससे जीवन को अर्थ प्राप्त हो जाता है और जीवन का आकार प्राप्त हुआ है उसमें समाधान मानना आवश्यक है क्योंकि यही आकार हमें अगले जन्म में प्राप्त होता है।

अब हम रोज 'सदा सर्वदा' इस श्लोक का पठन करते हैं। इस श्लोक की सब पंक्तियाँ ध्यान रख कर उसमें स्थित गुरूमंत्र का स्मरण रखना आवश्यक है। इस श्लोक की एक पंक्ति का अर्थ सत्कर्म करके जीवन व्यतीत करें, इस अर्थ के अनुसार जीवन का विकास इस प्रकार होता है –

विकास– उच्चार के अनुसार आचरण करने वाले को प्रणाम करना चाहिये।

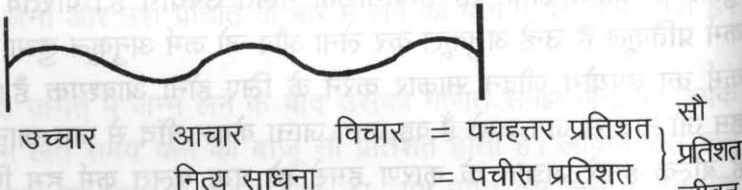

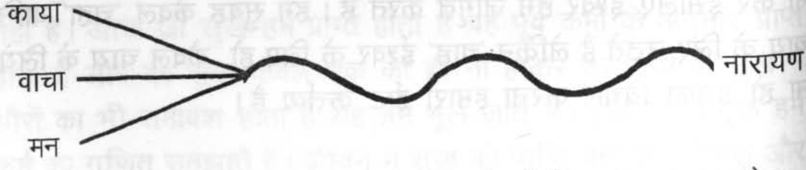

तीन गति एक होकर उन की एकरूपता से चौथी अवस्था प्राप्त होना यानि 'नर से नारायण' बन जाना।

38. अवधान, ध्यान, चिंतन अवस्था

जीवन में आपत्ती आने के बाद हम आपत्ती के लिए उपाय योजना करते हैं। लेकिन आपत्ती आने की परिस्थिति निर्माण होने के पहले ही आपत्ती के लिए कृपाशीर्वादरूपी योजना करना इसे तरणोपाय (बचने का उपाय) कहते हैं। यह प्रबंध ईश्वर के संदेश के द्वारा होता है, मानव की बुद्धि से नहीं होता है। जो जीव पिंड में जन्म लेता है उसे ब्रह्माण्ड में जाने के लिए एक मार्ग हो मतलब इहलोक से परलोक और स्वर्गलोक के लिए एक मार्ग हो तथा जगत् में जन्म लेने वाले जीव मानवता की भावना से एक साथ होने के लिए एक ही प्रार्थना हो ऐसी परम पूज्य साईनाथ महाराज की इच्छा थी। इसके लिए आवश्यक शक्ति श्रीनरसिंह सरस्वतीजी के रूप में भूतल पर अवतीर्ण हुई थी। वह शक्ति प्राप्त करने के बाद उस शक्ति में त्रिगुणात्मक रूप से इहलोक पर अस्तित्व में रहने वाली देवीदेवताओं की शक्ति भी एकरूप हो गई। इसके बाद ही शक्तिपीठ की स्थापना की गई। लेकिन शक्तिपीठ की स्थापना करते समय जिस दिव्य प्रचिति का मुझे अनुभव हुआ था, यदि उस प्रचिति का विचार भी मन में आया तो आज भी मेरे हाथ पाँव काँपने लगते हैं।

शिरोड़ा में सम्मेलन लेते समय मैने परम पूज्य बाबा से यह सवाल किया था कि, ' इस जगत् का भविष्य क्या है?' तब परम पूज्य बाबा ने बताया कि, "योग्य समय पर वह दिव्य (कठिन कार्य) मैं तुम्हारे माध्यम से कराउँगा। उसके लिए तुम केवल तैयार रहो क्योंकि यह शक्तिपीठ की स्थापना सीधी सरल नहीं है। जो जगत् यानि पिंड है उसका रूपांतर ब्रह्माण्ड में करना आसान नहीं है। यह एक साधना है। इस साधना में मूल विषय इस प्रकार है कि पिंड और ब्रह्माण्ड मिल कर शक्तिपीठ बनेगा और जो साधक यह कार्य करेगा उसे उसके देह के आचार विचार उच्चार इन क्रियाओं को खोना पड़ेगा। अगर इसके लिए तुम तैयार हो तो हम दोनो मिल कर शक्तिपीठ की स्थापना करेंगे। जो पिंड है वह तुम हो और ब्रह्माण्ड मैं हूँ। मतलब तुम 'चेतना' और मै 'चैतन्य' और इन दोनो के मिलने से हिरण्यगर्भ यानि शक्तिपीठ बनेगा ऐसी विश्व की रचना करनी

होगी। आज जो भक्त हैं उन्हे इसका अंदाजा नहीं होगा बाद में इन भक्तों की अगली पीढ़ी को इसका सुख समझ आएगा। "ऐसा दिव्य (कठिन) कार्य आज तक किसी ने नहीं किया है। रास्ते में चलते समय पाँव में केवल कांटा चुभने के कारण ये भक्त 'ओ माँ' करके चिल्लाते हैं, तो तुम जिस आवाहन के बारे मे कह रहे हो उस आह्वाहन का वे अंदाज भी नहीं कर सकते हैं। ओले की बारिश में वे ओले जब आकाश से गिरते हैं तब उनका प्रहार सहन नहीं कर सकते हैं तो बिजली, मतलब ब्रह्माण्ड का बीज नीचे आने के कारण तुम्हारी शून्यवत अवस्था होना स्वाभाविक था। अब सब कुछ संपूर्ण हुआ है। इस उन्नीस सौ छयासी (1986) साल में तीन परिक्रमा पूर्ण होने के बाद उस शून्य अवस्था से मूल अवस्था प्राप्त हुई है।" इसे तीन साल लगे। यह समारोह देखने और सुनने के लिए ठीक है। लेकिन यह दिव्य (कठिन) कार्य देवताओं ने भी नहीं किया है। इस जगत् का क्या होगा, क्या होने वाला है ? यह चिंता जो देवताओं को भी नहीं थी वह चिंता परमपूज्य बाबा को है। इस जगत् में ईश्वर के भक्त अनेक होंगे लेकिन इस जन्म मे मेरे बाबा का भक्त होना इसके जैसा भाग्य नहीं है। इसलिए आरती में कहा है कि 'मेरे साईबाबा की महिमा निराली'। और मैने क्या पुण्य किया कि इस जन्म में उनसे मुलाकात हुई। अब माँगने के लिए कुछ भी बाकी नहीं है। लेकिन सारा विश्व अज्ञान में जी रहा है इसलिए औरों को जीने देना, यह जो मानवी धर्म है वही धर्म हम भूल गए हैं। जवान लड़का लड़की का एक दूसरे पर मोहित होना यह 'प्रेम' नहीं है। 'प्रेम' यह एक अवस्था है, एक दूसरे के प्रति केवल देहिक आकर्षण होना यह अवस्था प्रेम नहीं है वह प्रेत (मृत शरीर) है, और मृत शरीर के साथ जीवन जीना और जीवन व्यतीत करना इस प्रकार के जीवन में सुख शांती कैसे प्राप्त होगी ? जन्म लेकर यह प्राप्ति नहीं करनी है। प्रेम की प्राप्ति कैसे होगी यह आस सदैव लगना आवश्यक है।

मैंने भी साधना बुढ़ापे में नही की। दिखने में मैं सबसे सुंदर था, सर्वगुण संपन्न था, फिर भी मैं इस जगत् के मोह में वशीभूत नहीं हुआ। गुरूकृपा से मेरी 'नांदी' (शुरूआत) कैसे होगी इसकी मै राह देखता रहा और मैने जगत् को राह दिखाई यानि मैने जगत् को मार्गदर्शन किया, और

जगत् को राह दिखाने के लिए भी मैं बाबा की आज्ञा हो जाने तक रूका था। इसीका अर्थ 'सबूरी'! परम पूज्य बाबा की प्रेरणा से शक्तिपीठ का कार्य सौ प्रतिशत हो जाने के बाद ही मैंने जगत् को बाबा का संदेश 'शिलालेख' के रूप में दिया। परम पूज्य बाबा की कृपा से इस जन्म का 'पारस' हो जाने के बाद सोने का मोह रखने की अपेक्षा परम पूज्य बाबा का 'सोनू यानि लाड़ला' बनना यह सैंकड़ों जन्मों से श्रेष्ठ है।

साढ़े तीन हजार साल पहले श्रीनवनारायणों ने कृष्णा और पंचगंगा नदी के किनारे के क्षेत्र के बत्तीसशिराला गांव में एक यज्ञ किया था। उस यज्ञ के एक हजार साल बाद श्रीमच्छिंद्रनाथ जी और श्रीगोरक्षनाथजी यात्रा करते करते बत्तीसशिराला इस मंगल स्थान पर आए। तब श्रीमच्छिंद्रनाथ ने श्रीगोरक्षनाथजी को उसी पुण्य स्थान पर तपश्चर्या करने की आज्ञा दी और स्वयं दक्षिण भारत का रक्षण करने के लिए श्रीरामेश्वर क्षेत्र गए। श्रीगोरक्षनाथजी ने जब श्रीगुरूमंच्छिद्रनाथजी को तपश्चर्या के स्वरूप के बारे में पूछा तब श्रीगुरूमंच्छिद्रनाथजी ने उन्हें अवधान, ध्यान और चिंतन इन तीन अवस्थाओं की दीक्षा दी। यह प्रत्येक अवस्था सिद्ध करने के लिए श्रीगोरक्षनाथजी को बारह साल लगे। इस के बाद, यानि सैतीस साल की कालावधी के बाद, श्रीमच्छिंद्रनाथजी और श्रीगोरक्षनाथजी इन दोनो की, फिर से इस पवित्र क्षेत्र में मुलाकात हुई। उस समय श्रीमच्छिंद्रनाथजी ने उन्हें आत्माओं की सेवा करने की आज्ञा दी और बत्तीसशिराला से रामेश्वरम् तक के दक्षिण भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र को अपने संरक्षण कवच में रखने की जिम्मेदारी भी उन पर सौंप दी। बत्तीसशिराला यह मूल बत्तीस गांव है। आज भी श्रीशेषपंचमी के (नागपंचमी) दिन यहाँ 'अनंत' का व्रत किया जाता है। 'अनंत' यानि जिसका अंत नहीं है वह।

आज भी हररोज जिन सैकड़ों आत्माओं को, जिनके वंशज उन्हें प्रयाग, काशी या गया इन तीनो स्थानों पर उनका अंत्यविधि करने के बाद उन्हें अनाथ अवस्था में छोड़ देते हैं, उन सैकड़ों आत्माओं को श्रीगुरू गोरक्षनाथजी के कृपाशीर्वाद से सनाथ अवस्था यानि 'मुक्ति' प्राप्त होती है। कर्मपरंपरा से मुक्त होने के लिए ये आत्माएं श्रीशेष पंचमी के दिन नाग

के रूप में हजारों की संख्या में क्षेत्र बत्तीसशिराला में उपस्थित होती हैं। तब इन आत्माओं को सद्‌गति प्राप्त हो और भविष्य में उनका जीवन सार्थक हो इसलिए श्रीगुरू गोरक्षनाथजी उन्हें अवधान, ध्यान और चिंतन इन अवस्थाओं की दीक्षा देते हैं। 'अवधान' का अर्थ यह है कि, ''सद्‌गति प्राप्त होने के बाद फिर से कर्मवलय के मोह में ना अटक कर गुरूवलय के तेज में जीवन कृतार्थ हो इसलिए 'गुरूअंश' बनकर पुनश्च (फिर से) जन्म प्राप्त करे।'' यह दीक्षा प्राप्त होने के बाद उस आत्मा को अपनी जन्म उत्पत्ति का निर्णय स्वयं करना होता है। बाद में यानि जन्म प्राप्ति के बाद जब उस आत्मा को 'ध्यान' अवस्था की प्राप्ति होती है तब उस समय उसको यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि, ''गुरूकृपा से जो नरदेह प्राप्त हुआ है उस नरदेह को 'नारायण' अवस्था प्राप्त हो, और जीवन कृतार्थ हो इसलिए 'चिंतन' इस अवस्था का अवधान रखना आवश्यक है।'' चिंतन इस अवस्था का अवधान रखने से, ''जन्म का मूल कारण उदित होकर जीवन केवल खुद के लिए ही खर्च नहीं होगा प्राप्त जीवन औरों के लिए भी व्यतीत होगा।'' अवधान, ध्यान और चिंतन इन तीन अवस्थाओं का हमारे काया वाचा मन में रक्षण हो और श्रीगुरू की बताई नित्य ॐकार साधना अधिकाधिक कार्यान्वित हो इसलिए साधना के बारह अंग और अवधान, ध्यान और चिंतन ये तीन अवस्थाएं इनका आस्थापूर्वक विचार करना आवश्यक है। अब प्राप्त हुई यह अवस्था भविष्य में फिर से प्राप्त होगी ही ऐसा नहीं है। इसलिए जो साधना हमें सिखाई गई है उसके संबंध में दक्षता (सावधानी) रखना और इस साधना से क्रमशः प्राप्त होनेवाली अवस्थाओं का गहराई से अध्ययन करना यह साधक के लिए अत्यंत आवश्यक है।

<u>अवधान अवस्था–</u>

गुरूमार्ग में यह अवस्था प्राप्त होना दुर्लभ है क्योंकि जन्म लेने के बाद कर्म की उपाधी पीछे लगती है। इस कर्म से हमारी और आत्मा की मुक्तता हो इसलिए हम गुरूमार्गी होते हैं। ऐसे समय केवल सुख की प्राप्ति की इच्छा ना रख कर गुरू की प्राप्ति कब होगी यह आस लगना आवश्यक है। केवल खाना पीना कपड़ा ऐश आराम आदि में जीवन व्यर्थ

खर्च ना होकर जो निश्चित आकार जीवन को प्राप्त होना आवश्यक होता है वह आकार केवल श्रीगुरू देते हैं। गुरूमार्ग में 'गुरू' और 'गुराखी' ये दो शब्द है। गुराखी केवल (गुरे) गाय, भैंस आदि का रक्षण करता है। जन्म लेने के बाद भक्त का जन्म व्यर्थ ना हो और उसके प्राप्त जन्म का औरों के लिए उपयोग हो इस आत्यंतिक इच्छा से जो मार्गदर्शन करते हैं उन्हें 'गुरू' कहते हैं। गुरू को स्वयं का जीवन तथा तन मन धन भक्तों के लिए खर्च करना आवश्यक है। भक्त के जीवन में जो जो कठिनाईयाँ आती रहती हैं उनके बारे में बिना बताए वे कठिनाईयाँ जिन कर्मों के कारण निर्माण हुई हैं उन 'कर्मो का विमोचन' करके भक्त को अभयदान देना आवश्यक है। केवल दुख के बारे में तो रास्ते में बैठे साधारण ज्योतिषी भी बता सकते हैं। कठिनाईयों के समय भक्त का स्तर अज्ञान का होता है तो भी उस समय उस भक्त को गहराई से ज्ञान का लाभ देकर उसे, यह जन्म केवल ऐहिक सुख के उपभोग लेने के लिए नहीं है यह दिखा देना भी आवश्यक है। इस ज्ञान के कारण, बाद में भक्त की जीवन की ओर देखने की दृष्टि धीरे धीरे बदलने लगती है। यह जीवन क्षणिक है। जो कुछ प्राप्त करना है उसका लाभ जन्म जन्म के लिए होना आवश्यक है। केवल लोभ होने से नहीं चलता है। 'लोभ' यह अवस्था इह जन्म की है। इहलोक का जो ज्ञान और लोभ हमे होता है उसे ना बढ़ा कर हम जैसे जैसे मार्ग में आगे जाएंगे वैसे वैसे लोभ कम करके गुरूमार्ग में लाभ कैसे होगा यह विचार करना आवश्यक है। ' मैं जगत् में हूँ लेकिन मेरा जगत् इहलोक में नही है ' इस तरह का बोलना और आचरण करना यह 'अवधान अवस्था ' है। इहलोक के कर्त्तव्य करते समय उसमें अपना विषय ना रह कर केवल अपना वास(गंध) रहना आवश्यक है। इससे केवल कर्म के विषय का उपभोग लेना इतना ही ना रह कर 'धर्म के जरिए कर्म से मुक्त होना' यह अवस्था प्राप्त होगी। इससे स्वाभाविकतः इह जन्म में ही अगले जन्म का यानि परलोक का आरंभ होता है और इस समय ॐकार साधना करने से इस अवस्था में ॐकार का 'अ' सिद्ध होता है। 'अ' यह विश्व की उत्पत्ति है। ऐसे समय जब हमारी आत्मा जन्म लेती है तब गुरूमार्गी होने के बाद वह आत्मा ॐकार की 'अ' यह अवस्था प्राप्त कर लेती है। इसलिए यह साधना करते समय सौ प्रतिशत अवधान रखना आवश्यक है।

ध्यान अवस्था–

पिछले अनेक जन्मों से हमने अनेक कर्म किए हैं इसलिए फिर से जन्म लिया है। लेकिन उन जन्मों की स्मृति (याद) हमें नहीं है। इसलिए बार बार वही पातक प्रमाद हमसे होते रहते हैं और बार बार सुख का लोभ बढ़ता ही रहता है जिसके कारण फिर से जन्म प्राप्त होता है। यह चक्र जारी रहता है लेकिन किसी एक जन्म में हमने कोई एक पुण्य कर्म निश्चित किया है जिसके पुण्य के बदले में वह कर्म हमे गुरूमार्गी करता है। लेकिन उस समय श्रीगुरू की याद हमें नहीं आती इसलिए हमारे जीवन में कोई एक विपत्ति निर्माण होती है और उस समय सुख की प्राप्ति कैसे होगी इस विचार से हम श्रीगुरू को मिलते हैं। वास्तव में यह विपत्ति या दुख नही है बल्कि हमें जागृत करके हम सही जगह पर जाए इसलिए कर्म ने हम पर उपकार किए हैं। उस समय फिर से वैसे पातक प्रमाद के कर्म हमारे हाथों ना हो इसलिए श्रीगुरू ने हमारे वंशविमोचन और कर्मविमोचन करके उनके बाद हमें दीक्षा दी है। वास्तव में भक्त के वंश और कर्म इनमें जो दोष हैं वे जाकर (खत्म होकर) भक्त का जीवन निर्दोष हो ऐसी श्रीगुरू की इच्छा होती है और वैसा करके वे भक्त के अगले जीवन का प्रबंध करते हैं। लेकिन आसपास दिखाई देने वाले जगत् के जीवन के समान जीवन का उपभोग लेने की इच्छा के कारण श्रीगुरू के किए विमोचन को और उनकी दी दीक्षा को महत्व नहीं दिया जाता है, यह अहसास होने के बाद ही विमोचन और दीक्षा का मूल्य मालूम होगा। यह जन्म बार बार नहीं मिलता है। फिर से जन्म लेने के लिए सैकड़ो साल लगते हैं। इसलिए ज्ञानी पुरूषों ने बार बार यह कहा है कि जीवन व्यर्थ खर्च मत करो। बल्कि इस जीवन का उपभोग लेते समय, औरों के लिए भी इस जीवन का उपयोग हो इसकी ओर ध्यान दो। वास्तव में जन्म लेते समय जीवन वन के (अरण्य के) समान था और गुरू मिलने के बाद उस जीवन का नंदनवन (स्वर्ग का बगीचा) हुआ है। यह श्रीगुरू का धर्म है। लेकिन हम कर्माधीन होने के कारण, 'गुरू ने हमें क्या दिया ?' यह सवाल हमारे सामने होता है। जब 'कर्माधीन' अवस्था समाप्त होती है तब 'धर्माधीन' अवस्था का प्रारंभ होता है और यह जीवन औरों के लिए है इसका बोध होता है। इसलिए बार बार जन्म लेकर कर्माधीन होने की

अपेक्षा जन्म लेना है तो गुरूकृपा से धर्म के लिये जन्म लेना है, यह वचन हमें निभाना आवश्यक है। कभी कभार अन्न खाना भूल जाओ लेकिन उससे अधिक मूल्यवान मेरा यह ज. वन है, यह आस लगना आवश्यक है। हम जो ॐकार साधना करते हैं उस साधना के 'उ' इस अवस्था की प्राप्ति 'ध्यान अवस्था में होती है। अब हमें गुरू से कुछ नहीं मांगना है बल्कि हमारा यह जीवन जो व्यर्थ होने वाला था वह जीवन गुरूकृपा से अर्थपूर्ण हुआ है इसलिए इस जन्म की दक्षिणा श्रीगुरू को देनी है। वह दक्षिणा यह है कि हमें 'दक्ष' (सावधान) रहना यह हमारे हित में है और उससे, अब जो वंश जन्म लेगा वह वंश ना रह कर 'गुरूअंश' हुआ है और इसलिए भविष्य में उसे 'संतति' इस अवस्था के बजाय 'संपत्ति' इस अवस्था में जन्म लेना है जिसे, 'समाप्त ना होने वाली संपत्ति' ऐसा आशीर्वाद श्रीगुरू देते हैं।

चिंतन अवस्था–

चिंतन यह अवस्था क्या है यह ज्ञानी मनुष्य को भी समझ नहीं आता है। इहलोक में जन्म लेना इसका अर्थ भाग्यवान होना है। त्रिभुवन में इहलोक के जन्म जैसा श्रेष्ठ जन्म नहीं है क्योंकि इहलोक में जन्म लेने के बाद जीव यहाँ अपना विकास कर सकता है। अन्य लोक केवल जीवित हैं लेकिन यदि वहाँ जीव का अस्तित्व होता है तो भी जीव की उत्क्रान्ति इहलोक में ही होती है। इसका शास्त्रीय कारण यह है कि, इस सृष्टि में पाँच तत्व हैं। जीव की धारणा होने के लिए देह की आवश्यकता होती है और वह देह उन पांच तत्वों से बनता है। इसीका मतलब यह है कि देह+जीव = जीवन। यह जीव जब जन्म लेता है तब देह नये से धारण होता है लेकिन जीव, जीवात्मा या आत्मा यह पहले का ही होता है। इस जीवन का उपभोग जीव लेता है लेकिन उसका लाभ देह को नहीं होता है। इसलिए जन्म प्राप्ति के बाद देह को लोभ रहता है और जीव या आत्मा को 'लाभ कैसे होगा' यह चिंता रहती है। मतलब यह द्वैत जारी रहता है। यदि गुरू को नहीं मिले तो चिंता के कारण 'हे दत्तजी हमारी आखिर अच्छी करें (शेवट गोड करी दत्ता)' इसके विपरीत 'चिता' ही प्राप्त होती है। इसलिए गुरूमार्ग में यह द्वैत जाकर अद्वैत का ज्ञान होना आवश्यक है। जीवन क्षणिक है जिसके सुख की आस है यह सवाल खुद को पूछ

कर देखो फिर सुख की आस की अपेक्षा श्रीगुरू सुख का कौर (खाना) देते है। मतलब 'आखिर में जीवन अच्छा हो' इस आशीर्वाद की माँग करना यह हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन वह कर्त्तव्य छोड़ने के कारण हमे 'जैसी करनी वैसी भरनी' यह जीवन प्राप्त होता है। जन्म लेने के बाद हमारे आसपास के रिश्तेदार नजदीक आ जाते हैं लेकिन आखिर उन्हें छोड़ना पड़ता है क्योंकि परलोक में 'अपना' कोई नही है। इसलिए श्रीपंतमहाराजजी ने 'अकेले आना है और अकेले जाना है' यह बोध किया है और गुरूमार्ग अच्छा है यह बताया है। परलोक में आत्मा को देह नही है और केवल देह को ही अपनी और औरों की पहचान होती है। ऐसे समय परलोक में केवल आत्मा और उसका कर्म अस्तित्व मे होता है। अगर सत्कर्म किया है तो वह सत्कर्म परलोक में साथ रहता है। बाकी का वासनारूपी कर्म इहलोक में ही रहता है और वह 'वासनारूपी कर्म' इहलोक में होता है इसलिए फिर से जन्म होता है और जब हम सत्कर्म लेकर परलोक में जाते हैं तब हमें पुर्नजन्म प्राप्त होता है। यह जब समझ आएगा तो वह 'चिंतन अवस्था ' है। इसका अर्थ यह पिछले अनेक जन्मों से हम जिस जन्म के ऋण से मुक्त नहीं हुए हैं उससे मुक्तता होने के लिए चिंतन है।

'चि' यानि 'चिरंजीव' और 'तन' यानि कारण देह की प्राप्ति हो, यह आशीर्वाद श्रीगुरू से प्राप्त करके आत्मा की परलोकवासी यात्रा प्रारंभ होती है। चिंता और चिता ऐसा जीवन ना रह कर चिंतन यानि आत्मा का दया क्षमा शांती इस त्रिपुटी के (इन तीनों की एकरूपता के) कार्य का जिसके आचार और विचारों से अनुभव होता है वह आत्मा परमात्मा होती है। इतना प्रबंध करने के बाद श्रीपंतमहाराजजी के किए बोध के अनुसार, ''हमारे साधन सेवा आदि कुछ किए बिना श्रीगुरू ने हमे परमेश्वर के स्थान का दर्शन कराया है,'' ऐसा जीवन हो जाता है। आखिर यह चिंतन सदैव रहे कि ' हे श्रीगुरूदत्तजी मुझ पर दया कीजिए। मैं अपने दुर्गुण नष्ट नहीं कर सकता इसलिए हे अनंत मुझे क्षमा कीजिए।' साधना में अवधान ध्यान और चिंतन इनकी त्रिपुटी (तीनो की एकरूपता) हो जाने के बाद साधक 'सच्चिदानंद' होता है और उसके बाद जीवन में कुछ भी लेन देन बाकी ना रह कर ईश्वर ही हमसे यह पूछेंगे कि 'लेणं' यानि आभूषण क्या चाहिए?''

39. श्री साई स्वाध्याय मंडल, श्री मारूती स्तोत्र

उपरोक्त विषय का ज्ञान आप भक्तों को हो, वैसे ही आप भक्तों को अपने जन्म का कारण और जीवन के कर्त्तव्य का ज्ञान हो इसलिए समय समय पर शिरोड़ा, गोवा में साधना सम्मेलन आयोजित किए गए। हम मानवों को यदि जीवन प्राप्ति होती है तो भी जीवन जीना यह एक कला है और उसका लाभ गुरूकृपा के बिना प्राप्त नहीं होता है। प्रत्येक मनुष्य को सुख शांती समाधान की इच्छा होती है लेकिन इन इच्छाओं की फलप्राप्ति क्यों नही होती इसके शास्त्रीय कारण का कोई भी विचार नहीं करता और सुख की प्राप्ति ना होने के कारण वह खुद के जीवन में और समाज में अशांतता निर्माण करने का कारण होता है। इसके कारण इस जगत् में सुखप्राप्ति का मार्ग प्राप्त करने के लिए ज्ञानी होने की अपेक्षा मनुष्य अज्ञान के मार्गो का अवलंब करके अधिकाधिक अज्ञानी हो रहा है। ऐसे इस मानवी जीवन में हम मानवों को निश्चित मार्ग मिले इसलिए परमपूज्य बाबा ने समय समय पर कृपाशीर्वाद देकर मार्गदर्शन किया है। यह कृपाशीर्वाद यानि हजारो सालों से आज तक अवतारी पुरूषों की मानव कल्याण के लिए की हुई सिद्ध साधना है। उनकी प्राप्ति सर्वसाधारण मनुष्य को सुलभता से हो इसलिए ईश्वर किसी 'मध्यस्थ' (माध्यम) से कार्य योजना करता है। वह कार्य योजना उस मध्यस्थ के विचारों की निर्मिति नहीं होती लेकिन उसके ऐसे कार्य में मानवी जीवन को सुख शांती समाधान का लाभ होने की योजना होकर भी अज्ञान के कारण मनुष्य उस मार्ग को खोता है।

ऐसी योजना मे 'वंश विमोचन' यह साधन अत्यंत महत्वपूर्ण होकर उस साधन का लाभ आप भक्तों ने लिया है। मानवी जीवन में विद्यानाश और संपत्तिनाश यह प्रमुखता से निर्माण होनेवाले दोष होकर एक पीढ़ी में कुछ व्यक्तियों को विद्यार्जन और ऐश्वर्य इनकी सुलभता से प्राप्ति होती है तो कुछ व्यक्तियों को वह प्राप्ति नहीं होती। बाद में, काल कालांतर से ये दोष बढ़ने के कारण परिवार में हैसियत होकर भी परिवार के वंशजो को विद्यार्जन की प्राप्ति नहीं होती या विद्यार्जन प्राप्त होकर भी पारिवारिक

कर्त्तव्य निभाने की पात्रता नहीं होती। ऐसे दोषों का निवारण पूजा पाठ, मन्नत आदि से नहीं होता है। केवल गुरूकृपाशीर्वाद के लाभ से ही परिवार के इन दोषों की मुक्तता होती है जिससे हम सज्ञानी होकर हमे अपने काया वाचा मन में 'गुरू यही तत्व इस जगत् मे साक्षी है' ऐसी नितांत आदर की धरोहर प्राप्त होती है। यह अमोल धरोहर परिवार के हर एक के जीवन में और परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी सदैव स्थिर रहे इसलिए 'श्री साई स्वाध्याय मंडल ' यह संस्था अक्षय तृतीया श्री साई शके 3 (सन् 1985) इस शुभ दिन को स्थापित की गई।

जगत् में संस्था स्थापन करने के लिए लोग पैसा इकट्ठा करते हैं। श्री साई स्वाध्याय मंडल इस संस्था का विशेष यह है कि आप सबने यानि हर एक व्यक्ति ने इस संस्था का सभासद होना है लेकिन पैसे से नही बल्कि, हमने काया वाचा मन से श्रीगुरू में जो विश्वास रखा है वह अमोल धरोहर यानि श्रद्धा यह अंश (चंदा) के रूप में हमें देनी है। श्रीसाईनाथमहाराजजी का कृपाशीर्वाद और आप भक्तों का उनके प्रति समर्पण की श्रद्धा इनसे श्रीसाई स्वाध्याय मंडल यह संस्था जगत् में जो कार्य करेगी उस कार्य को सच्चे अर्थ से लोक कल्याण का कार्य कह सकते हैं। ऐसे अलौकिक तत्वों पर स्थापन हुई यह संस्था जगत् में निरंतर कार्य करती रहेगी और उस कार्य का ध्येय वाक्य यही होगा कि 'दुखी कष्टी लोगो को 'अपना' कहना है। ''श्रीगुरूकृपा से जीवन में स्थित्यंतर होने से, काया वाचा मन का विकास होकर जिन्हें ज्ञान अवस्था का लाभ हुआ है, ऐसे आप सब भक्तभाविकों के उस विकसित काया वाचा मन में,'' हे गुरूदेव मेरी यह एक आस आप पूरी कीजिए कि जन्म जन्म तक मुझे आपके चरणों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो, "यही भाव स्थिर रहे", ऐसी परम पूज्य बाबा के चरणों में प्रार्थना।

प्रत्येक भक्त के पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों की पूर्तता करा लेने के लिए 'श्री साई स्वाध्याय मंडल' इस संस्था की स्थापना हुई। वैसे ही प्रत्येक भक्त का देहिक और आत्मिक विकास हो इसलिए बाद में गुरू आज्ञा से 'भीमरूपी' इस श्रीमारूती स्तोत्र का समावेश नित्य साधना में

किया गया। लेकिन इस स्तोत्र का महत्व क्या है यह समझ लेना आवश्यक है।

'भीमरूपी' यह स्तोत्र परम पूज्य श्रीरामदास स्वामीजी ने लिखा है। परम पूज्य श्रीरामदास स्वामीजी ये महाराष्ट्र के एक महान संत थे। उनका निवास स्थान सातारा के नजदीक सज्जनगढ़ इस पहाड़ पर है। उनके उपास्य दैवत श्रीरामप्रभु हैं। श्रीरामदासस्वामीजी ने अध्यात्म पर जो महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं उनमें 'दासबोध' 'मनाचे श्लोक' आदि का समावेश है। 'भीमरूपी' यह स्तोत्र उन्होंने श्रीरामजी की आज्ञा से लिखा है। भीमरूपी स्तोत्र की उस समय और आज भी आवश्यकता है यह समझ लेकर मेरे पिताजी ने मेरी आठ साल की उम्र में मुझे इस स्तोत्र का पाठ नित्य नियम से करने के लिए कहा था। उसके अनुसार मैं नित्य नियम से उस स्तोत्र का पाठ करता आया हूँ और आज भी कर रहा हूँ। शक्तिपीठ स्थापना को तीन साल पूर्ण होने के बाद परम पूज्य साई बाबा की यह आज्ञा हुई कि भीमरूपी यह केवल स्तोत्र ना होकर उसमें जीवन का शास्त्र, शस्त्र और अस्त्र है। तुम 'दीक्षा' के रूप में यह स्तोत्र पठन करने को सबसे कहो फिर उसके गूढ़ अर्थ सबको समझ आएगा।

हम आज तक ॐकार साधना कर रहे हैं लेकिन वाणी की सिद्धता हुए बिना इसका फल खुदको या औरों को प्राप्त नहीं होता है। इस भीमरूपी स्तोत्र में जो बीज है वह वायु' है। इसलिए इस स्तोत्र का समावेश नित्य साधना में करने की आज्ञा, चैत्र प्रतिपदा के दिन हुई। इस स्तोत्र में गूढ़ अर्थ क्या है यह समझ लेने से आप भक्तों के जीवन का सार्थक होगा। केवल ढोल बजाने से भगवान नहीं मिलते हैं। उसके लिए उनको मिलने की आस लगना आवश्यक है। श्रीनवनाथों के दैवत, 'श्रीमारूती (हनुमान जी)' हैं। इसके अलावा मेरे घर के पूजन में पांच पीढ़ीयों से हनुमान जी की पूजा होती है और वह श्रीहनुमानजी की मूरत मेरे परदादी से बात करती थी। अब मेरे माध्यम द्वारा जिस स्तोत्र पर मेरा दृढ़ विश्वास श्रद्धा और भक्ति है उस स्तोत्र का गूढ़ अर्थ श्रीहनुमानजी ने ही मुझसे लिखवाया है। इस विश्वास से मैं उनका सदैव ऋणी हूँ। जगत्

में जो कुछ कम था वह मैने दिया है। इससे देव या ब्रह्म अलग नहीं है यह ध्यान में रखना आवश्यक है। पिछले चालीस सालों में मेरे हाथों जो कार्य हुआ है उसके पीछे परम पूज्य बाबा का आशीर्वाद था और वाणी द्वारा मैं ॐकार और भीमरूपी स्तोत्र कहते आया हूँ उसी के कारण इस वाणी माध्यम से यह कार्य सुलभता से जगत् को परिचित हुआ। इसलिए जीवन में कुछ अन्य मंत्रो का पठन नही किया तो चलेगा लेकिन नित्य नियम से 'श्रीभीमरूपी' स्तोत्र कहने से उसका लाभ देहिक और आत्मिक विकास के लिए निश्चित होगा यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

जगत् में जो धर्म है उन प्रत्येक धर्म में 'उपनयन' (जनेऊ) यानि 'अनुग्रह दीक्षा' बताई गई है। केवल हिन्दु धर्म में है इसलिए उस धर्म के अनुसार हमारे मार्ग में मौजीबंधन, उपनयन, जनेऊ या अनुग्रह दीक्षा बताई है ऐसा नही है। जब बालक सज्ञान होता है उस समय उसके आचार और विचार इन पर संस्कार होना अत्यंत आवश्यक है। और उन्ही के कारण बालक का आगे का जीवन अच्छी तरह से साकार होता है। प्रत्येक मानव को जन्म लेते समय पांच कोशों की प्राप्ति होती है लेकिन इन पांच कोशों का विकास करने का हमारा कर्त्तव्य हम भूल जाते हैं। इसलिए यदि देह प्राप्त हुआ तो भी उसका इष्ट विकास ना होने के कारण जन्म कर्म और जन्मजन्मांतर इनमें जो कर्म है वह कर्म अनुकूल ना होकर पीड़ादायक होता है और हम अज्ञान के कारण इस पीड़ा को विपत्ति या दुख समझते हैं। इन पाँच कोशों के विकास के लिए श्रीसद्‌गुरू ने गुरूमार्ग में जो पाँच दीक्षाएँ बताई हैं वे इस प्रकार हैं– उपासना दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा, गुरूदीक्षा, कारण दीक्षा और महाकारण दीक्षा। इन दीक्षाओं में 'अनुग्रह दीक्षा' महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें पहली दोनो दीक्षाएं यानि उपासना दीक्षा और नामस्मरण दीक्षा अंतर्भूत हैं। इसलिए यह सर्वश्रेष्ठ दीक्षा है। आगे की जो दीक्षाएं है वे हमारी नित्य साधना में सिद्ध करानी है। इसलिए श्रीगुरू की सिखाई साधना अत्यंत आस्थापूर्वक करना आवश्यक है क्योंकि यह सेवा काया वाचा मन से करने के बाद उसका लाभ यानि आगे की दो दीक्षाएं यानि 'कारण दीक्षा' और 'महाकारण दीक्षा' ये अवस्थाएं हमें प्राप्त होती हैं।

समिति का कार्य और उसकी स्थापना इनमें वैयक्तिक जीवन का समावेश होने नहीं देना है और जिन सेवको को सेवा करनी है उनसे उनकी अपनी वैयक्तिक भूमिका भूल कर, समिति का कार्य लोगों को समझ आए इसके लिए 'निराकरण' और 'निवारण' ये साधन सिद्ध किए गए। इस निराकरण में जगत के अनेक दुखी लोगों को शामिल करने की योजना कार्य के प्रारंभ में ही की गई थी। आज समिति के कार्यकेन्द्र, गोवा से कोलकत्ता तक यानि लगभग पूरे हिंदुस्तान में और परदेस में भी कार्य कर रहे हैं। लेकिन जब यह सिद्धता हुई तब कार्य–योजना अस्तित्व में होकर भी उस समय कार्य करने के लिए कार्यकेन्द्र नहीं थे। जन्म लेने के बाद जीवन का सार्थक हो और जीवन केवल व्यर्थ खर्च ना हो इसलिए मैने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभूति लेकर ॐकार साधना और श्रीसद्गुरूनामस्मरण नित्य साधना में सिद्ध किया है और पिछले पचास सालों में इस साधना की सिद्धता का अनुभव हर एक भक्त को भी प्राप्त हुआ है। जो आज की परिस्थिति है उसका अवलोकन पचास साल पहले करके निराकरण निवारण और वैयक्तिक साधना सिद्ध किए गए हैं।

मानवी जीवन में जिस दुख का अहसास होता है उसका मूल कारण मनुष्य के कर्मो में होता है। यह कारण समझ कर उसका निवारण कैसे करना है इसका अध्ययन अनेक दुखी लोगों के जीवन द्वारा करने में मैने दो तप यानि चौबीस साल व्यतीत किए और आखिर गुरूकृपा से निवारण का शोध किया गया। कार्य के आरंभ से ही गुरूकृपा से मानवी जीवन की दुःख परंपरा नष्ट करने के लिए केवल एक ही रामबाण यानि प्रभावपूर्ण उपाय हो यह मेरी आंतरिक इच्छा थी। मेरी इस इच्छा को श्रीगुरू ने यह प्रतिसाद (response) दिया कि, "इस जन्म मे जो कोई कर्म से या धर्म से दुखी हुआ है उसके दुख के कारण का शोध मत लो। वह शोध कोई नहीं कर सकेगा और उसमें पुण्य व्यर्थ खर्च होगा। इसकी अपेक्षा उस पुण्य से जगत् को कैसे सुखी किया जाए इसके बारे मे सुविचार करके समिति के मार्गदर्शन के लिए आए हुए व्यक्ति को उसके दुख का कारण बताने का पाप मत करो। उसके बजाय उसे फिर से वैसे कर्म ना करने की सुबुद्धि प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना सिखाओ "। इसके लिए

आवश्यक, 'हे भगवान' यह प्रार्थना पहले ही परम पूज्य बाबा ने दी थी। 'हे भगवान' इस प्रार्थना में सब कुछ यानि कुलाचार, कुलधर्म, कुलोपासना, वास्तु देवता, उपास्य देवता इनके अलावा पिछले सात पीढ़ी के पूर्वजों की सद्गति इनका समावेश किया है। इतना प्रबंध और इतनी सिद्धता होने के बाद आए हुए भक्त को उसके दुख के 'निवारण' के बजाय 'निराकरण' बताने का यह मतलब होगा कि जिन पूर्व कर्मो के कारण वह दुखी है उन कर्मो का पुनश्च उच्चार! यह परम पूज्य बाबा की कृपा से बीत चुके कर्मो का फिर से जागृत करना होगा, इसलिए श्री गुरूकृपा से 'निवारण' यह साधन सिद्ध किया गया। आने वाले भक्तों को आशीर्वाद की जो आवश्यकता होती है उसके लिए रोज की साधना का भाग औरों को देकर उन्हें सुखी करने का कर्त्तव्य भविष्य में सेवक करते रहें इसलिए परमपूज्य साईबाबा ने हरएक में 'गुरूबीज' की धारणा करा दी है।

40. शुभतारा का आगमन, महाकारण दिशा, बीज दीक्षा

बीस सदियों के पहले जो परिस्थिति इस जगत् में निर्माण हुई थी वैसी ही घड़ी आज आई है कि आज इस जगत को तारनेवाला कोई नही है। पहले जमाने में परमेश्वर अवतार लेते थे लेकिन यदि अब परमेश्वर ने अवतार लिया तो भी उन पर भरोसा करके 'ये परमेश्वर है' यह मानने वाले लोग आज बहुत कम हैं। इस जगत् का कार्य निरंतर जारी रहे इसलिए आवश्यक कार्य की घड़ी आज आई है। पचास साल पहले, मतलब कार्य के आरंभ में परमपूज्य श्रीसाईनाथ महाराजजी ने दैनंदिन प्रार्थना सूचित की थी उस प्रार्थना में जो 'बीज' है वही भविष्य मे अवतीर्ण होनेवाला 'मानवता युग' है। जगत् मे जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति में अगर यह गुरूमंत्र धारण हुआ तो उससे, आगे आनेवाले समय मे 'हर व्यक्ति में सुख शांती समाधान की बरकत होती रहे ऐसी ईश्वर की इच्छा है।

भगवान येशु ख्रिस्तजी के जन्म के समय उस काल में लोगों को एक तारा दिखाई दिया और उस तारे को ढूंढने के लिए उसकी दिशा में जब लोग गए तो उन्हें वह तारा 'यशदायक' है यह अहसास हुआ। इसलिए उस समय जन्म लिये उस बालक का नाम 'येशु' रखा गया और उसी बालक ने धर्म सिखाया। यदि साधक को विश्व कल्याण की आत्यंतिक इच्छा जन्म से ही होगी तो ऐसे साधक को निसर्ग भी सौ प्रतिशत सहकार्य देता है क्योंकि निसर्ग का धर्म जनकल्याण है। इस सत्य की प्रचिति 20 जून, 1985 के दिन सबको मिली। उसके पहले परमपूज्य बाबा ने सब भक्तों को महाकारण दिशा देने की विधि की थी, उस समय जो दिशा दिखाई थी उसी दिशा से एक वह आशादायक तारा पृथ्वी की ओर आया, अन्यथा असंख्य गॅलेक्सी की तरह वह तारा हमारी पृथ्वी से अनेक योजन दूर रह जाता। यह तारा नवग्रहों से अनेक गुना बड़ा होकर मानवीय जीवन पर इसके कारण नवग्रहों के परिणाम न होकर, उस तारे के प्रभाव का हर एक को अपने जीवन में अनुभव आएगा और यह अनुभव प्रत्येक भक्त को प्राप्त हो इसलिए सब कार्य केन्द्रों पर 'बीज दीक्षा' दी

गई। बीज दीक्षा यानि 'उपनयन विधि' (जनेऊ) है। हम जब बच्चो का उपनयन विधि (जनेऊ) करते है, उससे होने वाले लाभ से इस बीज दीक्षा से होने वाला लाभ हजार गुना श्रेष्ठ है क्योंकि यह 'शुभ योग' लगभग ढाई–तीन हजार साल के बाद आया है।

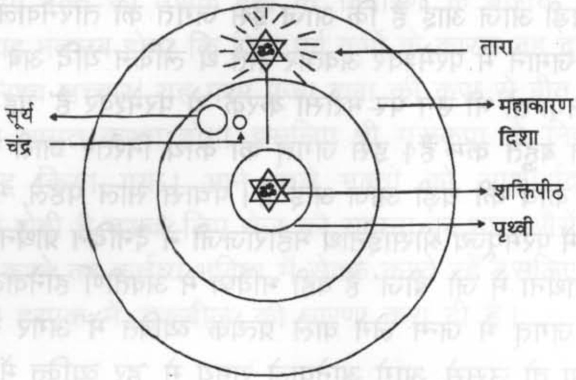

इस आकृति के अनुसार यह तारा नभो मण्डल में होगा, यह तारा पृथ्वी से अनेक योजन दूर होने के कारण उसका अस्तित्व आँखो से देखना नामुमकिन होकर उसका अस्तित्व लहर रूप मे समझ आएगा। परमपूज्य बाबा की आज्ञा का पालन करने से सबका हित होगा। इस तारा का अस्तित्व पंद्रह सालों तक रहेगा और इस तारा से जो शक्ति पृथ्वी की ओर आएगी उस शक्ति का लाभ 'सूर' माध्यम से ॐकार साधना करने से प्राप्त होगा। इस शक्ति माध्यम से ही जगत् में 'मानवता युग' की निर्मिति होगी। परमपूज्य बाबा के संकेत के अनुसार उस दिन सब भक्तों को 'बीज दीक्षा' का लाभ प्राप्त करा दिया।

जन्म लेने के बाद जीव की चार अवस्थाएं होती हैं जीव, जीवात्मा, आत्मा, परमात्मा। उनका यथायोग्य विकास हो और उसके द्वारा देह के पंचकोशो के दोष नष्ट होकर नर का नारायण होकर अखिल विश्व में सुख शांती समाधान का बीज बोया जाए इसलिए भूतल पर शक्तिपीठ की स्थापना की गई। निसर्ग में चेतन, अचेतन और आत्मिक ये तीन शक्तियाँ होती हैं जीवन में इन शक्तियों का कार्य अलग अलग है। इसलिए आप भक्तों को ॐकार की दीक्षा देकर नित्य साधना सिखाई है। इस साधना में पिंड और ब्रह्माण्ड इन शक्तियों का समावेश है। लेकिन ये दो शक्तियाँ आत्मा से एकरूप हुए बिना

आत्मा का इह जगत में क्या कार्य है यह हमारे समझ में नहीं आता है इसलिए जो कोई जन्म लेता है वह अपने जीवन को सार्थक नहीं कर सकता है।

विज्ञान का अतिरेक होने के कारण निसर्ग में निर्माण होने वाले उत्थानों के दुष्परिणाम जगत् के जीवमात्र के जीवन पर ना हो इसलिए परमेश्वर को निसर्ग के शक्तिपीठ की योजना कार्यान्वित करनी पड़ी। आज वही हिरण्यगर्भ का शक्तिपीठ अखिल विश्व की देखभाल और पालनपोषण कर रहा है इससे बढ़कर हम मानवों का महत्‌भाग्य क्या होगा ?

शक्तिपीठ स्थापना के बाद 1985 के नवंबर मास में कराड़ में एक सेवक सम्मेलन लिया गया। उस सम्मेलन में जो साधन सिद्ध हुआ, वह विषय मैने उसके बारह साल पहले साधना में सम्मिलित किया था। वह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण होकर परलोक के आत्माओं को सद्‌गति कैसे प्राप्त होगी और उसके लिए कोई साधना सिद्ध होगा या नही यह सवाल उस समय मैने परम पूज्य बाबा से पूछा था। तब उन्होंने बताया था कि भविष्य में यही साधन हमें सिद्ध करना है। उस साधन में धर्म पंथ इनका संबंध नहीं आना चाहिए। आज सैकड़ों सालो से यह शास्त्र, धर्माचरण में बनाया गया है लेकिन उसका लाभ लेने के लिए और देने के लिए परलोक और ईहलोक कार्यक्षम नहीं है। जो भक्तभाविक ॐकार साधना कर रहे हैं उनका देहिक माध्यम इस सिद्धता के लिए उपयुक्त होगा। उसके लिए प्रथम काया वाचा मन एकरूप होना आवश्यक है। उसके बाद पेशी (cells), हार्मोन्स और अंग (organs) एक होगी और उनसे द्रव पदार्थ (Ectoplasm) यह जो द्रव पदार्थ प्रवाहित होगा इस द्रव के माध्यम से इन आत्माओं की मुक्तता होगी। अब इसके आगे की ॐकार साधना को सतर्कता से करना आवश्यक है, केवल देहिक क्रिया करने से यह लाभ नहीं होगा।

अब गुरुमार्ग में श्रीगुरु से कुछ माँगना बाकी नहीं है बल्कि हमें स्वयंस्फूर्ति से औरों को कुछ देना है और वह 'कृपाशीर्वाद' है ऐसा विचार अब सब भक्तों को दृढ़ करना है। 'उसका लाभ इहलोक और परलोक को होगा' यह परमपूज्य बाबा ने शुभसंदेश दिया है और नित्य साधना में ॐकार का और नामस्मरण का कार्य क्या है यह स्पष्ट किया है।

41. श्रीसाईनाथ महाराजजी ने स्पष्ट किया ॐकार साधना का कार्य

ॐकार :–

ॐकार में काया वाचा मन से एकरूप होना आवश्यक है वैसे ही ॐकार के प्रत्येक उच्चार के पहले Pause यानि अल्प विराम लेकर ॐकार का आरंभ करना आवश्यक है। यह अल्प विराम साढ़ेतीन सेकंड का होकर उसमें प्राणायाम होता है जिससे शरीर निरोगी होकर शांत रहता है। काया और वाचा इनकी गति के अनुसार मन की अवस्था होनी चाहिए। ऐसी इनकी त्रिपुटी होने के बाद एक्टोप्लाझम यह द्रव हमारे माध्यम से बाहर आता है। यदि विचार और अविचार की वजह से मन की गति बढ़ गई तो यह कार्य नहीं होता है। परमपूज्य बाबा ने, 'आशीर्वाद से हम सब के देहिक माध्यम में काया वाचा और मन इनका एक होना' इस साधन का लाभ हमें करा दिया है। यह अवस्था साधक के लिए दुर्लभ है यह साधक को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसी प्रकार साधक के शरीर के पाँच कोश भी एक होना आवश्यक है। उसके पहले पाँच स्थानों से ॐकार करा लिया था। ये पाँच स्थान एक होकर उस एकरूप अवस्था से ॐकार का उच्चार करना होता है। इसलिए ॐकार के अंग ध्यान में रखकर कंठ स्थान से साधना करना और उसमें स्वर ताल लय का उपयोग करना आवश्यक है। ॐकार साधना का तफशील –

उच्चार :- अ + उ + म = ॐ – सही उच्चार

उ + अ + म = ओहोम् – गलत उच्चार

ॐकार के पहले अक्षर 'अ' से ॐकार का उच्चार प्रारंभ करने से ॐ यह उच्चार होता है उसमें 'म्' का उच्चार नही करना है। लय में आने से 'म' का अनायास उच्चार होता है। ॐ का उच्चार उ से प्रारंभ किया तो 'ओहोम' यह गलत उच्चार होता है

ॐकार की संथा – काया – वाचा – मन – देहिक स्थिति

ॐकार के अंग – उच्चार – मध्य – लय (Perfection)

स्वर – ताल – लय (Rhythm)

ॐकार का प्रमाण – उच्चार – मध्य – लय 10 सैकंड़ (Scale)

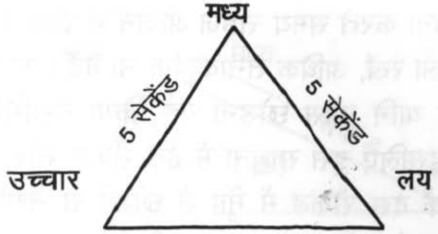

ॐकार का उच्चार करते समय आवाज (volume) कायम रहना चाहिये आवाज कम अधिक करना गलत है मतलब ॐ करते समय voice चाहिये volume नहीं चाहिये।

अल्प विराम (**Pause**)

हाथ उपर करते रहकर दस सैकंड ॐकार का उच्चार करने के बाद एक सैकड़ रूकना है और हाथ फिर से पहली जगह ड़ेढ़ सैकंड में ले जाना है मतलब नैसर्गिक सांस लेने के समय में हाथ पहली जगह ले जाना है। सांस के बाद अगला ॐकार प्रारंभ करने से पहले एक सेकंड रूकना है मतलब कुल विराम तीन सैकंड का है। हाथ की क्रिया नब्बे अंश में करनी है।

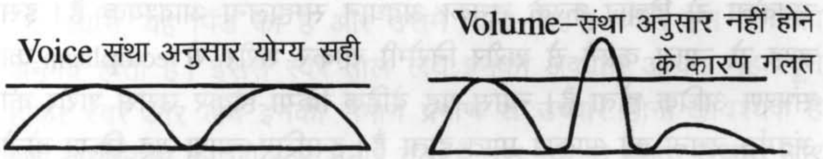

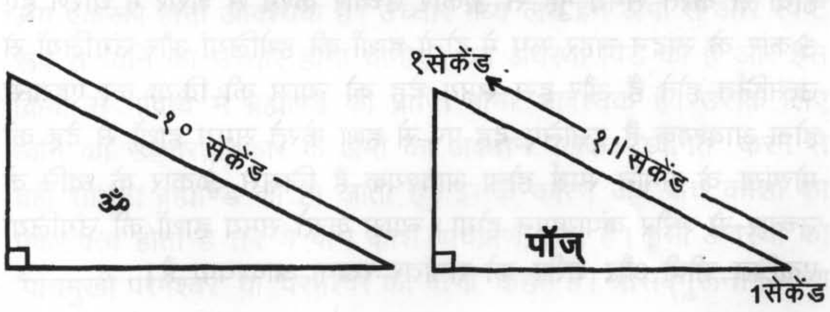

ॐकार साधना करते समय सहज आसन से सीधे बैठना है। गर्दन सीधी रखें, शरीर ढीला रखें, अधिक तनावपूर्वक ना बैठें। श्वास यानिा सांस लेना और उच्छवास यानि सांस छोड़ना यह क्रिया नैसर्गिक होने से ही प्राणायाम होता है। इसलिए इस साधना में डेढ़ सैकंड साँस लेकर (श्वास) वह सांस ध्वनि करके दस सैकंड़ में मुँह से छोड़ने से नैसर्गिक प्राणायाम होता है जिससे शरीर के सुधार को मदद होती है। मतलब कफ पित्त वात से ये समतोल होकर उससे श्वसन क्रिया, पाचन क्रिया और रूधिराभिसरण ये क्रियाएं ठीक होती हैं।

<u>न्यास–</u>

यदि आप न्यास बाह्य अंग से करते हैं तो भी उसका संबंध शरीर की अंतर्गत रचना से होता है। शरीर के अंतर्गत माध्यम, यानि श्वसन क्रिया, पाचन क्रिया और रूधिराभिसरण यदि विसंगत होगी तो शरीर के कार्य मे खंड होकर उससे रक्तदाब, ह्रदयविकार, आम्लपित्त, बद्धकोष्ठ आदि रोग होते हैं। शरीर के अंतर्गत माध्यम एक दूसरे के लिए पूरक होते हैं और उनका कार्य एक दूसरे पर निर्भर होता है। इन माध्यमों को पूर्ववत क्रिया करने के लिए सुविधा देना या उसके लिये व्यायाम देना यह न्यास है। इसलिए न्यास करते समय ऊपर लिखे ॐकार साधना के अंगों को सतर्कता से विचार करके उनका अवधान सम्हालना आवश्यक है। इस तरह से न्यास करने से शरीर निरोगी रहकर शरीर से ectoplasm का संभरण अधिक होता है। न्यास यह देहिक क्रिया होकर उससे शरीर की अंतर्गत रचना को आकार प्राप्त होता है। इसलिए न्यास यह क्रिया दोनो हाथों से करते समय मुँह से ॐकार उच्चार करने से शरीर में धारण हुए ॐकार के स्पंदन लहर रूप में दोनो हाथों की हथेलियां और उंगलियों से उत्सर्जित होते हैं और इस समय देह को न्यास की क्रिया का एहसास होना आवश्यक है इसलिए देह पर से हाथ फेरते समय हाथों से देह को मोरपंख के समान स्पर्श होना आवश्यक है जिससे ॐकार के ध्वनि के उच्चार से शरीर कंपायमान होगा। न्यास करते समय हाथों की उंगलियां एकत्रित सीधी और शरीर को समांतर रखना आवश्यक है।

प्रमाण **(Scale)** –15 सेकेंड

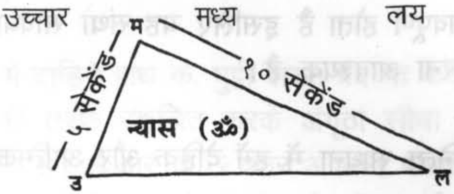

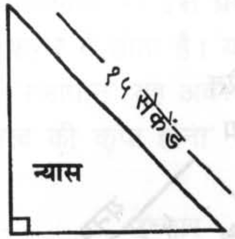

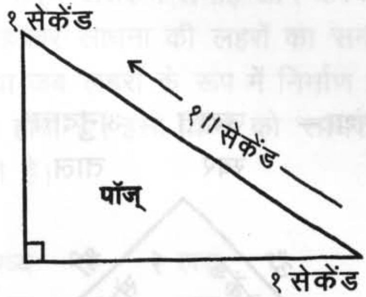

<u>श्रीसदगुरूनामस्मरण</u> –

यह साधन पांच कोशों से संबंधित है, इसमें कंठ से जो उच्चार होता है वह 'आवाज' न होकर ध्वनि होनी चाहिए। पांच कोशों के विकास का अनुमान यह है कि कंठ से होने वाले उच्चार से ध्वनि सुनाई देता है।

ध्वनि, यह पिंड का है और उसमें ध्वनि–लहरी–ध्वनि इस अंग का अनुभव होता है। इससे स्वर ताल लय इनका अवधान अत्यंत महत्वपूर्ण होकर स्वर और लय इनका समान प्रमाण से उच्चार होना आवश्यक है और हार्मोनियम का जो स्वर सुनाई देता है उस स्वर से हमारा उच्चार और लय एकरूप होना आवश्यक है। उच्चार मध्य लय इन अंगो से और स्पष्ट रूप से ध्वनि का उच्चार होना चाहिए। यह अवस्था पिंड की है और इस क्रिया से भविष्य में ब्रह्माण्ड की प्राप्ति होना आवश्यक है। उसके लिए ध्वनि का उच्चार ॐकार के अंगों का अवधान रखकर 'ध्वनित' करने से वही साधना ब्रह्माण्ड की हो जाती है। इसके कारण जब पांच कोशों का एकरूपत्व होता है तब ये पांच कोश 'पंचप्राण' होते हैं। इसी अवस्था को 'पांचमुखी परमेश्वर' या 'परमेश्वर की वाणी' कहते हैं। श्रीसद्‌गुरूनामस्मरण

यानि 'ॐ श्रीसाईनाथाय नमः' ये नौ अक्षर, संथा से कहे जाने से ही उनका लाभ अधिक प्रभावपूर्ण होता है इसलिए यह संथा सावधानी से कह कर उच्चार स्पष्ट करना आवश्यक है।

इस तरह नित्य साधना में हमें देहिक और आत्मिक प्रगति कर लेनी है।

संथाः– उदात्त अनुदात्त स्वरित

स्वर ताल लय

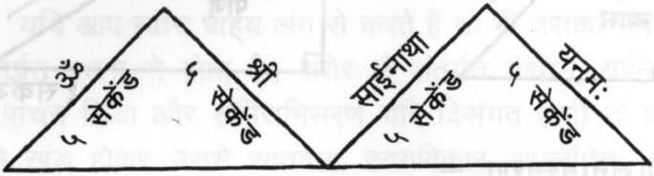

<u>व्यक्ताव्यक्त ॐकार</u>

यह क्रिया दोनो हाथों से करनी है। शरीर का अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए ह्रदय से फेफड़ों में आता है। जो श्वासोच्छवास की (सांस लेने और छोड़ने की) क्रिया हम करते है उसमें सांस लेते समय आक्सीजन (प्राणवायु) शरीर में लेना और सांस छोड़ते समय कार्बन डाई आक्साईड़ (कर्ब द्वि प्राण वायु) बाहर छोड़ना यह क्रिया होती है। ॐकार करते समय सांस लेना और विराम (सांस रोकना) यह क्रिया साढ़ेतीन सैंकण्ड़ में करनी है। सांस नाक से लेनी है। उच्छवास की (सांस छोड़ने की) क्रिया दस सैकंड में ॐकार का उच्चार ध्वनित करते करते मुँह से करनी है। इस प्रकार करने से यह शास्त्र मे बताए अनुसार प्राणायाम होता है। इससे रक्ताभिसरण और श्वसन की अनियमितता दूर होती है। इसके कारण शरीर में जो Ectoplasm निर्माण होता है उसकी निर्मिती संपूर्ण शरीर में होती है। इसी अवस्था को 'अंहकार' यानि 'अहम् आकार' कहते हैं।

धारणा ॐकार–

इस अवस्था में दाहिने हाथ की मुट्ठी सख्त बंद ना करे, हल्के से चार उंगलियां अन्दर की तरफ एकत्रित करके अंगूठा सीधा इस स्थिति में हृदयस्थानपर रखना है। ॐकार का उच्चार अवधान रखकर करते समय जो लहरें निर्माण होती हैं वे संथा से संपूर्ण शरीर में समाई जाने की क्रिया होना आवश्यक है। इस प्रकार से ॐकार साधना की लहरों का समावेश संपूर्ण शरीर में होता है। यह अवस्था जब लहरों के रूप में निर्माण होती है तब 'समाधान' यह अवस्था व्यक्त होती है। इसी क्रिया को 'साधक पर नामीतत्व की कृपा होना' यह कहते हैं।

संथाः–	उच्चार	मध्य	लय
	स्वर	ताल	लय

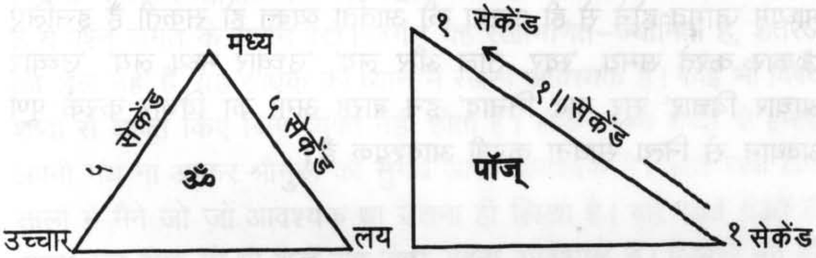

इस साधना में ॐकार और नामस्मरण कंठ स्थान से करना आवश्यक है। इसलिए सबके लिए सुविधा का स्वर यानि हार्मोनियम के काली एक के स्वर में संपूर्ण साधना करते समय साधना के अनुसंधान पर ध्यान रखना आवश्यक है। केवल साधना के लिए उपस्थित रहकर 'मैंने साधना की' यह कहने से कुछ भी साध्य नहीं होगा। इसलिए पहला अनुसंधान 'स्वर' इस अंग का रखना आवश्यक है।

आज तक श्रीसाई अध्यात्मिक समिती के मार्गदर्शन करने में जिन पुण्य विभूतियों के आशीर्वाद का इस कार्य को लाभ हुआ उनमें हाजी हजरत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती (अजमेर) इनकी आज्ञा के अनुसार मुझे

तीर्थक्षेत्र बालेकुंद्री यहां जाने का मौका प्राप्त हुआ और वहां जाने के बाद श्रीपंतमहाराज जी के लिखे काव्य(पदो) की असीम मधुरता और उनमें समाए 'शब्दब्रह्म' का अनुभव प्राप्त हुआ। इस घटना को पच्चीस साल पूर्ण होने के बाद उसके आगे की सिद्धता यानि श्रीनाथपंथ के सिद्धसाधन इनका लाभ भविष्य मे सबको सुलभता से हो इसलिए ये सिद्ध साधन उन्नीस सौ पचासी (1985) के मकर संक्रांति के दिन श्रीगोरक्षनाथजी के आशीर्वाद से श्रीपंतमहाराजजी के लिखे काव्य (पदो) मे समाए गए। उस समय से 'आरती' यह नित्य साधना का एक भाग हुआ है। अब प्रत्येक कार्यकेन्द्र पर हो रही नित्य आरती से हम सबका दैहिक विकास होता है। आरती यह साधना 'स्वर, ताल, लय' और उदात्त, अनुदात्त स्वरित इनसे युक्त होना आवश्यक है। आरती इस शब्द में मूल शब्द 'आर्त' यह होकर ईश्वर के प्रति आर्तता यानि आरती है। यह आर्तता हमारे देहिक माध्यम से व्यक्त होनी आवश्यक है। नित्य ॐकार साधना से देह के उन्नीस माध्यम जागृत होने से ही आत्मा की आर्तता व्यक्त हो सकती है इसलिए ॐकार करते समय, 'स्वर, ताल और लय' 'उच्चार मध्य लय' 'उच्चार आचार विचार' सूर नाद निनाद' इन बारह अंगो का विचार करके पूर्ण अवधान से नित्य साधना करनी आवश्यक है।

42. सूज्ञ भक्तों जागृत हो जाओ !

कोई भी विषय व्यक्त करने के लिए शब्द आवश्यक है लेकिन उस शब्द में क्या शब्द है यह पढ़नेवालों को केवल समझ में नहीं आना चाहिए, बल्कि उससे पढ़नेवाले की स्थिति बदलना आवश्यक है, उसे ज्ञान प्राप्त होना आवश्यक है, लेकिन वह ज्ञान इस जगत् को तारने वाला (रक्षण करने वाला) होना आवश्यक है। शब्दों का उलटा सीधा उपयोग करके बहुत से ग्रंथ लिखे जाते हैं और उन ग्रंथो को 'सुबोध' कहा जाता है लेकिन ये ग्रंथ पढकर पढ़नेवाले को उससे ग्रंथी आई मतलब ग्रंथ का ज्ञान पढ़नेवाले को अज्ञान होने लगा तो ऐसे ग्रंथ लिखना योग्य नहीं है। मेरे इर्द गिर्द सैकड़ों विषय थे फिर भी मैं आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहा और आज्ञा के बाद ही मैने लिखना आरंभ किया। उसमें, 'इह जगत् को तारने का कोई मार्ग है क्या' यह प्रश्न विचारों में लेकर समिति की कार्यपद्धति क्या है और भक्तों का कर्त्तव्य क्या है ये प्रश्न जगत् के सामने रखे। जगत् यह रेखागणित–ज्यामिती है, शतरंज का खेल नहीं है, यह साधक को ध्यान में रखना आवश्यक है। कोई भी विषय शब्दों से व्यक्त किए बिना व्यक्त नहीं होता है। लेकिन उन शब्दों से हमारी अपनी गंध ना आकर श्रीगुरू की सुगंध आनी आवश्यक है। आज तक तीस सालों में मैने जो जो आवश्यक था उतना ही लिखा है। वह पढ़ते पढ़ते ही हमारा अंत होगा तो भी शब्द यह 'ब्रह्म' रहना आवश्यक है। जिनसे मन को एक बार गति मिलने के बाद उसे सद्गति मिलना आवश्यक है। केवल गति मिलने के बाद यदि औरों को बोध नहीं हुआ तो उसके कारण दुर्गती नहीं होनी चाहिए। इसलिए कम बोलना और कम लिखना, पर उसके लिए सालों साल बुद्धि और मन में ही विचार रहना उचित नहीं। बुद्धि के विचार प्रथम मन में और बाद में अंतःकरण में उभरना आवश्यक है और उसके लिए चिंतन करना आवश्यक है, केवल चिंता करने से उपयोग नहीं होगा क्योंकि उससे मनुष्य का अंत हो जाता है, इस तत्व का सदैव विचार करना यानि ईश्वर भक्त होना है। नहीं तो नश्वर भक्त बहुत आए और गए उनकी कोई गिनती नहीं है। आज का विचार यह आगे की 'नांदी' यानि शुरूआत है और उसके पहले इस जगत् को जागृत करने की (नाद) आस लगना आवश्यक है। यदि ऐहिक सुखों की (नाद) आस लगी तो वह मरने तक नहीं छूटती है और

आखिर में उसका रूपांतर वासना में होता है। जन्म लेते समय 'वासना' चाहिए लेकिन आखिर में केवल 'वास' (गंध) रहना आवश्यक है। इसलिए साधक यही मांग करता है कि 'हे दत्तगुरू मेरी आखिर अच्छी कीजिये'।

गुरूमार्ग में अनेक लोगो से गांठभेंट होती रहती है लेकिन कोई भी यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि यह जो गुरू भक्त गुरू से मिलने आया है उसका गुरू से क्या हित संबंध है ? गुरू को मिलने आने वाले भक्तों में चार प्रकार होते हैं। जो कोई जन्म लेता है वह काया वाचा मन के बंधन में रहे बगैर जन्म नहीं ले सकता। ऐसे समय गुरू से मिलने मिलाने का आरंभ होता है क्योंकि जो कर्म की जोड़ सबके पास होती है उस कर्म की जोड़ के कारण ही गुरू से मेल मिलाप होता है। प्रथम अवस्था में जब हम कायिक होते हैं, उस समय कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल यह कर्म का खेल निरंतर जारी रहता है। ऐसे समय यह खेल नष्ट होंने के बाद हम जागृत होकर यह समझ जाते हैं कि, कर्म यानि क्या है, इस कर्म से अपना संबंध क्या है। इस कर्म से मुक्तता हुए बिना सुख की प्राप्ति नहीं होगी, यह सिद्ध हो जाने के बाद हम पहले मार्ग की ओर यानि भूत भविष्य मार्ग की ओर जाते हैं और वह ज्ञान हमें ना होने के कारण हम ज्योतिषी के पास जाकर उससे अपना भविष्य पूछते हैं। वास्तव में जो तकलीफ है वह ग्रहों के कारण ना होकर कर्मो के कारण हुई होती है। जो कर्म हमारे लिए अनुकूल नहीं हैं उन्हें अनुकूल करा लेना यह जीवन का अर्थ है। लेकिन आज हर एक आदमी अनर्थ से आचरण करता है और इसलिए जो जो सुख हमें प्राप्त होता है उस सुख की प्राप्ति पूर्वजन्मों पर निर्भर है यह भूल जाता है।

आज का यह जन्म यानि प्राप्त काया वाचा मन ये इस जीवन का उपभोग लेने के माध्यम हैं। हमें दुख हुआ है उसका निवारण कैसे होगा इस विचार से अनेक मार्गो का अवलंब करने के बाद हम 'गुरू' का शोध करने लगते हैं। आज इस जगत् में हर एक को सुख की इच्छा है और हम जिस सुख की इच्छा करते हैं वह सुख कोई भी कष्ट उठाए बिना हमें कैसे प्राप्त होगा यह विचार हर एक के मन में होता है। ऐसे समय गुरू

से मिलने पर हम जो सुख की इच्छा कर रहे हैं उसकी क्या कीमत है यह प्रश्न हम कभी भी खुद से नहीं पूछते हैं। हर रोज बाजार जाने के बाद वहाँ की प्रत्येक चीज उसका मूल्य चुकाए बिना हमें प्राप्त नहीं होगी यह विचार हम सूज्ञता से करते हैं फिर भी सुख की कीमत का हम विचार नहीं करते। गुरूमार्ग में आने के बाद हमें जो सुख प्राप्त होता है वह सुख हमें श्रीगुरू के आशीर्वाद से प्राप्त होता है। यह जो सुख श्रीगुरू हमें देते हैं और हमें वह सुख प्राप्त हुआ है उसके बदले में हमें सेवा करनी होती है यह व्यवहारिक लेन देन गुरू मार्ग में होता है। हम सुख के हिस्सेदार तो होते हैं लेकिन उस सुख के बदले में सेवा ना करने के कारण हमारे साथ हमारी आत्मा नहीं होती। जो सेवा हम करते हैं उस सेवा में हमारी आत्मा यानि चैतन्य हुए बिना अगले जन्म का प्रबंध नहीं होता। जगत में जब कोई मनुष्य दूसरे से पैसे लेता है तब वे पैसे उस मनुष्य को वापस देना आवश्यक होता है, यह व्यवहार है लेकिन हम जीवन का व्यवहार मतलब प्राप्त सुख के प्रित्यर्थ सेवा करने का व्यवहार भूल जाते हैं और इसलिये हमें कितनी भी धन प्राप्ती हुयी तो भी सुख शांती समाधान की प्राप्ती नहीं होती है। आज हमें देवधर्म की चाहत नही है दिन रात केवल ऐशो आराम में रहें यही हमारे जीवन का धर्म बन गया है। हमारे इन आचार विचारों के कारण आज निसर्ग भी क्रोधित हुआ है। इसलिये कितनी भी ऐहिक प्राप्ती हुयी तो भी उस प्राप्ती में यश और 'यश का अंश यानि ईश्वर' ना होने के कारण, हम जो जीवन व्यतीत करते हैं उस जीवन में सदैव अपेक्षा और उपेक्षा होती है। ऐसे जीवन को 'जीवन' नही कह सकते हैं इसलिये सूज्ञ भक्तों जागृत हो जाओ! सालों साल मनुष्य चौबीस घंटे अपना जीवन व्यर्थ खर्च कर रहा है। इन पचास सालों में किसी भी मनुष्य ने कुछ पुण्य किया होगा ऐसा नहीं लगता है। दैनंदिन जीवन में सुबह से सोने तक जुआ, क्लब, रेस आदि का हमे शौक है इसलिये आखिर में हमें 'शोक'(दुःख) करना पड़ता है। और इतना मूल्यवान जीवन प्राप्त होकर भी इस जीवन में, 'हे दत्त्प्रभु हमारी आखिर अच्छी कीजिये' यह हम नहीं कह सकते। कोई भी जीवन प्राप्त करता है, कोई भी मृत होता है ऐसा जीवन आज प्राप्त हुआ है। आज का जीवन संपूर्णतः ईश्वरवादी होना आवश्यक नही है। लेकिन जैसे अपने पेट के लिये हर एक व्यक्ति कुछ ना कुछ कमाता है

वैसे ही परिवार के हर एक व्यक्ति ने यदि सद्गुरूनामस्मरण किया तो आज की समस्या का हल होगा। नहीं तो यह जो जग हम देख रहे हैं उसकी ही हम बली लेंगे यह निर्विवाद है। पहले जमाने में परम पूज्य बाबा के समय में जब जगत् की यही अवस्था हुयी थी तब बाबा ने लोगों को उपदेश करके जगत् को सौ साल का जीवन दिया था। लेकिन "अब उसे भी बुरे दिन आए हैं और आगे भी आएंगे।" यह परमपूज्य बाबा ने सूचित किया है। तो इस जगत को अब कैसे सम्भालना इस विचार से मैं अस्वस्थ हुआ था। यह अस्वस्थता सब भक्त भी अपने जीवन में रखें और सब भक्तों का जीवन पारमार्थिक बने यह प्रार्थना मैने परमपूज्य बाबा के चरणों में की।

43. श्री शेष पंचमी,
ज्योतिष्मती अवस्था, हिरण्यगर्भ अवस्था

एक बार मुंबई में साधना सम्मेलन आयोजित किया था तब वह श्रीशेषपंचमी (नागपंचमी) का दिन था। श्री शेषजी ने मुझे संचार अवस्था की अनुभुती दी थी। बचपन में मैं जब सातारा गांव के पहाड़ पर श्रीभैरवनाथजी की सेवा करने जाता था तब वहाँ मुझे श्री शेषजी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। इस घटना के साठ साल बाद परम पूज्य श्रीसाईनाथजी की आज्ञा से श्रीशेषपंचमी के दिन, सब कार्य केन्द्र के भक्तों की नित्यसाधना में जो बदल किया गया उसका कारण यह है कि पाँच कोश और पांच प्राण एक करने की अवस्था को 'ज्योतिष्मति' अवस्था कहते हैं जो कि परमार्थ मार्ग की सर्वोच्च अवस्था है। मुझे इस अवस्था का लाभ श्रीश्रेत्र औदुंबर में प्राप्त हुआ था और इस अनुभुती का संक्रमण भक्तों के माध्यम से करने का कार्य अब कार्यान्वित होने लगा है।

आज हजारों सालों से हम मानवों की अधोगति हो रही है और जो मानव था वह अब दानव हुआ है। दैनंदिन जीवन में खाना, पीना, कपड़ा आदि सुखों की इच्छा करके हम सुखी कैसे बने यह दुःख आज समाज में है। हजारों सालों से जो सीख हमें साधुसंतो ने दी है उसे हम आज भूल गये हैं। इसलिये हम अब कभी भी सुखी नहीं हो सकते हैं सुख प्राप्ति के लिये किये अनेक प्रयत्न असफल होने के बाद हम जाग जाते हैं और उसके बाद यह विचार करने लगते हैं कि भगवान क्या कहते हैं? और साधुसंत क्या कहते हैं? ऐसे समय देवधर्म और उसके आचार विचार हमसे बहुत दूर हैं ऐसा महसूस होता है। जब हमें कुछ करना आवश्यक था वह समय हमसे छूट गया और अब हम मानवी जीवन के अलावा दानवी जीवन जीने लगे हैं। जो प्रेम सर्वाभूती यानी सब प्राणिमात्र के प्रति था वह अब केवल पैसे के प्रति है इस समय इतनी विकट परिस्थिति में हमें कौन मार्ग दिखायेगा यह प्रश्न है हम मानव दानव हो गये हैं तो भी श्री परमेश्वर नहीं बदले हैं इसलिये 'उनकी शरण में जाने से वे ही मार्ग दिखायेंगे' यह उपदेश अनेक सालों से संतो ने दिया है और इसलिये श्रीसाईबाबा ने

अवातार लिया है और जो मार्ग कठिन था उसे आसान कर दिया है। इतना ही नहीं बल्कि नवनाथों की परंपरा को भी हमारी साधना में समावेश कर दिया है। नवनाथों की परंपरा का साधना में समावेश यानि हम जो आज करते हैं: वह अनुष्ठान है। इस अनुष्ठान में श्रीआदीनाथ से श्रीसाईनाथजी तक के सिद्ध हैं। इसलिये जो अनुष्ठान हम करेंगे वह अनुष्ठान स्वर ताल लय आदि से युक्त कहने से हमें जीवन में प्रापंचिक और पारमार्थिक जीवन का लाभ होता है। आज हम साधक हैं, आगे सिद्ध होंगे और हमें इसी जन्म में साध्य प्राप्त हो इसलिये परम पूज्य श्रीसाईनाथ महाराजजी ने इस श्रीशेषपंचमी के दिन हम सबको शुभार्शीवाद दिया है।

जगत का पालन करना है तो प्रथमतःअपना विकास होना आवश्यक है और उसके लिये जो साधन समय समय पर आपको सिखाया है उसका रियाज होना आवश्यक है। क्योंकि यह साधना ईश्वर के प्रति नहीं है बल्कि उससे साधक को अपनी कितनी प्रगति हुयी है इसका अनुमान होना आवश्यक है। प्राप्त जन्म जो अविकसित था उसका विकास होना इसका मतलब यह है कि जो 'जीव' जन्म लेता है उसका स्थित्यंतर 'आत्मा' रूप में होना आवश्यक है और उसके अनुसार औरों को सीख देना आवश्यक है। हम जब गुरू आज्ञा अनुसार साधना करेंगे तब 'कारण अवस्था' यानि दीक्षा सिद्ध होगी। आपको कारण दीक्षा दी है इसका मतलब आपको प्रत्यक्ष में उस दीक्षा की पहचान करा दी है। उसके बाद साधना सात प्रकार से मतलब सात माध्यमों से करने की आज्ञा हुयी और तब यह साधना सिद्ध हुयी। सात प्रकार से साधना का एक आवर्तन तब पूर्ण हुआ। और ऐसे सात प्रकार से साधना के तीन आवर्तन के बाद 'महाकारण दीक्षा' और इक्कीस आर्वतन के बाद 'ॐ श्रीसाईनाथाय नमः' यह नामस्मरण सिद्ध हुआ। इसी साधना के क्रम से जाने से हम मानवों को ईहलोक, परलोक और स्वर्गलोक इनकी प्राप्ति होगी। इसलिये यह नित्य साधना ईश्वर के लिये ना होकर स्वयं के लिये ही है यह ध्यान रख कर साधना की ओर अधिक ध्यान दो ऐसी आप सबसे विनती है। क्योंकि इस साधना का संधान फिर' से किसी भी जन्म में प्राप्त नहीं होगा। नित्य साधना यह केवल हमारे ही लिये है फिर भी हमारी की गयी साधना का फल औरों

को प्राप्त होना आवश्यक है यह हेतु मन में रख कर हमें साधना करना आवश्यक है। 'गुरू आज्ञा है' यह साधना का बोझ लेकर कभी भी साधना नहीं करनी चाहिये। उस कारण से साधना करने से आप दुखी होंगे और परिणामस्वरूप जगत् भी दुखी होगा।

कार्य केन्द्र पर आने वाले प्रत्येक भक्त की तकलीफ समझ कर प्रत्येक भक्त के दुख का निवारण हो इसलिये निराकरण सूचित करने का कार्य यदि मैं कर रहा था तो भी मेरे मन में एक विचार सदैव था कि इस तकलीफ का निराकरण क्षणिक सुख की प्राप्ति करा देगा लेकिन भक्त के जीवन में और उसके परिवार में और परिवार की आगे की अनेक पीढ़ियों में चिरंतर सुख शांति समाधान रहे इसलिये कोई शाश्वत (यकीनन) निराकरण होना आवश्यक है। कार्य के प्रारंभ में समाज को ईश्वर चिंतन में आस्था निर्माण हो इसलिये मैंने आरती और कामकाज इन साधन माध्यमों का गुरू आज्ञा से अंगीकार किया। उसके बाद श्री श्रेत्र नरसोबाबाड़ी में प्रत्येक पूरणमासी के दिन एक इस तरह ग्यारह पूरणमासी को रूद्र हवन करके उसके बाद 'श्रीमहारूद्रस्वाहाकार' किया गया। उसके पहले पांच साल मैंने कामकाज बंद करके मेरी वैयक्तिक साधना आरंभ की थी। उस साधना का विषय अखिल विश्व को निरंतर सुख की प्राप्ति हो यह था। उसके बाद ही आप सबको सुख शांती समाधान प्राप्त हो इसलिये तीन प्रतिमाएं दी गयी।

आज भूगर्भ में जो शक्तिपीठ स्थापना किया है उसकी शक्ति का आह्वाहन श्रीश्रेत्र नरसोबाबाड़ी में जब श्रीमहारूद्र स्वहाकार किया था तब किया गया। आगे यह शक्ति गुरूरूप हो गयी और उस शक्ति में देवदेवताओं की शक्ति विलीन हुयी। तब शक्तिपीठ की स्थापना की गयी। इस आद्य शक्तिपीठ में प्रतीक–प्रतिमा–प्रतिभा यह शक्ति प्रतिष्ठापित करने के लिये पांच साल बाद गोवा कार्य केन्द्र पर नवरात्री पूजन किया गया। यह पूजन प्रतिपदा से लेकर पूरणमासी तक जारी था। ये तीन शक्ति जब एक हो गयी तब 'प्रकाश यानि हिरण्यगर्भ' अवस्था का उदय हुआ।' अब आपके पास जो तीन प्रतिमाएं हैं वे नित्य साधना से जब एकरूप होंगी तक

आपको 'प्रकाश' यह अवस्था प्राप्त होगी। उसके लिये उस विजयादशमी के (दशहरे के) दिन परम पूज्य साईनाथ महाराजजी ने सब भक्तों को यह आशीर्वाद दिया कि 'जबजगत को प्रकाश का अस्तित्व समझ आयेगा तब अंधेरा यानि अज्ञान नष्ट होगा।'

अनादिकाल से हम ईश्वर को मानते हैं और देवदेवताओं की प्रतिमाएं यानि मूर्तियां हमारे पूजन में हैं। हमारे पूर्वजों ने इन मूर्तियों की स्थापना की थी इसलिये हम उन प्रतिमाओं को देवदेवता कहते हैं वास्तव में इन प्रतिमाओं का देवत्व नष्ट हुआ है क्योंकि उसके लिये आवश्यक मंत्र, तंत्र, यंत्र इनका उच्चार हमें नहीं करना आता। यदि हमें वह उच्चार करना नहीं आया तो देव देवताओं के देवत्व का अनुभव होने में बहुत समय लगेगा और यदि यह त्रिपुटी (मंत्र, तंत्र, यंत्र ये तीनो) अवगत हो गयी तो ही देव देवताओं का प्रसाद प्राप्त होगा। आप सबके घरों में जो देव देवता हैं वे इस प्रकार है। 'देव' कहने के लिये हम में उनके प्रति भाव होना आवश्यक है। उनके प्रति केवल पूजा पाठ आदि जो हम करते हैं वह कर्म हमसे 'उपचार' स्वरूप होता है। वह कर्म कुछ इष्ट फल देगा ऐसा नहीं है। वास्तव में देव देवताओं की प्रतिमाएं और उनकी स्थापना हमारे जीवन में बोलने चालने वाली हो यानि जागृत हो यदि यह हमारी इच्छा होगी तो उसके लिये हमें तपश्चर्या करना आवश्यक है। लेकिन हम केवल पैसे देकर दुकान से देव देवताओं की मूर्ति खरीद लाते हैं इसके कारण वह मूर्ति देव देवता की नहीं हो सकती है वह केवल धातु की मूर्ति होती है इसके अलावा उसका अन्य अर्थ नहीं है यह अनुभव मैने स्वयं लिया है इसलिये कार्य के आरंभ में मैने परम पूज्य बाबा को यह प्रार्थना की कि, 'आने वाले जो भक्त है उनके घर एक तो प्रतिमा ऐसी रहे जिससे उनका जीवन सुखी होगा'। लेकिन तब यानि कार्य के आरम्भ में मुझ 'प्रतिमा' क्या है यह समझ नहीं आया था।

आज कार्य करते करते सैतीस साल हुए हैं। इस सैतीस सालों में मैने गुरूआज्ञा का जो कुछ पालन किया है, उसे कारण मैं ये तीन प्रतिमाएं आपको दे सका। इन तीन प्रतिमाओं में महाकरण प्रतिमा इस तरह की है कि इसमें हमारे गुरू और उनका गुरूतत्व है। सोना यह धातु अत्यंत सूक्ष्म

है और श्रीगुरू की कृपा सूक्ष्म तत्व में से आती है इसलिये हर एक के पास 'महाकारण' प्रतिमा का होना आवश्यक है। 'महाकारण' यह पारमार्थिक प्रतिमा है। बाकी दो प्रतिमाएं प्रापंचिक प्रतिमा है।

पहले जमाने में हमारे पूजा स्थान में देव देवता थे। उनमें एक प्रतिमा या प्रतीक (टाक) सोने का होता था। उस जमाने में लोग जो आचरण करते थे वह भावनायुक्त होता था। आज हम विज्ञानी हैं। विज्ञान में बताया गया है कि उष्णता (गरमाहट) और बिजली के माध्यम स्वरूप सोने की अत्यंत सूक्ष्म तार बनायी जाती है। इसलिये हम जो उपासना या साधना करेंगे उसके माध्यम स्वरूप यह सोने की महाकारण प्रतिमा है। आज घर घर में जो देव देवता हैं उनमें देवत्व लय हुआ है और जिसके कारण देवताचरण करके भी हमें सुख शांति प्राप्त नहीं होती है और इसलिये श्रीजगदगुरू ने अपने सामर्थ्य से ये प्रतिमा सिद्ध की है "इस प्रतिमा का अनादर ना हो इस प्रकार का आचारण सब भक्तों को करना आवश्यक है। क्योंकि यदि आज हमें उनके लाभ की प्राप्ति नहीं होती होगी तो भी आगे की पीढ़ियों को उनका निश्चित लाभ होगा" यह संदेश परम पूज्य बाबा ने दिया है।

44. गुरूमार्ग – सेवक का कर्त्तव्य

आने वाले भक्तों को उनके आत्मिक विकास के लिए मैने गुरूआज्ञा से तीन प्रतिमाएं दी और उस समय 'कामकाज' करना यह सेवा मुझे बंद करनी पड़ी लेकिन प्रश्न के लिए आने वाला भक्त जरूरतमंद होता है, वह जो तकलीफ लेकर आता है उसे वह तकलीफ ही सर्वस्व जीवन है ऐसा लगता है। ऐसे समय मैं कामकाज नहीं करता यह कह कर उसे निराश करके वापस भेजना यह भी मुझे योग्य नहीं लगता था। इसलिए परम पूज्य गुरूआज्ञा से मैं सेवक माध्यम तैयार करने लगा तथा उन सेवक माध्यमों के कारण आज भी समिति के सब केन्द्र पर भक्तभाविक पहले जैसी ही सुलभता से 'कामकाज' साधन का लाभ ले रहे हैं।

जगत् में गुरू और भक्त इनका कर्त्तव्य क्या है यह हम समझ नहीं पाते हैं और उसके कारण अनेक भक्त गुरूमार्गी होकर भी इस मार्ग से वंचित होते हैं क्योंकि यह जो हमारा जन्म है उसमें गुरू का स्थान देव देवताओं से बढ़ कर है। हम अनेक जन्म लेकर इस जगत् में सुख दुख के हिस्सेदार बन जाते हैं और उससे अपनी मुक्तता कैसे करा लेनी है यह ना समझने के कारण फिर से जन्म और फिर से मृत्यु यह चक्र सदैव जारी रहता है। ऐसे समय पश्चाताप हो जाने के बाद, किसी जन्म में हमसे हुए सत्कर्म के कारण इस जन्म में हमारा फिर से श्रीगुरू से मिलाप होता है। श्रीगुरू से यह मिलना सुख का उपभोग लेने के लिए ना होकर जो जन्म हमें प्राप्त हुआ है उससे अधिक अच्छा जन्म प्राप्त हो, या फिर जन्म प्राप्त ही ना हो इसके प्रबंध के लिए ही इस जन्म में गुरू से मिलाप होता है। सामान्यतः हम इस जगत् में घूमते फिरते रहते हैं इसलिए औरों के सुख को देख कर हर किसी को यह इच्छा होती है कि औरों को जो सुख प्राप्त हुआ है ऐसा हमें नजर आता है वैसा सुख हमें भी प्राप्त हो इसलिए हम गुरू का शोध (खोज) करते हैं। लेकिन इस जगत् में जन्म लेकर हमारा कर्त्तव्य क्या है यह हम भूल जाते हैं। इसलिए श्रीगुरू हमें जो हमारे जन्म का कारण बताते हैं, उसकी ओर ध्यान देकर उस प्रकार हमारा आचरण होना आवश्यक है। श्रीगुरू जो बताते हैं, वह ध्यान से विचारों में लेकर उस

पर ध्यान देकर विचार करना आवश्यक है क्योंकि श्रीगुरू से मिलाप बार बार नहीं होता है। हम जो अनेक जन्म लेते हैं उसमें के किसी एक जन्म में गुरू से मिलाप का प्रबंध होता है और उसके कारण इस जन्म में किसी तकलीफ या विपत्ति के कारण, मतलब उसके निमित्त से हमसे श्रीगुरू का मिलाप होता है। श्रीगुरू से यह मिलना अत्यंत अनमोल (मूल्यवान) है यह हम भूल जाते हैं जिसके कारण बहुत से लोग यह समझते हैं कि गुरूमार्ग यह अधिक सुख प्राप्त करने का मार्ग है।

हम सब विपत्तियाँ, तकलीफें लेकर जब श्रीगुरू के पास आते हैं तब श्रीगुरू ने हमें जो आशीर्वाद दिया होता है वह आशीर्वाद जतन करके उसको दुगुना करना यह हम भक्तों का कर्त्तव्य है क्योंकि यह आशीर्वाद केवल हमारे ही लिए पर्याप्त ना होकर हमारे घराने की अनेक पीढ़ीयों के लिए पर्याप्त होता है लेकिन वह आशीर्वाद दुगुना कर लेने के बजाय मन में उस आशीर्वाद के प्रति आशंकाएँ निर्माण करके उस आशीर्वाद के प्रति श्रद्धा और सबूरी ना रख कर हम 'यह क्यों, यह किसलिए' आदि अनेक प्रश्न जीवन में निर्माण करते हैं। इसके कारण श्रीगुरू के प्रति सौ प्रतिशत श्रद्धा का सर्मपण ना होकर उसके बजाय अश्रद्धा निर्माण होती है और उसके कारण श्रीगुरू के आशीर्वाद से हमारी एक तकलीफ दूर हो गई तो भी हमारे जीवन में दूसरी तकलीफ आ जाती है। एक बार श्रीगुरू ने हमें जीवन मे कैसे जीना, कैसे बोलना, कैसे आचरण करना आदि सिखाने के बाद बार बार उनसे प्रश्न पूछते रहने से हम श्रीगुरू के दिए आशीर्वाद को खो देते हैं और समय समय पर गुरू से मिलना मिलाप हुआ या नहीं हुआ तो भी उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया ही है यह हम निश्चित रीति में भूल जाते हैं इसलिए भक्त की श्रद्धा श्रीगुरू के आशीर्वाद के प्रति है या श्रीगुरू से मिलाप के प्रति है यह प्रश्न निर्माण होता है।

इस जगत् मे श्रीगुरू का कार्य जगत् के कल्याण के लिए ही है। उसमें द्वैतभाव या वैरभाव हो ही नही सकता है। इस कार्य के जन्म के लिए श्रीगुरू को अनेक जन्म लेकर उन प्रत्येक जन्म में दीर्घ तपश्चर्या (तपस्या) करना आवश्यक होता है। किए गए उस तपश्चर्या (तपस्या) के कारण

श्रीगुरू इस जगत् को सुलभ मार्ग की सीख देते हैं। उनकी इस सीख के पीछे या उनके आशीर्वाद के पीछे उनके अनेक जन्मों का पुण्य होता है यह हमें ध्यान में रखना आवश्यक है। गुरू का जीवन और हमारा जीवन समान लगा तो भी हमारे जीवन में और गुरू के जीवन में जमीन आसमान का अंतर होता है।

गुरूकार्य में जो आशीर्वाद प्राप्त होता है वह भक्तों को एक ही बार प्राप्त होता है लेकिन उस आशीर्वाद की, 'साक्ष' करके श्रीगुरू समय समय पर भक्त को दर्शन देकर उसे जो आशीर्वाद दिया है वह वे अपनी इच्छा से साकार करते हैं। ऐसे समय गुरू से मिलना, मिलाप हो ऐसा हठ योग्य नहीं है। इसलिए गुरूभक्तों को मन में आशंकाएं निर्माण ना करके गुरूमार्गी होना यही हम सबके लिए हितकर है। श्रीगुरू और गुरूभक्त इनमे सदैव लेन देन जारी रहता है। इसलिए गुरू से मिलना, मिलाप से हमें क्या प्राप्त हुआ, क्या प्राप्त नहीं हुआ यह भक्तों को स्वयं मुमुक्षु होकर देखना आवश्यक है। उससे इस जगत् में जो सुख नहीं है वह सुख श्रीगुरू ने मुझे दिया है यह बाद मे समझ आएगा। श्रीगुरू और गुरूभक्त इनका जीवन संगम होता रहता है। इस संगम में हमें औरों को नहलाना यह हमारा आद्य कर्त्तव्य है। इस संगम में हमें अपने गलत आचार विचारों से गंदगी नहीं निर्माण करना चाहिए तभी जन्म लेकर जन्म का क्या अर्थ है यह हम समझ पायेंगे और इसका लाभ को दे सकेंगे नहीं तो जन्म लिया और चला गया इतना ही जीवन का अर्थ रहेगा।

उपरोक्त विचार मेरे मन में आए क्योंकि मैने गुरूआज्ञा से किसी कारण के अनुसार मेरा कार्य केन्द्र का कामकाज बंद करके उसके लिए सेवक माध्यमों को नियुक्त किया था तब कुछ भक्तों के मन में यह आशंका आई कि, 'क्या दादा अब हमें कभी भी नहीं मिलेंगे' ? लेकिन मैं अत्यंत निष्ठापूर्वक गुरू आज्ञा का पालन कर रहा था और "तुम्हें जगत् का पालन करना है" यह गुरू आज्ञा होने के बाद उसके लिए कोई निश्चित साधन का अवलंब करना, यह मेरे लिए आवश्यक था। जगत् के पालन के लिए जब हिरण्यगर्भ शक्ति को शक्तिपीठ में प्रतिष्ठापित होने के लिए आवाहन

किया गया तब इस शक्ति को सामान्य जनों में प्रवाहित होकर उससे भक्तों के परिवार का अनेक पीढीयों तक कल्याण हो इसलिए शक्तिपीठ की प्रतिमाएं क्रमानुसार सिद्ध करके भक्तों को दी गई। प्रत्येक प्रतिमा सिद्ध होने के पहले भक्तों को जो दीक्षा देनी थी उसके लिए प्रथमतः मुझे वैयक्तिक साधना करना आवश्यक था। इसका अर्थ मैं भक्तों से मिलना नहीं चाहता हूँ यह नहीं था। आज घर घर में जो प्रतिमाएं सुख आसनस्थ है और उनके लिए अब इस समय आप भक्तों को कोई बंधन नहीं है इसलिए उस समय अधिक शास्त्र शुद्ध बंधन का अंगीकार करना मेरे लिए आवश्यक था इसलिए मैने कामकाज बंद करके सेवक माध्यम तैयार किए।

सेवक का कर्त्तव्य क्या है? इसका विचार करना आज अत्यंत आवश्यक है। कार्य के लिए जो कोई भक्त मार्गदर्शन लेने आते हैं सेवकों को उन्हे योग्य मार्ग से कार्य की पहचान करा देना आवश्यक है। इस समय 'आने वाला भक्त यहाँ नया है और मैं पुराना हूँ' इस भेद का विचार करना गलत है। यहां आने वाला भक्त पहले हमसे मिलने नहीं आता है बल्कि वह ईश्वर से मिलने आता है और अब यहां आने के पहले उसके हाथों कुछ ना कुछ ईश्वर की सेवा जरूर हुई है। इसलिए अब केवल उसे योग्य दिशा से ले जाना इतना ही हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन हम हमेशा उसके साथ इस तरह का बर्ताव करते हैं, जैसे हमें सब प्राप्त हुआ है। वास्तव में आने वाले नये भक्त की जितनी श्रद्धा होती है उतनी हमारी श्रद्धा नहीं होती है। ईश्वर के प्रति हमारी श्रद्धा यदि है तो उसकी साक्ष हमारे आचरण से और उच्चारों से स्पष्ट होना आवश्यक है। अगर हम, 'तुम्हारा–तेरा' यह कहते हैं तो इसका यही अर्थ है कि हमारा विकास 'शून्य' है। फिर हमारी प्रगति कैसे होगी यह प्रश्न प्रमुखता से हमारे सामने है। और उसका विचार करना आवश्यक है। इतने साल गुरूमार्ग में रह कर भी यदि हमारा योग्य विकास नहीं हुआ है तो उससे गुरूमार्ग को दोष लग सकता है।

आज अनेक सालों से मैने यह कार्य जतन किया है उसकी साक्ष(प्रचिती) यह है कि यहाँ सब भक्त श्रद्धा से आते हैं। अपना दुख यहां

निश्चित निवारण होगा इतना आत्मविश्वास उन्हें इस कार्य के प्रति है, जितना विश्वास उन्हे ईश्वर के प्रति भी नहीं है। इसलिए उनकी यह श्रद्धा बढ़े इस प्रकार सब सेवकों का आचरण होना आवश्यक है। केवल कामकाज, आरती, साधना करना यानि 'सेवक है' यह सच नहीं है। संतों ने 'सेवक' की यह व्याख्या की है कि 'सेवक के आचार विचार मक्खन से भी मुलायम होना आवश्यक है, दुखी कष्टी लोगों को अपना कहना, अपनापन देना यह हमारा ब्रीद (व्रत) है और इसका केवल उच्चार उपयोगी नही है। इस प्रकार आचरण होना आवश्यक है। तुम्हें अब कोई साधना सिद्ध नहीं करनी है, बल्कि जो साधना सिद्ध है उसका लाभ औरों को करा देना है और यह होने के लिए अपने आचरण में अपनापन और ममता रखना यही साधना आज सेवको के लिए है वरना बाह्य जगत् और जिन्हें गुरू का लाभ प्राप्त हुआ है ऐसे तुम, इनमें क्या अंतर होगा ? यह विचार सदैव चिंतन में रखना आवश्यक है। बाहर का जगत् अज्ञानी है और इसके कारण उसके हाथों पाप हो रहे हैं, लेकिन गुरू ने तुम्हे सज्ञान किया है और फिर भी तुम्हारा आचरण अयोग्य हुआ तो उसके लिए किसी भी गुरूमार्ग में विमोचन नहीं है। अब तुम जो कर्म कर रहे हो उसका ज्ञान श्रीगुरू ने तुम्हें दिया है और फिर भी यदि तुमने फिर से अयोग्य बर्ताव किया तो तुम्हें तुम्हारा कर्म भुगतना पड़ेगा। इसलिए सेवक अवस्था अत्यंत महीन (delicate) अवस्था है वह 'सूली पर की रोटी' है यह समझकर 'सबको सुखी करना' यही अब तुम्हारा कर्त्तव्य है यह तुम्हें जान लेना आवश्यक है, यह ईश्वर की इच्छा है। इसका अर्थ यह है कि तुम्हें गुरूमार्ग में स्वयं को संपूर्णतः विलीन कर देना आवश्यक है, अंशमात्र भी बाकी नहीं रहना चाहिए और यह जिम्मेदारी केवल मेरे अकेले की नहीं है बल्कि आप सबकी है यह कभी भी भूलना नहीं चाहिए।

निश्चित निवारण होगा इतना आत्मविश्वास उन्हें इस कार्य के प्रति है, जितना विश्वास उन्हे ईश्वर के प्रति भी नहीं है। इसलिए उनकी यह श्रद्धा बढ़े इस प्रकार सब सेवकों का आचरण होना आवश्यक है। केवल कामकाज, आरती, साधना करना यानि 'सेवक है' यह सच नहीं है। संतों ने 'सेवक' की यह व्याख्या की है कि'सेवक के आचार विचार मक्खन से भी मुलायम होना आवश्यक है, दुखी कष्टी लोगों को अपना कहना, अपनापन देना यह हमारा ब्रीद (व्रत) है और इसका केवल उच्चार उपयोगी नही है। इस प्रकार आचरण होना आवश्यक है। तुम्हें अब कोई साधना सिद्ध नहीं करनी है, बल्कि जो साधना सिद्ध है उसका लाभ औरों को करा देना है और यह होने के लिए अपने आचरण में अपनापन और ममता रखना यही साधना आज सेवको के लिए है वरना बाह्य जगत् और जिन्हें गुरू का लाभ प्राप्त हुआ है ऐसे तुम, इनमें क्या अंतर होगा ? यह विचार सदैव चिंतन में रखना आवश्यक है। बाहर का जगत् अज्ञानी है और इसके कारण उसके हाथों पाप हो रहे हैं, लेकिन गुरू ने तुम्हे सज्ञान किया है और फिर भी तुम्हारा आचरण अयोग्य हुआ तो उसके लिए किसी भी गुरूमार्ग में विमोचन नहीं है। अब तुम जो कर्म कर रहे हो उसका ज्ञान श्रीगुरू ने तुम्हें दिया है और फिर भी यदि तुमने फिर से अयोग्य बर्ताव किया तो तुम्हें तुम्हारा कर्म भुगतना पड़ेगा। इसलिए सेवक अवस्था अत्यंत महीन (delicate) अवस्था है वह 'सूली पर की रोटी' है यह समझकर 'सबको सुखी करना' यही अब तुम्हारा कर्त्तव्य है यह तुम्हें जान लेना आवश्यक है, यह ईश्वर की इच्छा है। इसका अर्थ यह है कि तुम्हें गुरूमार्ग में स्वयं को संपूर्णतः विलीन कर देना आवश्यक है, अंशमात्र भी बाकी नहीं रहना चाहिए और यह जिम्मेदारी केवल मेरे अकेले की नहीं है बल्कि आप सबकी है यह कभी भी भूलना नहीं चाहिए।

45. कुलधर्म – कुलाचार

आज जगत् में प्रत्येक मानव को इहजन्म में सुख शांती समाधान की कमी है। भौतिक आविष्कारों से जो प्रगति हुई है वह विज्ञान की प्रगति हुई है लेकिन मानवी जीवन की प्रगति नहीं हुई है। मानवी जीवन की प्रगति होने के बजाय मानवी जीवन गतिमान हुआ है और यह जीवन सुख के अभाव में दुखी हुआ है। इसके कारण हर कोई प्रयत्न कर रहा है कि सुख शांती कब प्राप्त होगी ? लेकिन केवल इतना विचार करने से या उसके बारे में वैज्ञानिकों से पूछने से नहीं चलेगा क्योंकि हम मानवों का गणित जन्म से ही गलत हुआ है। पिछले सौ सालों से हमारी अधोगति ही हो रही है और आज यह परिस्थिति आई है कि अब हम मानवों का क्या होगा ? वैज्ञानिक चांद पर गए लेकिन अब तक स्वयं का शोध नहीं कर सके। जब हम ही हमारा शोध करेंगे तभी सुख है या नही यह समझ आएगा क्योंकि सुखों के पीछे हमारे संस्कार होते हैं। आज के जगत् में विधि पूर्वक संस्कार नहीं किए जाते, आज संस्कार केवल दिखावे की (fashionable) विधि हुए हैं। जन्म के बाद हम मानवों के नामकरण से बारहवां दिन उदित नहीं होता बल्कि मरणोत्तर बारहवें दिन को श्राद्ध विधि करनी पड़ती है। इसलिए यदि हमें सुख की इच्छा है तो भी हमें सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसके बाद हमारी बुद्धि जागृत होती है कि सबको सुख प्राप्त हुआ है लेकिन मुझे सुख प्राप्त नहीं हुआ है। फिर हम शोध करते हैं। जन्म के बाद जो संस्कार किए जाते हैं उन संस्कारों पर भरोसा रखना यह समाज में 'कमी' का लक्षण माना जाता है। इसलिए हम उन संस्कारों को टालते रहते हैं और उसके कारण आखिर हमारा जीवन बेताल बन जाता है (व्यर्थ होता है) ऐसे समय किसे जाकर मिले, और निश्चित मार्ग कौन बताएगा ऐसे संभ्रम में हम रहते हैं। ऐसी संभ्रमित अवस्था में सब मानवों को मार्गदर्शन करने के सद्हेतु और परम पूज्य बाबा की आज्ञा से मुझे 'गुरूप्रसाद' यह बहुमोल ग्रंथ लिखने का भाग्य आज से बारह साल पहले प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ में आज के जगत् की आवश्यकता और अगली पीढ़ीयों को निश्चित मार्ग समझाना इसलिए योग्य मार्गदर्शन किया गया है। गतकाल मे हमारे पूर्वज क्या करते थे और हमें अब क्या करना चाहिए

यह समझ लेकर आनेवाले समय में और हमारे वंश के उद्धार के लिए हमें क्या कर्त्तव्य करना आवश्यक है इसका आस्था पूर्वक विचार करना हमारा कर्त्तव्य है। 'गुरूप्रसाद' यानि 'गुरू की देन' यानि प्रत्येक परिवार में जतन करने के लिए आवश्यक ऐसी यह आधुनिक गीता है। परम पूज्य बाबा की आज्ञा से सद्‌गुरू की लेखनी से जगत् के कल्याण के लिए और आगे आनेवाली पीढ़ीयों को सज्ञान करने के लिए मेरे हाथों इस बहुमूल्य ग्रंथ का लेखन हुआ इससे अधिक पुण्य क्या होगा ?

हर साल चैत्र महीने से फाल्गुन महीने तक घराने में क्या कुलधर्म और कुलाचार करना चाहिए यह सवाल आज आप सबके सामने है। वास्तव में गुरूमार्गी होने के बाद जो मार्गदर्शन श्रीगुरू करते हैं उसे नम्रता से स्वीकार कर उसके अनुसार आचरण करना यह कुलधर्म और कुलाचार है लेकिन हम उसके अनुसार आचरण नहीं करते हैं बल्कि कुछ अलग तरीके से बर्ताव करना यानि गुरूमार्ग, यह गुरूमार्ग का अर्थ लगाकर हम औरों को वह अर्थ दिखाते है। लेकिन यह अर्थ, अनर्थ की नींव है यह हमें भूलना नहीं चाहिए। अब आपको जो तीन प्रतिमाएं सिद्ध करके दी हैं उन प्रतिमाओं की सिद्धता आप पर ही निर्भर हैं। भक्त का कल्याण हो यह श्रीगुरू की इच्छा होने के कारण श्रीगुरू हमें आसान से आसान सेवा करने को कहते हैं लेकिन वह नजर अंदाज करके हम उन्हें यह सवाल पूछते रहते हैं कि हमें सुख क्यूं नही प्राप्त होता ? इसका जवाब आपके प्रश्न करने पर निर्भर नहीं है बल्कि इसका जवाब यह है कि, आप गुरूमार्ग का अपमान करते हैं इसलिए आपको सुख प्राप्त नहीं होता है'। यह उसका जवाब है।

हर एक व्यक्ति को जन्म लेने के बाद अपने घराने की जो कुलदेव देवता हैं उनके प्रति कुलधर्म और कुलाचार करना आवश्यक है। यदि प्रत्येक पीढ़ी में यह कुलधर्म कुलाचार किया गया तो किसी के हिस्से दुख नहीं आता। हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए यह सुविधा की थी कि जो देव देवता हैं उनके प्रति प्रत्येक पीढ़ी में कम से कम एक लघुरूद्र और एक नवचंडि का हवन करना आवश्यक है जिससे ये देवताएं सिद्ध होंगे। उसी

प्रकार दान धर्म और 'परोपकार' करना भी आवश्यक है जिससे सुख शांती समाधान निरंतर रहेगा।

आज हमें ईश्वर की चाहत नहीं है। दुख होने के बाद हम ईश्वर को आवाज देते हैं लेकिन हमें उनसे जवाब नहीं मिलता है क्योंकि ईश्वर को मानना (ईश्वर पर भरोसा रखना) यह धर्म हम भूल गये हैं। इसलिए आज जगत् में अशांती है। यह सब विचार करके परम पूज्य साईबाबा ने आनेवाली पीढ़ीयों का भविष्य जानकर मुझे आज्ञा देकर मेरा कामकाज बंद करवाकर यह बताया कि, " 'जगत्' को सुख देने की अपेक्षा सुख का मार्ग बताओ।" उसके अनुसार आप भक्तों का वंशविमोचन करके और आपको दीक्षा देकर आपके घराने में पीढ़ी दर पीढ़ी रहे दोषों का कीचड़ साफ किया गया इसलिए आज आप यहाँ उपस्थित हैं। नहीं तो औरों जैसे विचार रखने से हमें देश से फरार होना पड़ता। मैंने जो कामकाज बंद किया वह मुझे आराम की आवश्यकता थी, इसलिए नही, बल्कि आप भक्तों को सुख शांती समाधान का लाभ प्राप्त हो इसलिए आपको जो आशीर्वाद देना आवश्यक था उसकी सिद्धता करने के लिए मैं कामकाज बंद करके बारह साल तक मार्गदर्शन के अनुसार अविरत साधना कर रहा था यह साधना किसी विशिष्ट स्थान पर ही सिद्ध होगी ऐसा ना होकर उस साधना की सिद्धता के लिए स्थल, काल समय इनका सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर यह कार्य सिद्ध करना आवश्यक था। यह सिद्धता करने के बाद आपको दी गयी तीन प्रतिमाओं का एकरूपत्व किया गया है। यह तीन प्रतिमाओं का एकरूपत्व बिना मांगे आपको प्राप्त हुआ 'प्रत्यक्ष ईश्वर का आगमन' या 'ईश्वर दर्शन' है। इस ईश्वर दर्शन के लिए यदि आपने जन्म–जन्म सेवा की होती तो भी आपको इस भाग्य की प्राप्ति नहीं हो सकती थी। इसलिए हर साल जो कुलधर्म कुलाचार करना होता है वह किस प्रकार करें यह सवाल ही अब बाकी नहीं रहा है। आप जब गुरूआज्ञानुसार आचार विचार रखेंगे तभी कुलधर्म कुलाचार होगा।

प्रत्येक घराने में प्रत्येक पीढ़ी में हर एक ने एक लघुरूद्र और एक नवचंडिका हवन कराना आवश्यक है तब, हम यह कहते हैं कि यह

विधि करने के लिए हमारे पास पैसे नहीं है फिर भी यह दिखाई देता है कि ऐशो आराम के लिए सबके पास पैसे हैं। वैसे ही ब्राह्मण सुहासिनी को भोजन देने की अपेक्षा इष्ट मित्रों को आमंत्रित करके उनके साथ हम जो आहार बिगाड़ते हैं उसके प्रति सावधानी नहीं रखते हैं। उसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने हमें जन्म दिया है उनका ऋण चुकाने के लिए तीर्थ क्षेत्र जाकर दानधर्म करने के लिए हमारे पास पैसा नहीं है, ऐसा बहाना हम करते हैं लेकिन हर महीने नाटक सिनेमा के लिए हमारा कितना पैसा खर्च होता है यह विचार हम सूज्ञता से नहीं करते हैं। जो प्रतिमाएं आपको दी हैं उनके लिए कुलधर्म कुलाचार करके कोई भी उपचार करना अब बाकी नही है। प्रतिदिन ॐकार साधना या सद्‌गुरूनामस्मरण या श्रीनवनाथ अनुष्ठान इनमें से एक भी आपने किया तो आपको इन प्रतिमाओं की सिद्धता का अनुभव होगा। केवल प्रतिमाओं को स्वीकार करने से हमें उनका लाभ प्राप्त होगा ऐसा नहीं है, बल्कि जब हम 'लोभ' का त्याग करेंगे तभी हमें 'लाभ' याने 'ईश्वर की कृपा' प्राप्त होगी।

गुरूमार्ग में जो गुरूमार्गी होते हैं उनका योगक्षेम श्रीगुरू चलाते हैं। शास्त्रों में, शास्त्र मीमांसा अनुसार, घराने की प्रत्येक पीढ़ी में कुलधर्म कुलाचार के लिए एक लघुरूद्र और एक नवचंडिका हवन करना बताया है तो भी श्रीगुरूकृपा से श्रीक्षेत्र नरसोबाबाड़ी में जो महारूद्र स्वाहाकार किया गया और उसकी सांगता के कारण जो प्रसाद यानि जो प्रतिमाएं हमें प्राप्त हुई हैं उनके लिए कुलधर्म कुलाचार करने के लिए अब कोई विधि बाकी नहीं रही है। इसके अलावा आप भक्तों का कर्त्तव्य क्या है यह प्रश्न श्रीगुरू ने सुलझाया है। आप भक्तों ने सहानुभूति से श्रीसाई स्वाध्याय मंडल की स्थापना की है हर साल आप अपनी हैसियत के मुताबिक जो कुलधर्म कुलाचार करते थे उसके लिए निश्चित की रकम यदि आपने अपनी इच्छा से श्रीसाई स्वाध्याय मंडल में जमा की तो उसका लाभ जगत् में जो दुखी लोग हैं उन्हें मद्द करने के लिए कर सकेंगे। इसी तरह उन पैसों का उपयोग इष्ट कार्य होने के लिए होकर उस कार्य से आपको और आपके परिवारवालों को जो आशीर्वाद प्राप्त होगा उससे अधिक पुण्य क्या है यह सुविचार आप सूज्ञ भक्तों को करना आवश्यक है। समिति का जो

कार्य परम पूज्य जगद्‌गुरू श्रीसाईनाथ महाराजजी ने स्थापन किया है उस कार्य में हाथ बंटाने का कर्त्तव्य आपके हाथों होता रहे यह परम पूज्य बाबा के चरणों में प्रार्थना।

प्रत्येक परिवार में करने के कुलधर्म कुलाचार इसका स्पष्टीकरण यदि मैंने किया है तो भी आप सबको पूजन के लिए दी गई श्रीसाईशक, श्रीकारण, श्रीमहाकारण और श्रीनारायणी इन प्रतिमाओं के संबंधित विवेचन मैने जानबूझकर बाकी रखा था। लेकिन आप सज्ञान होकर सद्‌गुरू की इस अनमोल भेंट का स्वागत करें इसलिए मैं अब प्रतिमाओं के संबंध में लिख रहा हूँ !

46. प्रतिमा श्रीसाईशक (ज्ञान), श्रीकारण (भक्ति), श्रीमहाकारण (सेवा), श्रीनारायणी (जीवन सार्थकता)

कार्य के आरंभ में जो भक्त मुझे मिलने आते थे वे अपने जन्म का कारण नहीं जानते थे बल्कि आज भी सब भक्त वह नहीं जानते हैं, इसलिए जीवन के दुखों का कारण अज्ञान है। भक्त 'केवल हम दुखी हैं' इस कारण से, कार्य के लिए यहां आए। उस समय जो मार्गदर्शन हुआ उसमें दो भाग थे (1) दुख का कारण क्या है यानि निराकरण और (2) वह दुख दूर कैसे होगा ? यानि निवारण। इन दो मार्गो में सेवा यह तीसरा मार्ग है। इस मार्ग से जाने के लिए ज्ञान और भक्ति आवश्यक है। केवल 'ईश्वर है' यह कहकर उनका भजन करना गलत है। इसलिए जिस तरह दुख के कारण के लिए निवारण बताया है उस प्रकार जिसे हम सेवा कहते हैं उसका क्या अर्थ है यह भक्तों को समझना आवश्यक है। इसलिए सम्मेलन आयोजित किये गए। सेवा यह दो अक्षरो का शब्द है लेकिन अभी तक उसका अर्थ मालूम नहीं हुआ है और नहीं होगा। ऐसी यह सेवा और उसका अध्ययन मैं गुरूआज्ञा से निरंतर कर रहा था। उसमें प्रमुखतः ॐकार साधना और गुरूनामस्मरण ये सिद्ध हुए और भविष्य में किसी को भी कष्ट ना उठाने पड़े ऐसा आसान मार्ग सिद्ध करके उसकी सांगता उन्नीस सौ सत्तासी (1987) दीपावली के पाड़वा यानि बली प्रतिपदा के दिन गोवा में हुई। इस गुरूकार्य का वृक्ष बड़ा है लेकिन उसका फल यानि सांगता आम जैसा मधुर है। फल बहुत मधुर हो इसलिए कार्य सिकुड़ा (संकुचित) हुआ नहीं है। इस कार्य की सांगता का प्रतीक चार प्रतिमाओं के स्वरूप में आज आप सब भक्तों के घर में सुख से स्थित है। इसी में सर्व मानवी जीवन का सार्थकता है। इन तीन प्रतिमाओं के रूप में ज्ञान (श्रीसाईशक), भक्ति (श्रीकारण), और सेवा (श्रीमहाकारण), प्रत्येक भक्त के हृदय मे रहेंगे और इससे उनकी जो जीवन सार्थकता होगी वही नारायणी यानि चौथी प्रतिमा है, और उस समय भक्त के माध्यम से ये अमृत बोल घर घर में सुनाई देंगे कि 'हे ईश्वर मुझे यही दान दीजिए कि हम कभी आपको भूल न जायें '।

आप भक्तों के घर में पूजन के लिए जो देवदेवता हैं और जिनका पूजन आप सब भक्त करते हैं उनके संबंध में विस्तारपूर्वक मार्गदर्शन किया गया है। उस समय श्रीजगद्गुरू साईनाथ महाराजजी की यह आज्ञा हुई कि जो कोई मेरा भक्त होगा उसे पूजन के लिए तीन प्रतिमा लेना आवश्यक है। इन तीन प्रतिमाओं में सिद्ध किया जो तत्व है वह नवनाथादि परंपरा से है और उसका लाभ कैसे होगा तो 'जिसके मन में जैसा भाव होगा उसे वैसा अनुभव प्राप्त होगा' !

ये प्रतिमाएं लेने के लिए आपपर जोरजबरदस्ती करके आपको ये प्रतिमाएं लेने के लिए नहीं कहा गया है और भविष्य में भी नहीं कहा जाएगा। ईश्वर की कृपा से मुझे जो प्राप्त हुआ है उसकी प्राप्ति सबको हो यह मेरी इच्छा है इसलिए दीपावली को जब प्रतिमा देने का कार्य सिद्ध हुआ तभी आपको प्रतिमा दी गई। जीवन की बाधाएं, तकलीफें कभी समाप्त नहीं होती हैं। हमारा जीवन समाप्त होगा फिर भी तकलीफें बाकी रहेगीं। वे तकलीफें बाकी ना रहें इसलिए हम ईश्वर की शरण जाते हैं लेकिन उसकी अपेक्षा नित्य की प्रार्थना और इन प्रतिमाओं का पूजन महत्वपूर्ण है। सोना पीले रंग का है इसलिए हम मूल्यवान मानते है लेकिन जिस परिवार में प्रतिमाएं हैं वह परिवार जगत् में अधिक सुशोभित होगा यह मेरा विश्वास है। इसलिए आप भक्तों को यह प्रतिसाद प्राप्त होगा कि–'जिस जिस स्थान पर मेरा मन जाता है उन स्थानोंपर आपका रूप है। मैं जहाँ माथा रख कर प्रणाम करता हूँ वहाँ हे सद्गुरू आपके दो चरण हैं '।

अब इसका आस्थापूर्वक विचार करना आवश्यक है कि आप भक्तों को जो तीन प्रतिमाएं दी गई हैं, वे प्रतिमाएं यानि क्या हैं, उन प्रतिमाओं के पीछे क्या परंपरा है ? वे प्रतिमाएं सोने चांदी की क्यों बनाई है ? प्रत्येक भक्त के पूजास्थान मे देवदेवताओं की मूर्ति और प्रतीक (ताक) होकर भी उन्हें पूजन के लिए ये प्रतिमाएं क्यों दी हैं ? इन प्रश्नों के जवाब इस प्रकार है –

कार्य के आरंभ में भारत यात्रा करके मैने अनेक तीर्थ क्षेत्र और मंदिर देखे, और वैसे ही भक्तों के घर की देव देवताओं की मूर्तियां और प्रतिमाएं

देखी तब मुझे यह अनुभव हुआ कि इन देव देवताओं के प्रतीक में देवत्व बाकी नहीं बचा है। इसलिए आज देवतार्चन करके उनके लिए जो पूजा विधि होती है वह केवल रूढ़ी परंपरा से किया गया अनुकरण और औपचार ही होने के कारण उस देवतार्चन से जो सुख शांती समाधान प्राप्त होना आवश्यक है वह प्राप्त नहीं होता है। इसके कारण आज प्रत्येक मनुष्य किसी ना किसी दुख से पीड़ित और त्रस्त है। इस परिस्थिति का अनुभव होने के बाद मैने परम पूज्य बाबा से यह प्रार्थना की कि, 'इन दुखी लोगों को निश्चित मार्ग और सेवा बताना आवश्यक है जिससे वे सुखी होंगे, यह प्रसाद आप मुझे दीजिए'। तब परम पूज्य बाबा ने मुझे कहा कि' मैं तुम्हारी बेचैनी समझता हूँ लेकिन जब इसके लिये योग्य समय आएगा तब उन्हें क्या कहना है यह मैं तुम्हें बताऊंगा। तब तक तुम्हें बताए गए मार्ग के अनुसार मार्गदर्शन करते रहो '। उसके अनुसार मै आज सैतीस साल से यह कार्य कर रहा हूँ।

परमपूज्य बाबा की आज्ञा के अनुसार आप भक्तों को प्रथमतः जो तीन प्रतिमाएं दी गई उनमें पहली प्रतिमा श्रीसाईशक प्रतिमा, दूसरी प्रतिमा श्रीकारण प्रतिमा और तीसरी प्रतिमा श्रीमहाकारण प्रतिमा है।

<u>श्रीसाईशक प्रतिमा–</u>

यह प्रतिमा देने के पहले आप भक्तों को पांच दीक्षा यानि क्रमशः उपासना दीक्षा, नामस्मरण दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा, गुरू दीक्षा और कारण दीक्षा देकर आपसे सद्गुरूनामस्मरण करवाया और उसके अनुसार आप वह कर रहे हैं। यह सद्गुरूनामस्मरण मैने जीवन के आरंभ से आज तक किया, जिससे वह नामस्मरण आज सिद्ध है। उस नामस्मरण की सिद्धता आपको और आपकी भावी पीढ़ियों को हितकारक हो इसलिए उस नामस्मरण का प्रतीक यह श्रीसाईशक प्रतिमा है। इसके अलावा इस प्रतिमा का यह भी लाभ है कि आपके परिवार में पिछली सात पीढ़ियों में जिन कोई व्यक्तियों ने 'गुरू' लाभ नहीं लिया होगा उन्हें भी इस प्रतिमा से पुण्य का लाभ होगा। और भविष्य में आपकी अगली पीढ़ियों का प्रबंध भी इस प्रतिमा में किया है। आने वाले काल में योग्य गुरू और उनका

मार्गदर्शन नहीं होगा इसलिए वह प्रबंध भी इस प्रतिमा में किया है और भावी पीढ़ियों को केवल सद्‌गुरूनामस्मरण यानि 'ॐ श्री साईनाथाय नमः' कहने से इष्ट सुख शांती समाधान आसानी से प्राप्त होगा। आप सबके लिए इतना सुलभ मार्ग श्रीगुरूकृपा से सिद्ध किया है।

श्रीकारण प्रतिमा–

इस प्रतिमा का संबंध घराने के दिवंगत व्यक्तियों से है। धराने की पिछली सात पीढ़ियों में जो कोई धर्माचरण नहीं कर सके और जिनके हाथों ज्ञान अज्ञान से पातक प्रमाद हो गए और उसके कारण उन मृत व्यक्तियों की इच्छा वासनाएं बाकी रहने के कारण उनसे आपको तकलीफ होती है, जैसे परिवार में विद्यानाश, संपत्ति नाश और संतति नाश ये प्रमुखतः तीन दोष होते हैं। इन दोषों का परिमार्जन किए बिना भावी पीढ़ियों को विद्या, संपत्ति और संतति इनका लाभ नहीं होता। इसलिए परम पूज्य बाबा के आशीर्वाद से जो कुछ विधि की गई उनमें प्रमुखतः वंशविमोचन, कर्मविमोचन और ऋणमोचन ये विधि करने के लिए श्रीक्षेत्र नरसोबाबाड़ी में ग्यारह पूरणमासी के दिन होम हवनादि विधि की गई। बाद में उन विधियों की सांगता कर 'महारूद्र स्वाहाकार' विधि की गई। 'महारूद्र स्वाहाकार' यह विधि आम आदमी नहीं कर सकते हैं। इस विधि के लिए साधारणतः ढ़ाई लाख रूपये खर्च किए हैं। इसलिए ये विधि फिर से करना मुमकिन नहीं है। इस विधि के लिए जिस शक्ति को यानि रूद्रशक्ति को आवाहन किया था उस शक्ति की मनः पूर्वक सेवा करके उस शक्ति की धारणा अगली पीढ़ियों के लिए आशीर्वाद स्वरूप में कायम रहे इसलिए परम पूज्य बाबा के मार्गदर्शन के अनुसार गोवा में 'साईधाम' में शक्तिपीठ की स्थापना की। इसका अर्थ यह है कि बिना मांगे आपकी अगली पीढ़ियों का प्रबंध परम पूज्य साईनाथ महाराज ने किया है जिससे जो कोई जीवन में दुखी है वह यहाँ आकर निश्चित सुखी होगा यह मेरा आत्मविश्वास है।

श्रीमहाकारण प्रतिमा–

इस प्रतिमा में दो शब्द है। 'महान' और 'कारण'। 'महान' यानि 'बड़ा' यह हम कहते है लेकिन 'महान है तो भी छोटा है' इसका अर्थ समझना आवश्यक है। जिस प्रकार बरगद का वृक्ष महान और विशाल है

लेकिन उसका बीज अतिसूक्ष्म यानि छोटा है और अगर वह बीज मनः पूर्वक बोया तो उस बीज से कल्पवृक्ष निर्माण होगा जिससे सब भक्तभाविकों को उसकी छाया से सुख के क्षणों का अनुभव होगा। इसी प्रकार हम जो नामस्मरण नित्य करते हैं वह छोटा है फिर भी महान है इसलिए इस नामस्मरण में क्या है यह पूछने की अपेक्षा स्वयं को यह सवाल पूछना आवश्यक है कि 'इस नामस्मरण में क्या नहीं है' ? फिर इस सवाल का जवाब तुम खुद ही दे सकोगे। इस प्रकार का यह बीज बोने के लिए महाकारण प्रतिमा है जिसके कारण वंश परंपरा से अगली पीढ़ियां सुख में रहेंगी यह आशीर्वाद परम पूज्य बाबा ने दिया है। जिस प्रकार घर बनाने के लिए जगह लगती है या कुछ कार्य करने के लिए स्थल, काल, समय देखने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हम जो नामस्मरण कर रहे हैं वह सुरक्षित रह कर उसका लाभ अगली पीढ़ियों को हो इसलिए यह 'महाकारण प्रतिमा' है। आज आप जो नित्य सेवा करोगे उसका अंतर्भाव इस प्रतिमा में होकर कुछ काल के बाद यह प्रतिमा आपकी भावी पीढ़ी से बातें करने लगेगी।

ऐसी ये तीन प्रतिमाएं आप सबको मिले इसलिए पिछले तीस साल से मेरे प्रयत्न जारी थे। उन प्रयत्नों को यशस्वी रीति से यश प्राप्त होकर आज यह प्रतिमारूपी प्रसाद भक्त भाविकों के घर पहुँचा' इससे अधिक आनंद क्या है '? यह प्रश्न मैं खुद से पूछता हूँ।

प्रतिमाओं का विषय अत्यंत गहन होकर उनका कार्य उससे भी अधिक गहन है। आज तक सदियों से यह विषय किसी ने अध्ययन के लिए नहीं लिया है। आज तक जो कोई मार्ग में आए उन्होंने आने वाले भक्तों का भविष्य बताना इतना ही कार्य किया है। इसलिए कोई भी भक्त समस्या आने पर उसी दिशा से इस मार्ग की ओर देखता है और इन सवालों का कोई भी विचार नहीं करता कि "मैने जन्म क्यूं लिया है ? मेरा कर्त्तव्य क्या है ?" किसी भी साधक को 'दिव्य दृष्टि' प्राप्त है इसका क्या यही मतलब है कि आए हुए भक्तों का भविष्य कथन करना या अद्‌भुत बताना ? क्या यही 'दिव्य दृष्टि' है ? यह बहुत बड़ा प्रश्न है और इसके

कारण समाज सज्ञान होने की अपेक्षा अधिक अज्ञानी हो रहा है। इसलिए समाचार पत्र विश्वपत्र में 'किसी व्यक्ति का नाम छप जाने पर वह व्यक्ति असामान्य हो गया है' ऐसा हमें लगता है। विज्ञान युग में हम सज्ञान होने के बजाय और अज्ञानी हुए हैं; इसका कारण मूल विषय 'पुराण' है ऐसे समझने वाले लोग समाज में हैं। लेकिन उन्हें खुद को कुछ ज्ञान है या नहीं यह सवाल है। जगत् में जो अनंत विषय है उन सबका ज्ञान प्राप्त होना असंभव है। किसी व्यक्ति ने अध्ययन के लिए एक विषय लिया और वह उस विषय में 'विशेषज्ञ' हुआ तो भी उस विषय में अन्य विषयों को ढूंढना गलत है। इसलिएँ आजकल 'अंधश्रद्धा' यह विषय सब प्रकार से विचारों में है। उस विषय का मूल कहाँ है इसका पता नहीं चलता है बल्कि जो लोग 'अंधश्रद्धा' वाले लोगो के पीछे पड़े हैं उनकी श्रद्धा ही अंधी है यह कहना पड़ता है। इसलिए 'सच और झूठ' यह विवाद जारी है। ये दोनो एक ही रूपये के दो पहलू हैं वरना रूपया झूठा है यह कहना पड़ेगा और इस जगत् में यह कहना गुनाह है। इसलिए जिसके हिस्से जो बाजू आएगी वही सच है यह कहकर चुप बैठना आवश्यक है। अगर किसी की श्रद्धा है तो वह श्रद्धा झूठ है यह नही कह सकते हैं। 'अश्रद्धा और श्रद्धा' इनका हर एक ने अनुभव किए बिना उसका उत्तर गलत या सही यह निश्चित रूप में नहीं कह सकते हैं। इस जगत् में जो लोग 'सज्ञानी', लगते हैं वे वास्तव में 'अज्ञानी' हैं और जो 'अज्ञानी' हैं उन्हें 'सज्ञानी' कहना पड़ेगा क्योंकि बहुत से लोग किताबी पंडित हैं उन्हें किताबों का ज्ञान यानि एशो आराम में जीना यही अर्थ समझ आया है। परमेश्वर ने हमें यह जीवन क्यों दिया है ? इस सवाल को अनदेखा कर हम जी रहे हैं।

आप भक्तों को जो प्रतिमा दी है उनका कार्य आपपर ही निर्भर है। जिन भक्तों ने ये तीन प्रतिमाएं ली हैं उनको उन प्रतिमाओं में ईश्वर या परमेश्वर यह सगुण है या निर्गुण है यह निश्चित कहना गलत है। जो कोई 'परमेश्वर' है उसका अनुभव किए बिना वह नश्वर है या ईश्वर है यह समझ नहीं आएगा। " ये तीन प्रतिमाएं मिली हैं मतलब हम पूर्णतः सुखी होंगे " यह भविष्यवाणी करना योग्य नहीं है। परम पूज्य साईनाथ महाराज ने जो कृपाआशीर्वाद दिया है उस आशीर्वाद के अनुसार 'जिसके मन में

जैसा भाव होगा वैसा अनुभव उसे प्राप्त होगा ' इसलिए यह जिम्मेदारी साधक की ना होकर खुद भक्त की है, यह भक्त को भूलना नहीं चाहिए। जब भक्त अनन्य भाव से प्रतिमाओं का पूजन करके उसके साथ योग्य आचार विचार करेगा तब उसे उसके अनुसार फल प्राप्त होगा। इसके अलावा इन प्रतिमाओं की महत्तता इतनी है कि, जो देवता हम पूजन में रखते हैं उन देवताओं के तीन तत्वों में से एक भी तत्व बाकी नहीं बचा है इसलिए वे देवता आपकी इच्छा कब और कैसे पूर्ण करेंगे इसका आपको और आपके देवता को ही पता होगा। परम पूज्य बाबा ने इन तीन तत्वों की पूर्णतः पहचान करा दी है। इतना ही नहीं बल्कि जो तत्व निर्गुण निराकार थे उन्हें सगुण साकार करके वे तत्व कृपाआर्शीवाद के रूप में आप भक्तों को दिए हैं। इसलिए इन प्रतिमाओं से आपको उत्पत्ति, स्थिति लय यानि त्रिगुण तत्व प्राप्त हुआ है। इन प्रतिमाओं का कार्य आपको समझ आए इसलिए 'श्रीनारायणी' यह चौथी प्रतिमा 'अधिक (पुरूषोत्तम, मार्गशीर्ष) मास में सिद्ध की। 'अधिक महिना' की महत्वता अधिक है। उसे हम नहीं समझते हैं। 'अधिक मास' हर तीन साल के बाद आता है ऐसे बारह अधिक महिने यानी छत्तीस साल के बाद इस 'नारायणी अवस्था' का उदय हुआ है और 'श्रीशक्तिपीठ' छत्तीस साल के बाद सिद्ध हुआ। ऐसी ये प्रतिमाएं आपको प्राप्त हुई हैं। इन प्रतिमाओं का उदय आपकी भावी पीढ़ियों में होगा। इसलिए आप भक्तों को श्रद्धा और सबुरी रखना आवश्यक है। अनेक भक्तों को यह लगता है कि हमारी पूजा में तीन प्रतिमाएं हैं तो वे हमारे योगक्षेम का (चरितार्थ) प्रबंध करेगी लेकिन ऐसा नहीं है। प्रतिमाएं एक कृपाआर्शीवाद हैं। इस कृपाआर्शीवाद से आपको जो कर्म दुखदायी लगते हैं उनके दुख का परिमार्जन हो इसलिए आपको ये प्रतिमाएं दी हैं।

जो कोई जन्म लेता है वह जन्म के समय निर्दोष नहीं होता इसलिए हमारे दोषों का निवारण करना हमें ही सीखना आवश्यक है क्योंकि आगे के काल में आपका गुरू से मिलाप नहीं होगा। समाज में 'गुरू अवस्था' निर्माण करने के लिए अपना जीवन ईश्वर को समर्पित करना होता है लेकिन आज कल जो 'गुरू' के रूप में समाज में घूम फिर रहे हैं वे

'खाबुनंदन' (केवल खानेवाले, लूटनेवाले) हैं और आगे के काल में वे इससे भी अधिक प्रबल होंगे इसलिए आपके परिवारवालों को इस खतरे को ध्यान में रखना आवश्यक है।

आप सबको जो चार प्रतिमाएं दी हैं वे 1) श्रीसाईशक 2) श्रीकारण 3) श्रीमहाकारण 4) श्रीनारायणी हैं। जब तक आपका वंश इस जगत् में जन्म ले रहा है तब तक ये प्रतिमाएं भक्तों को प्रसाद देंगी। इस प्रसाद में ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों की अमानत श्रीसद्‌गुरू ने संचित करके रखी है। इसलिए अब परमेश्वर से माँगने के लिए कुछ भी बाकी नहीं बचा है। ईश्वर से मांगने पर आंखें प्राप्त नहीं होती हैं इसलिए आंखें होकर भी हम यदि आँखों से देखनेवाले जैसा बर्ताव ना करें तो हमारे दुख का कारण हम ही होंगे यह हमें भूलना नहीं चाहिए। आप भक्तों को जो चार प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं उनका कार्य जीवन में कार्यान्वित हो इसलिए जो महामंत्र दिया है उसका इक्कीस बार उच्चारण आपके परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को हर रोज करना आवश्यक है। जो सद्‌गुरू नामस्मरण आप कर रहे हैं वह आपका विकास हो इसलिए है और जो महामंत्र आपको दिया है वह आपका जीवन व्यर्थ ना होकर उस जीवन का औरों के लिए उपयोग हो इसलिए है।

महामंत्र – सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्रयंबके गौरी नारायणी नमोऽस्तुते।।

कार्य के आरंभ में जब मैं सेवा के लिए ढ़ाई साल तीर्थ क्षेत्र औदुंबर में रहता था तब नित्य नियम से वहाँ की नदी के दूसरे किनारे पर स्थित श्रीभुवनेश्वरीदेवी के मंदिर में सूर्यास्त के पहले जाता था और वहाँ श्रीदेवी महात्म्य का पठन करके इस महामंत्र का अनुष्ठान करता था। यह सेवा हर रोज निरन्तर करता था और आज भी कर रहा हूँ। भक्त को महामंत्र पठन करने के लिए बताने से पहले उस मंत्र की सिद्धता करना आवश्यक है। वास्तव में आपको प्रतिमा देने के पहले से ही मैं स्वयं इस महामंत्र का पठन करता ही था लेकिन उस समय आपको ' यह महामंत्र पठन करो'

यह बताने की मुझे अनुज्ञा नहीं थी। उच्चारण किए शब्दों से शक्ति के जो वाक्य बनते हैं उनके वलय धारण कर लेने के लिए माध्यमों की आवश्यकता होती है नहीं तो जिस वाणी द्वारा यह शक्ति उच्चारित होती है उस वाणी पर शक्ति का आघात होने की संभावना होती है। इसलिए प्रथमतः श्रीनारायणी प्रतिमा बनाई गई और वह प्रतिमा सिद्ध होने के बाद ही श्रीगुरूकृपा से पवित्र हुए इस महामंत्र का समावेश नित्य साधना में किया।

वस्तुस्थिति में जो जगत् है वह 'यंत्रयुग' का है। और कोई यंत्र बनाना कितना मुश्किल होता हैं यह आपको मालूम है। आपको दी गई ये प्रतिमाएं भी यंत्र है लेकिन उनके पीछे मंत्र है। फिर भी जैसे यंत्र का साहित्य उपलब्ध होने से यंत्र नहीं बनता है वैसे ही मंत्र है इसलिए प्रतिमा नहीं बना सकते हैं। बाजार में सैकडों बने बनाए यंत्र मिलते हैं लेकिन उनके पीछे शक्ति का कार्य ना होने के कारण उन यंत्रो का उपयोग जीवन में नहीं होता है। इसलिए प्रथमतः मंत्र सिद्ध करना होता है और उसके बाद यंत्र या प्रतिमा बनाते हैं। इसलिए आपको जो प्रतिमाएं मिली हैं उनके पीछे गुरूशक्ति है यह भूलना नहीं चाहिए।

आपको जो चौथी प्रतिमा दी है वह 'श्रीनारायणी प्रतिमा' है। जो कोई जन्म लेता है उसका जीवन 'नर' के समान है, लेकिन केवल खाना पीना इसमें जीवन व्यर्थ ना गंवाकर उस जीवन में 'नारायण' निर्माण होना आवश्यक है। यह अवस्था सिर्फ श्रीगुरू ही निर्माण कर सकते हैं। लेकिन इस योग का लाभ सब को प्राप्त नहीं होता है इसलिए प्रत्येक परिवार में ये प्रतिमाएं होना आवश्यक है।

पहले हमारे पूजन में देव देवताओं की जो मूर्तियाँ थीं वे उन देव देवताओं की प्रतीक थीं। देवताओ के सगुण और आकार रूप होने के लिए उन प्रतिमाओं को (मूर्तियों को) भिन्न भिन्न मंत्रों से सिद्ध करना आवश्यक था। लेकिन आपको जो प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं उन्हें कोई विशिष्ट धर्म या कर्म की आवश्यकता नहीं है। जो कोई इस जगत् में जन्म लेता है और

जो उच्चार कर सकता है उसे किसी भी मंत्रोच्चार से आवश्यक फल प्राप्त होगा यह सुलभ मार्ग परम पूज्य जगद्गुरू साईनाथ महाराजजी ने दिखाया है।

वास्तव में आप भक्तों ने जो इन प्रतिमाओं को स्वीकार किया है वह स्वीकार ' ये प्रतिमाएं वंदनीय दादाजी ने दी है ' इसलिए किया है। इसके अतिरिक्त प्रतिमाओंका और अर्थ आपके समझ में नही आया है। आपको प्रतिमाएं किसलिए दी गई हैं? आपके पास पैसे हैं और प्रतिमा लेने की हैसियत है, क्या इसलिए आपने प्रतिमाएं ली है ? यह महत्त्वपूर्ण विषय आप समझ लेंगे तो ही भविष्य में इसका लाभ आपको और आपके परिवारवालों को होगा। आप भक्तों के घराने में जो देव देवता हैं जिनकी आप पूजा करते हैं वे देव देवता जो पीतल या तांबे की मूर्तियां हैं उनका तत्त्व क्या है यह समझ लेना आवश्यक है। केवल पूजा में देव देवताओं की मूर्तियां रखी हैं इसलिए उन्हें 'देव देवता' कहना यह अज्ञान है और उसके पीछे अंधश्रद्धा है। इसलिए सब भक्तों से यह बिनती है कि जो प्रतिमाएं आपको दी हैं उन प्रतिमाओं के पीछे जो विषय है वह समझ लीजिये। यदि वह विषय समझ नही आया तो यह विषय 'विष' (जहर) है।

अनादि काल से हम यह समझते हैं कि 'देव देवताओं का प्रतीक' यानि 'प्रतिमा' है। लेकिन ये जो प्रतिमा आपको दी है वे उसी प्रकार की है यह बात नहीं है। इसलिए पहले 'देव का प्रतीक' यानि क्या है, यह समझना आवश्यक है। विश्व की धारणा तीन तत्वों में हुई है। वे तत्व यानि उत्पत्ति, स्थिति और लय हैं। उनमें यदि 'स्थिति' अस्तित्व में होती है तो भी उसमें स्थित्यंतर करना आवश्यक होता है। जिस तरह कोई बालक जब घराने में जन्म लेता है तब यदि उस पर संस्कार नहीं किए गए तो उसे 'बोलना चलना' नहीं आएगा और वैसे ही उस बालक से हम जो विषय बोलेंगे वह भी उसकी समझ नहीं आएगा फिर इसके कारण वह बालक जन्म लेकर भी किसी काम का नहीं होगा। इसलिए बालक का स्थित्यंतर आवश्यक है। वरना यदि हम केवल बालक है यह कह कर उसकी केवल देखभाल करते रहेंगे तो वह बालक केवल हड्डी, मांस का समुचय होकर

आपना जीवन व्यर्थ खर्च करेगा। जैसे बालक की यह स्थित्यंतर होने की अवस्था आवश्यक होती है, वैसे ही हमारे जीवन मे जो तीन गुण होते हैं उन गुणों का विकास होना भी अत्यंत आवश्यक है। मतलब 'उत्पत्ति अवस्था' यह जो अवस्था है, उसमें संस्कार होने से स्थित्यंतर होकर हमें 'स्थिति' यह अवस्था, प्राप्त होती है, और स्थिति अवस्था में संस्कार होने से हमें 'लय' अवस्था प्राप्त होती है। इस प्रकार इन प्रत्येक अवस्था में स्थित्यंतर कर लेना अत्यंत आवश्यक है। यह जो संस्कार हम अपने देह पर यानि जीवन पर कर लेते हैं और जिनसे जो स्थित्यंतर हम देखते हैं और अनुभव करते हैं उन संस्कारो के कारण हम इस जगत् में रहकर सुख की प्रचिती का अनुभव कर लेते हैं। ये संस्कार होते समय पूज्य भावना हुए बिना, स्थिति को स्थित्यंतर का अनुभव प्राप्त नहीं होता है। जिस तरह हमारे जीवन में हमारे परिवार का जो बालक होता है उसके प्रति हमें प्यार और ममता होती है इसलिए हम उस बालक को सज्ञान कर सकते हैं और फिर वह बालक भविष्य में हमारे परिवार का आधार बनता है। उसी प्रकार आपको जो प्रतिमाएं दी है वे केवल ईश्वर का प्रतीक नहीं हैं बल्कि गुरू ने हममें ईश्वर के प्रति जो भाव निर्माण किया है और हमारे उस भाव को ईश्वर से जो प्रतिसाद प्राप्त होता है, ईश्वर के उस प्रसाद को 'प्रतिमा' कहते है।

आपके पास की इन तीन प्रतिमाओं में सृष्टि के गुणधर्म हैं इसलिए जिस तरह सृष्टि सबको दिखाई देती है उसी तरह सबको हमारे आचार, विचार, उच्चारों का अनुभव होना आवश्यक है। जगत् में जो जन्म लेते हैं उन व्यक्तियों के भिन्नाभिन्न गुण यानि आचार, विचार, उच्चार ये समान स्तर पर ना होने के कारण जगत् में सदैव अशांतता है। हमने अनेक सालों से देव धर्म और पुण्य संचय किया है, फिर भी हमारे आचारों में ईश्वर नहीं दिखाई देते हैं, औरों के प्रति तुच्छता दिखाई देती है। हम स्वयं को 'ईश्वर के भक्त'' कहलाते हैं तो भी औरों के प्रति मन में 'जलन' होती ही है। इन सबका कारण हम स्वयं ही हैं क्योंकि हम यह भूल जाते हैं कि गुरूमार्ग केवल जीवन की कठिनाईयों के निवारण के लिए नहीं है; तो गुरूमार्ग जीवन से संबंधित सीख प्राप्त करने के लिए है। 'गुरू अंकित' होने के बाद

श्रीगुरू हमारे जीवन की जो रेखाकृती बनाते हैं, उसके अनुसार हमारा जीवन व्यतीत होना आवश्यक है। ास्तव में हमारे जीवन में जो समस्याएं निर्माण होती हैं, वे समस्याएं ना ह। ार उनके पीछे हमारे जीवन के कारण का हमें ज्ञान होकर उसके अनुसार ह नारे आचार, विचार हों, यह ईश्वर की इच्छा होती है। लेकिन इसके विपरी। हमारे आचार, विचार अन्य गलत दिशा की ओर जाने के कारण हम स। दुखी हैं यानि अज्ञानी हैं यह कहना पड़ेगा। इन सब विचारों का गहराई से विचार करने के कारण 'इस जगत् को कैसे सुखी करें ?' यह सवाल इस कार्य के आरंभ में मेरे सामने था और आज भी है। यह सुख की दिशा निश्चित गुरू किए बिना प्राप्त नहीं होती है।

आज यह जो हमारा जीवन है उसमें क्या अधिक है और क्या कम है इसका विचार गलती से भी कोई नहीं करता है। जन्म लेकर दो छोर एक करने के प्रयत्न करते रहकर हम क्यों सुखी नहीं है ?', यह सवाल हम पूछते रहते हैं। अनादिकाल से हम सदैव धर्म रूढ़ी परंपरा और योग्य संस्कार इनका विचार और आचार करते रहे हैं। लेकिन यह स्थिति आज की नहीं है। आज इसमें स्थित्यंतर किए बिना हम जी नहीं सकते हैं यह सुविचार कोई भी मनुष्य कभी भी नहीं करता है। 'पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही कार्य को दोहराते रहना यही धर्माचरण है ' यह एक छोर है और दूसरा छोर, देव और धर्म को नही मानना' इस विचार का एक वर्ग आज इस समाज में है। सोयरसूत का (छूत अछूत का) अर्थ समझे बिना जिनको केवल सुख की चाहत है वह वर्ग हमारे चारो ओर है। भविष्य में यह पीढ़ी समाज का शत्रु बनेगी यह हम भूल रहे हैं। इसलिए परम पूज्य जगदगुरू श्रीसाईनाथ महाराज जी की आज्ञा के अनुसार इस जगत् का जीवन जीने का मूल धर्म बदलना आवश्यक है यह मैने विचार किया। और श्रीसद्गुरू ने यह सीख दी कि इस जगत् को जीने का मार्ग दिखाना आवश्यक है। इस प्रकार के जगत् में कोई कार्य किए बिना यह जगत् एक ही मार्ग से नहीं जाएगा इस विचार से तीस साल पहले श्रीसाई अध्यात्मिक समिति की स्थापना की और उसमें मानवी जीवन के कार्य का प्रारंभ किया। जो कोई जन्म लेता है उसके जन्म का कोई ना कोई कारण अवश्य होता है। कारण

के बिना कोई भी इहलोक मे जन्म नहीं लेता है और इहलोक से नहीं जाता है। यह जन्म का कारण सबको विदित (मालूम) हो इसलिए निराकरण है जिसमें 'कारण' का होना यानि 'निराकरण' है। यह निराकरण जब आपके जीवन में आचार, विचार, उच्चार में व्यतीत होगा तब जीवन में जो कारण है वह मूल सहित (संपूर्णतः) नष्ट होगा और हमने ईश्वर के प्रति जो आचार विचार किए है वे आचार प्रतिमा रूप में हमारे सामने उपस्थित होंगे। इसलिए आपको दी गई 'कारण प्रतिमा' है, जिसका प्रतीक आपको श्रीगुरू के हाथों प्राप्त हुआ है। जन्म का कारण और श्रीगुरू का कृपाशीर्वाद इन दोनो अंगो से ये 'कारण प्रतिमा' सिद्ध है। कारण प्रतिमा में अनंत विषय होने के कारण 'प्रतिमा' यही प्रमुखतः महत्वपूर्ण विषय है यह किसी की समझ में नहीं आता है। कारण प्रतिमा यह प्रधान प्रतिमा है। जिस तरह दो हाथ और एक मस्तक इनमें का कुछ ना हो तो आपका जीवन व्यर्थ होता है वैसे यदि आपके घर में श्रीकारण, श्रीसाईशक और श्रीमहाकारण ये प्रतिमाएं नहीं होगी तो जीवन व्यर्थ है। इसका कारण यह है कि विश्व का जो धर्म है वह इन तीन प्रतिमाओं में समाया हुआ है। उत्पत्ति स्थिति लय इस त्रिपुटी का कार्य और कार्यकारणभाव यानि 'श्रीनारायणी' प्रतिमा है।

47. कर्मयज्ञ, धर्मयज्ञ, मानवता

पहले जमाने में हमारे पूजास्थान में हम जो देवताओं की मूर्तियां रखते थे उन प्रतिमाओं में उत्पत्ति, स्थिति और लय इन में का एक तत्व होता था। इसलिए उनमें अन्य दो तत्व दुय्यम होने के कारण सालो साल उन देव देवताओं के प्रति देवतार्चन करने से भी, उसका इच्छानुसार फल प्राप्त नहीं होता था और प्राप्त नहीं हो रहा है।

ये तीन प्रतिमाएं यानि श्रीसाईशक, श्रीकारण, श्रीमहाकारण इनमें उत्पत्ति स्थिति लय इन तीन तत्वों की त्रिपुटी होने के कारण इन प्रतिमाओं को देवत्व प्राप्त हुआ है। और उस देवत्व को आपके जीवन में इष्ट कार्य करना है इसलिए चौथी प्रतिमा यानि श्रीनारायणी है। प्रतिमाओं के देवत्व को जो इष्ट कार्य करना है उसके लिए श्रीसाईनाथ महाराज ने पहले ही जो आशीर्वाद दिया है, वह है, 'जिसके मन में जिस प्रकार का भाव होगा उसे उस प्रकार का अनुभव प्राप्त होगा' और उसका अनुभव हो इसलिए जो महामंत्र दिया गया है उसे, हर व्यक्ति को नजर अंदाज नही करना चाहिए क्योंकि यह मंत्र मैं स्वयं औदुंबर क्षेत्र में कहता था और पिछले सैतीस साल से अभी भी नित्य नियम से कर रहा हूँ। इस महामंत्र में क्या है और क्या नहीं है यह आशंका लेने से कुछ समझ नहीं आएगा। प्रत्यक्ष अनुभव किए बिना, दूर से दुख या सुख का अनुभव नहीं होता है। श्रीगुरू साधक को जो साधना देते है उसके पीछे निश्चित रूप से भक्तों का कल्याण लिखा होता है। भक्त यदि अज्ञानी हो तो भी श्रीगुरू सज्ञानी होते हैं इसलिए उनका अधिकार केवल हम पर ही नही तो संपूर्ण विश्व पर होता है इसलिए यह विश्व चल रहा है। भौतिक विचारों के प्रभाव के कारण आज अध्यात्मिक विचार करने की क्षमता हममें नहीं है इसलिए जो दिखाई देता है केवल उसी पर विश्वास करने वाला आज का जगत् है। श्रद्धा और सबुरी किसी के पास नहीं है। आज जो विश्वास है वह केवल पैसे पर ही होकर उसीके पीछे मनुष्य भागता रहता है लेकिन वह केवल जीवन का मृगजल होने के कारण उसके पानी से जीवन की प्यास नहीं बुझ सकती। यह विश्व भौतिक शास्त्र के अनुसार कितना भी आगे गया तो भी उसको

एक बार पीछे मुड़कर देखना ही पड़ेगा। और जब यह देखने की क्रिया हम करेंगे तब 'अध्यात्म' क्या है, यह हमारी समझ आएगा। भौतिक शास्त्र का आधार लेने से इस विश्व में जो प्रेरणा यह शक्ति है उसका पता भी नहीं चलेगा। भविष्य में इसी तरह से यह विश्व चलता रहा तो इस विश्व का नाश होगा। विश्व का नाश ना हो इसलिए परम पूज्य श्रीसाईनाथ महाराज ने चौथी प्रतिमा 'श्रीनारायणी' यानि 'प्रेरणा' यह निर्माण करके सब भक्तों को दी है। इस प्रतिमा का अनुभव यदि आज हमें नहीं हुआ तो भी काल कालांतर के बाद यह अनुभव सत्य है यह हमें निश्चित समझ आएगा।

आज हम केवल स्वयं का ही विचार करते हैं। आपके घर में जो बाल बच्चे हैं उनके लिए आपने पैसे से प्रबंध किया तो भी वह निरंतर प्रबंध नहीं है। यदि आपने सूज्ञता से जगत् का या यह कहने की अपेक्षा अपने परिवार का विचार किया तो जिस सुख का आपको अनुभव हो रहा है वह सुख भविष्य में आपके बाल बच्चों को भी मिले इस सद्इच्छा से इस 'प्रेरणा' का यानि 'श्रीनारायणी' का आपने जतन किया तो भविष्य में बिना मांगे घर में ही सुख शांती समाधान प्राप्त होगा। उसी तरह आपके परिवार के आचार, विचार, उच्चार इनका अधिष्ठान 'श्रीसाईशक प्रतिमा' के होने से वही परमेश्वर भविष्य में आपका रक्षण करेगा। इसलिए ईश्वर, धर्म इनके प्रति जो अंधश्रद्धा है उसे हटा कर स्वयं ईश्वर के प्रति आदरभाव निर्माण करेंगे तो वह 'भाव' व्यर्थ ना जाकर उस भाव का मूल्य 'भावना' में होगा और वही भावना विश्व कल्याण के काम आएगी।

आज जो कोई इस जगत मे जन्म लेता है उसके लिए ईश्वर से कुछ माँगना आवश्यक नहीं है। ईश्वर ने बिना माँगे तुम्हारे उन्नीस माध्यमों के रूप से जो संपत्ति तुम्हें दी है उस संपत्ति के प्रति समझ ना होने के कारण जीवन में विपत्ति आती है। वास्तव में जो जन्म तुम्हें प्राप्त हुआ है उस जन्म में परिपूर्णता हुए बिना ईश्वर जन्म नहीं देते हैं। इसके कारण जो संपत्ति तुम्हें दी गई है उसका तुम्हें ज्ञान कर लेना आवश्यक है। यह ज्ञान पाठशाला या विश्वविद्यालय में प्राप्त नहीं होता जिससे उपजीविका (चरितार्थ) होती है, जो ज्ञान पाठशाला में तथा विश्वविद्यालय में प्राप्त होता

है, वह ज्ञान केवल पच्चीस प्रतिशत है, यह समझना आवश्यक है और हमें पचहत्तर प्रतिशत ज्ञान ना होने के कारण हमारा जीवन केवल अज्ञान के कारण व्यर्थ खर्च होता है। फिर आखिर अंत समय मे हमने क्या पाया और क्या खोया इसका मेलजोल नहीं लगता है। आज यदि जन्म लिया है तो फिर से जन्म लेना है यह हम भूल जाते हैं। इसलिए जन्म प्राप्त होकर भी अगले जन्म का प्रबन्ध हमें ही करना है यह विचार ना करने के कारण केवल खाना, पीना, कपड़ा, ऐश आराम इनमें जीवन व्यर्थ खर्च होता है। आज आपको जो जन्म प्राप्त हुआ है, उसमें जिस सुख का उपभोग आप ले रहे हैं वह सुख आपका ना होकर आपके पुरखों का पुण्य है या पिछले अनेक जन्मों में अगर आपने कोई सत्कृत्य किया होगा तो उस सत्कृत्य के फलस्वरूप आपका जीवन आज सुखकर है। कर्म का यह खेल निरंतर जारी रहता है। इसलिए मनुष्य को अपने जन्म का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। यह 'ईश्वर को ज्ञात' होता है, इसलिए ईश्वर अवतारी पुरूषों को जन्म देकर इहलोक में भेजते हैं और उन अवतारी पुरूषों का आगमन भूतल पर होता हैं। वे अवतारी पुरूष कार्य के लिए ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उस जीवन में उन्हें खुद को सम्मान, आदर, नावलौकिक प्राप्त हो यह इच्छा कभी नहीं होती बल्कि केवल यही लगन होती है कि जगत् का उद्धार कैसे होगा, जगत् कब ज्ञानी होगा ? हमें जो दुख भुगतने पड़ते हैं उनका कारण 'अज्ञान का श्राप ' है (Curse of ignorance) है। वास्तव में समिति का जो कार्य हो रहा है उसमें पिछले तीस साल से जो तीन यज्ञ हो रहे हैं वे हैं एक कर्मयज्ञ, दूसरा ज्ञानयज्ञ और तीसरा धर्मयज्ञ। जब आप समस्या लेकर श्रीगुरू के पास आते हैं और समिति के कार्य केन्द्र पर बीड़ा, सुपारी, नारियल और दक्षिणा रखते हैं उसी समय आप गुरूदक्षिणा के रूप में आपका अच्छा बुरा कर्म बिना समझे श्रीगुरू को समर्पण करते हैं। अब वह कर्म जिससे आपके जीवन में सुख या दुख था यह ना समझने के कारण और वह कर्म श्रीगुरू को समर्पण करने बाद 'अब मेरा क्या होगा?' 'मुझे सुख प्राप्त होगा या नही' ये सवाल मामूली हैं। वास्तव में उसी क्षण 'ज्ञानयज्ञ' आरंभ होता है और उस ज्ञानयज्ञ की पूर्णाहुती किए बिना आपको सुख शांती समाधान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। लेकिन वह कर्त्तव्य हम भूल जाते हैं। इसलिए श्रीपंतमहाराजजी ने एक पद में कहा

है कि 'हे प्रभु मैं हर क्षण आपको भूल जाता हूँ, लेकिन आप दिन रात मेरा रक्षण करते हैं।' इस वचन के बाद 'धर्मयज्ञ' का आरंभ होता है लेकिन उस यज्ञ का जरा सा भी लक्षण आपके आचार विचारों में दिखाई नहीं देता है।

जो कर्म आपने सद्‌गुरू को दे दिया है उस कर्म में क्या है इसका विचार करना गलत है क्योंकि यह कर्म आपने निरपेक्ष बुद्धि से गुरूदक्षिणा के रूप में श्रीगुरू को दिया है। फिर उस कर्म का विचार करके 'मेरे नसीब में क्या है' इसका विचार करना इसका मतलब हम श्रीगुरू को 'गुरूदक्षिणा' देने में निस्वार्थी ना होकर 'स्वार्थी' हैं ऐसा होगा। जगत् में जब कोई स्वार्थ माँगता है तब उसका एक स्वार्थ पूर्ण हो गया तो दूसरे स्वार्थ को उसका ऋण चुकाना होता है इसलिए जो आज पाया वह कल खोया, यह जीवन सदैव जारी रहता है। लक्ष्मी आती है और जाती है यह खेल जीवन में ना हो इसलिए श्रीगुरू ने तुम्हारे समझे बिना तुम्हारा कर्म 'कर्मयज्ञ' में बदल दिया है और उसके बदले में तुम्हें तीन प्रतिमा देकर तुम्हारा कर्म चुकता किया है। अब अपना केवल इतना ही कर्त्तव्य है कि उन प्रतिमाओं को श्रद्धा भक्तिपूर्वक पूजास्थान में रख कर कुछ भी इच्छा ना रखते हुए उनका नित्य पूजन करना। इस तरह प्रतिमाओं का पूजन करने से तुम्हारे बिना माँगे तुम्हे इच्छित सुख की प्राप्ति होगी। इन प्रतिमाओं का पूजन करने के बाद यदि ज्ञान अज्ञान से कुछ मांग की गई तो जो कर्म आपने श्रीगुरू को दे दिया है उस कर्म की अनजाने में मांग की जाती है। मतलब आप उस कर्म को आवाहन करते हैं और इसके कारण यदि उस कर्म का आगमन आपके जीवन में फिर से हुआ तो वह कर्म अधिक प्रखर होता है क्योंकि जिसकी चाह नहीं थी वह कर्म आपने 'गुरूदक्षिणा' के रूप में गुरूकी झोली में समर्पण किया है, इसलिए उस कर्म पर अब आपका कोई हक नहीं होता है। इसके कारण वह कर्म आमंत्रित करने से आपका जीवन अधिक दुखी होता है। इसलिए आपको ज्ञानी करने के लिए समय समय पर जो निवेदन लिखे हैं वे बारबार पढ़कर उनका मनन कर के उससे खुद को क्या ज्ञान होता है यह देखने की दक्षता लेना आवश्यक है। तो ही वे जो निवेदन लिखे गए है वे 'ईश्वर के वचन' यानि 'टेन कमांडमेंटस' यानि 'दस आज्ञाएं' है इसकी प्रचिती प्राप्त होगी।

अब चौथी प्रतिमा श्रीनारायणी यह 'धर्मयज्ञ' है। अर्थात दुखी कष्टी लोगों को 'अपना' कहना चाहिए इस वचन के अनुसार हमारा आचरण और उसके अनुसार विचार, हमारे जीवन में सदैव रहना आवश्यक है। ईश्वर ने या श्रीगुरू ने जैसे हमारी पात्रता अपात्रता ना देखते हुए हमें ये प्रतिमाएं दी हैं वैसा ही बर्ताव हमें औरों के साथ करना आवश्यक है। ये प्रतिमाएं केवल पूजास्थान में देवता का रूप मानकर रखने के लिए आपको नहीं दी है। वे प्रतिमाएं आपके आचरण में आकर उससे आपके देहिक प्रतीक की प्रतिमा बनना आवश्यक है। क्योंकि आपके कर्म में जो अटकाव था वह अटकाव अब उस कर्म का लय होने के कारण नहीं रहा है। अगर, अब हम और अनाहूत कर्म की निर्मिति करते रहेंगे तो हमारा यह जीवन 'जीवन' ना रह कर 'वन' बनेगा। इसलिए सूज्ञ भक्तों को इन तीन यज्ञों का यानि तीन प्रतिमाओं का बोध लेना आवश्यक है। इसमें श्रीसाईशक प्रतिमा यानि 'कर्मयज्ञ', श्रीकारण प्रतिमा यानि।। 'ज्ञानयज्ञ', श्री महाकारण प्रतिमा यानि 'धर्मयज्ञ' और श्रीनारायणी प्रतिमा यानि 'मानवता' ऐसा अर्थ समाया है। ये चार लक्षण आपके पास हैं इनपर आपने लक्ष्य (ध्यान) दिया तो आप 'लक्षाधीश'(लखपति) बनोगे यह अभिवचन ईश्वर ने आपको जो दिया है वह इस प्रकार है कि –

श्रीदत्तगुरू के भजन में मन तल्लीन हुआ है।
गुरु के भजन में मन तल्लीन हुआ है।।
चलते समय श्रीदत्त हैं बोलते समय श्रीदत्त हैं।
इस तरह खाते समय, खेलते समय मेरा चित्त दत्तमय हुआ है।।
दत्त सर्व काम हैं, दत्त ही जन, वन, धाम (घर) हैं।
ये जगत्, दत्त आत्माराम का ही रूप है यह प्रतीत होता है।।
दत्त योग, ज्ञान हैं, दत्त ध्यान मौन हैं।।
दत्तजी ने सब उनके चरणमय और स्वयंसिद्ध किया है।

48. श्रीसद्गुरू कृपाआर्शीवाद का बीज बोनेवाले श्रीसाईनाथ महाराज के कार्य

आज हम भक्तभाविकों के जीवन में सुख शांती समाधान निर्माण करने वाली और पिछली तथा अगली पीढ़ियों के लिए सद्गुरू कृपाआर्शीवाद का बीज बोनेवाली श्रीसाई अध्यात्मिक समिति की स्थापना होकर यदि सैतींस (37) साल पूर्ण हुए हैं तो भी विश्वनियंता के मन में यह कार्ययोजना विश्व की उत्पत्ति के पहले ही निर्गुण निराकार रूप में निर्माण हुई थी। इस निर्गुण निराकार योजना को साकार करने के लिए अनेक अवतारी पुरूषों ने भूतल पर जन्म लेकर अपना जीवन इस कार्य के लिए व्यतीत किया है। परंतु सामान्य जनों को निश्चित, सुलभ और आसान मार्ग प्राप्त होने के बजाय धर्मशास्त्र, पोथी पुराण, व्रत, वैकल्य, यज्ञ, याग आदि आडंबर के कारण परमेश्वर के प्राप्ति का मार्ग अधिक विकट हुआ है।

श्रीसाईनाथ महाराजजी ने श्रद्धा, सबुरी और मानवता इनकी सीख समाज को दी है। और उनकी आज्ञा से उन्हीं तत्वों को अंगीकार करने वाली श्रीसाई अध्यात्मिक समिति का उदय हुआ है। मानवीय अज्ञान के कारण परिवार में और समाज में निर्माण हुआ असमाधान और अश्रद्धा दूर करने के लिए श्रीसाई अध्यात्मिक समिति का कार्य कार्यान्वित हुआ है। देव देवताओं के कृपाआर्शीवाद, अवतारी पुरूषों की पुण्याई और पूर्वजों का सत्कर्म अपने स्वयं के जीवन में धारण करने के लिए जब आम आदमी की क्षमता कम होती है तब यह पूर्वसंचित और मानवी जीवन इनमें सुसंगती (समन्वय) हो इसलिए श्री साईनाथ महाराजी ने मेरे माध्यम से भक्तों के जीवन में तीन विमोचन और पांच दीक्षा इनका कार्य कराके भक्तों के 'वंश' का 'गुरूअंश' में स्थित्यंतर कर दिया और वैसे ही भक्तों को मानवी जीवन का ज्ञान देकर उनके जीवन की विसंगती दूर करने के लिए समय समय पर सेमिनार रूपी ज्ञानयज्ञ कराए तथा इन ज्ञानयज्ञों से 'जीव' का 'परमात्मा अवस्था' में स्थित्यंतर हो इसलिए जो साधना आवश्यक थी उस साधना की पहचान भी भक्तों कों करा दी।

जीव को जन्म के कारण का ज्ञान प्राप्त होने के बाद वह जीव 'जीव' ना रह कर उसे 'नर अवस्था' के अनुभव का एहसास होता है। इस अवस्था में मनुष्य ने यदि केवल स्वयं के आत्मिक विकास के लिए ही साधना की तो उस साधना का लाभ स्वयं तक सीमित रहता है और मृत्यु के बाद वह लाभ 'पुण्याई' के रूप में वलय रूप से वातावरण में विलीन होता है। लेकिन यदि स्वयं के आत्मिक विकास के साथ जन कल्याण के लिए भी जीवन व्यतीत करने की आत्यंतिक इच्छा साधक ने की तो जिस तरह आकाश में सूर्यनारायण के आगमन से पूर्ण सृष्टि प्रकाशमान होती है उसी प्रकार साधना से निर्माण हुए तेजोवलय से मनुष्यका स्वयं का जीवन, और औरों का जीवन सुवर्णमय होता है। 'श्रीसाई अध्यात्मिक समिति' की स्थापना का यह एक महत्वपूर्ण अंग है। श्रीसाई अध्यात्मिक समिति ने पिछले सैतीस साल दुखी जनों के दुख 'निराकरण' रूप में खुद सहे,और उनके दुख में सहभागी होकर उन्हें अपरीमित सुख की चिरंतन धरोहर, 'अमानत' के रूप में दी।

विश्व की उत्पत्ति जिन तत्वों से हुई है वे तीन तत्व यानि उत्पत्ति, स्थिति और लय ये ॐकार साधना में समा कर उस आसान साधना का शुभारंभ श्रीगुरू ने भक्तों को प्राप्त करा दिया। वैसे ही इन तत्वों के प्रतीक स्वरूप श्रीसाईशक, श्रीकारण और श्रीमहाकारण ये तीन प्रतिमाएं भक्तों को नित्य पूजन के लिए दी हैं। इन तीन प्रतिमाओं मे नरजन्म का ज्ञान, जीवन का जन्मकारण और जीवन की सार्थकता समायी है। जिन भक्तभाविको के नित्य पूजन में इन तीन प्रतिमाओं का समावेश है उन्हें चौथी प्रतिमा का यानि श्रीनारायणी का भी लाभ प्राप्त हुआ है।

निसर्ग का प्रत्येक घटक अपना जीवन औरों के कल्याण के लिए व्यतीत करता है। पशु पक्षी, वृक्ष–लता, परबत, नदियां, धूप, बारिश इन सबका उपयोग औरों के कल्याण के लिए ही है। लेकिन आज हम मानव इसी निसर्ग में जन्म लेकर भी केवल अपने स्वार्थ के लिए अपने बुद्धि माध्यम का गलत उपयोग करके खुद का और औंरो का अकल्याण करते हैं। श्रीसाई अध्यात्मिक समिति की सीख में परमार्थ और स्वार्थ इन दोनों का सुंदर संगम प्रतीत होता है। 'स्वार्थ' यानि 'स्व–अर्थ' यानि स्वयं प्राप्त

किए जीवन का निश्चित अर्थ और 'परमार्थ' यानि 'औरों का जीवन सुखमय बनाने के लिए जीवन का सदुपयोग करना।'

नरजन्म का कर्त्तव्य जब जनहित के लिए कार्यान्वित होता है तब 'नर' अवस्था का स्थित्यंतर 'नारायणी अवस्था 'में होता है। हम भक्तभाविकों के जीवन में इस नारायणी अवस्था का उदय हो इसलिए हम सबको भी 'नारायणी प्रतिमा' दी गई है। यह परम पवित्र नारायणी अवस्था सामान्य भक्त को सुलभता से प्राप्त हो इसलिए श्रीगुरू ने मेरे माध्यम से अहोरात्र कार्य किया यही मेरा सद्भाग्य है।

आपके पास नित्य पूजन में जो तीन प्रतिमाएं हैं ये, यानि श्रीगुरू की काया, श्रीगुरू की वाचा और श्रीगुरू का मन हैं इस भावना से इन प्रतिमाओं का जतन होना आवश्यक है। वास्तव में श्रीगुरू इन प्रतिमाओं के रूप में प्रत्येक भक्त के घर में रहते हैं और यह समझ आपको जब होगी तब आपके जीवन में 'गुरूपूर्णिमा का उदय होगा और तब आप श्रीनारायणी प्रतिमा का महत्व और महात्म्य समझ जाओगे कि इस नारायणी में संपूर्ण विश्व समाया है।

ना– 'नाद' विश्व की उत्पत्ति का प्रमुख सूत्र यानि उत्पत्ति अवस्था
रा– 'राग' जीवन का स्थायी सूर यानि स्थिति अवस्था
य– 'लय' अवस्था यानि नरजन्म की परिपूर्णता
णी– इन तीनों का एकरूप होना यह चौथी अवस्था है

ऐसी यह 'श्रीनारायणी' आज सद्गुरू कृपा से इस जगत के कल्याण के लिए इह जगत् में अवतीर्ण हुई है और अपने कृपाआशीर्वाद से सब भक्तों को धन्य कर रही है।

श्रीसाई अध्यात्मिक समिति की स्थापना का एक कर्त्तव्य इस श्रीनारायणी प्रतिमा के रूप में भक्तों के घर घर में स्थित है। इस सुवर्णयोग का वर्णन शब्दों में करना असंभव होगा। श्रीसाई अध्यात्मिक समिति ने आज तक भक्तों को क्या दिया है यह जानने के लिए पीछे मुड़कर देखा तो यह

कहना पड़ेगा कि 'श्री' यानि सरस्वती और 'श्री' यानि लक्ष्मी इन दोनो का वरदहस्त सब भक्तों को प्राप्त हो इसलिए कि श्रीसाई अध्यात्मिक समिति में विमोचन द्वारा भक्तों के परिवार के वंश कर्म ऋण इनके दोषों से होने वाला संपत्ति, संतति और विद्या इनका नाश इन दोषों का विमोचन किया गया। 'साई' यानि सामान्य जनों को आसान साधन सिखाकर उससे उन्हें ईश्वर प्राप्ति का सुलभ मार्ग दिखाना। भक्तों के आत्मा की उन्नति होने के लिए उन्हें दीक्षा द्वारा साधक माध्यम में 'चिंतन' और 'ध्यान' ये अवस्थाएं सम्मिलित करा दी और 'श्रीसाई स्वाध्याय मंडल' की स्थापना करके 'प्रापंचिक तथा अध्यात्मिक जीवन' के कर्त्तव्यों की पहचान करा दी। समिति का एक कार्य समाज के प्रति मित्रत्वका, विश्वबंधुत्वका और तीतिक्षाका मतलब 'दया, क्षमा, शांती और सबुरी' का कार्य है।

मानवी जीवन में जो पांच ऋणानुबंध हैं उनमें से चार ऋणानुबंध हमारे जीवन में अस्तित्व में होते हैं और देवादिक यह पांचवा ऋणानुबंध जीवन के बाहर होता है। यह देवादिक ऋणानुबंध मानवी जीवन से हितसंबंधित होता है। उसकी अनुकुलता प्रतिकूलता पर मानवी जीवन का सुख शांती समाधान निर्भर होता है।

मानवी जीवन में जिनकी प्रखरता अधिक होती है वे ऋणानुबंध अनुकूल कराने के लिए मानवी प्रयत्न अपूर्ण होते हैं। श्रीसद्गुरूकी कृपा हुई तो ही यह कार्य हो सकता है। यह कार्य हो इसलिए आप भक्तों को तीन प्रतिमाएं दी गई हैं। इन प्रतिमाओंमें श्रीसाईशक यह प्रतिमा मातृपितृ ऋणानुबंध के लिए है, श्रीकारण प्रतिमा इतरेजन ऋणानुबंध के लिए, श्रीमहाकारण प्रतिमा जन्म जन्मान्तर ऋणानुबंध के लिए और इन तीन प्रतिमाओं के एकरूपत्व की श्रीनारायणी प्रतिमा यह जन्मकर्म ऋणानुबंध के लिए है और इससे हमारा जीवन परिपूर्ण यानि तीन सौ साठ अंश का होता है। यह जो तीन सौ साठ अंश के कृपाआर्शीवाद का वलय आपको धारण करा दिया है उसे कार्यन्वित करा देना यह आज हमारा कर्त्तव्य है, यह हमें ध्यान में रखना आवश्यक है। जिस जन्मकर्म ऋणानुबंध के कारण 'पुनरपि जन्म पुनरपि मरण' (फिर से जन्म फिर से मृत्यु) यह जो अवस्था आपके जीवन में थी उसका स्थित्यंतर होकर 'नर से नारायण होना' यह

कृपाआर्शीवाद ये प्रतिमाएं सिद्ध करके श्रीगुरू ने आपको दिया है। हमारे जीवन में प्रापंचिक और पारमार्थिक ये दो अंग होते हैं और हमें पारमार्थिक जीवन प्राप्त होने का प्रबंध श्रीगुरू ने कर दिया है। इस प्रबंध से हमारे जीवन में आनेवाली कठिनाईयों का निवारण करने का कार्य हमें ही करना है तभी हमारे जीवन में धारण हुई यह ऋणानुबंधों की समतोल अवस्था जतन होगी। इसलिए यह मार्गदर्शन किया गया है–

ऋणानुबंध	प्रतिमा	मंत्र	निराकरण
मातृपितृ	श्रीसाईशक	।।ॐ श्रीसाईनाथाय नमः।।	पारिवारिक सुख–शांती
इतरेजन	श्रीकारण	।।ॐ नमः शिवाय।।	वास्तुदोष, संतति दोष
जन्मजन्मांतर	श्रीमहाकारण	।।श्री नवनाथ अनुष्ठान।। (दस नाम)	पारमार्थिक उन्नति
जन्म कर्म	श्रीनारायणी	।।सर्वमंगल मांगल्ये...।।	विवाह में रूकावट

इनमें प्रत्येक ऋणानुबंध उसके लिए दी गयी प्रतिमा और मंत्र इनके संबंध में मार्गदर्शन किया गया है। ये मंत्र 'शस्त्र' हैं यह यदि सच है तो भी इन मंत्रों का शास्त्र के अनुसार उच्चार होने से ही वे शस्त्र होते हैं। इन चार मंत्रों में सब आधिव्याधि के निवारण का समावेश है। कारण के अनुसार मंत्रों का योग्य उच्चार करके, परम पूज्य बाबा से आशीर्वाद की याचना करके आप केवल 'उदी' की सहायता से अपनी कोई भी कठिनाई का निवारण कर सकोगे यह मुझे विश्वास है।

बाद में गोवा जाकर वहां चंपाषष्ठी के दिन श्रीखंडोबाजी के नवरात्र की सांगता (समापन) करके नित्य साधना में थोड़ा बदल किया गया। उसके बाद मकर संक्रांती के दिन परम पूज्य बाबा ने भक्तों को यह संदेश दिया है कि 'हम मकर संक्रांति यह दिन केवल नये साल का आरंभ यानि नया साल मानते हैं लेकिन इसकी अपेक्षा 'मकर संक्रांत' यह दिन इसलिए मनाना आवश्यक है कि इस दिन विश्व में नये से उदय होता है। संक्रांत

यानि 'संक्रमण' है। पिछले साल जो बुरा हुआ उसकी पुनरावृत्ति ना हो इसलिए यह दिन मनाना आवश्यक है। 'संक्रांत' इस त्यौहार का यह महत्व है कि यदि समाज में यह त्यौहार घर घर मे मनाया जाता है तो भी यह त्यौहार व्यक्तिगत है और इसमें पीछे मुड़कर स्वयं के जीवन की ओर देखना आवश्यक है। इस दिन सूरज एक राशी से दूसरी राशी में जाता है यानि अगली राशी को सुख शांती समाधान का लाभ हो इसलिए पिछली राशी में हमसे अज्ञान से, नासमझी से जो दुर्विचार, अविचार हुए थे उनकी पुनरावृत्ति ना हो इसलिए यह काल संक्रमण स्वरूप में मनाते हैं। मतलब संक्षेप में पुरानी कुसंगत और दुर्व्यसन जिनसे काया वाचा मन का उत्कर्ष होने में अटकाव हो रहा था वे ना रहे इसलिए जो सब त्याज्य है उसका विसर्जन होकर हमारे जीवन के लिए हितकर इतने ही विचार और आचार नये से आचरण में लाना इसका अर्थ 'मकर सक्रांत' है।

मकर संक्रांत के दिन उस दिन के प्रतीक के रूप में सबको 'तिल और गुड़' दिया जाता है। इसका कारण यह है कि खुद के जीवन में तिल के आकार के भी यानि जरा से भी दुर्गुण ना रहे इसके लिए तिल और जीवन संपूर्णतः मधुर हो इसलिये गुड़ दिया जाता है। मतलब तिल और गुड़, लीजिए और 'मीठा' यानि 'प्यार से' बोलिए। इस दिन हमारे आसपास जो जगत् है वह हमारा मित्र बनना आवश्यक है जिससे मानवी जीवन सुख शांती से व्यतीत होगा।

जिसे 'मन' है वह 'मानव' है इस अर्थ से यह सर्व जगत् हमारा मित्र है। हमारा कोई भी हितशत्रु नहीं है। हमारा हितशत्रु हम स्वयं ही हैं जिसके कारण जीवन में जन्म लेकर हम योग्य काल और अयोग्य काल यह विचार नहीं करते। यह विचार किया जाए इसलिए संक्रांत के दिन ईश्वर को मिष्ठान्न का यानि 'गुड़ की रोटी' का भोग लगाते हैं। गुड़ की रोटी में दोनो बाजू रोटी के दो परत होकर बीच में गुड़ होता है। इसका अर्थ यह है कि इस मिलाप में लगाव, प्यार बढ़े, शत्रु और दोस्त एक हों और यह गुड़ की रोटी खाते समय केवल मुँह मीठा ना हो बल्कि मुँह में जो वाणी है उस वाणी से कृत्रिमता छोड़कर 'मीठा (मधुर) बोलना' आवश्यक है यह 'मकर संक्रांत का अर्थ है।

49. श्री साई शक 7 चैत्र प्रतिपदा, शक्तिपीठ और श्रीनारायणी संगम, श्रीपंतमहाराजजी से कार्यार्थ आशीर्वाद, कुंडलिनी विज्ञान

श्रीसाई अध्यात्मिक समिति का कार्य स्थापन होकर आज चालीस साल हुए हैं। उनमें से पिछले पाँच साल सुवर्ण अक्षरों में लिखें जाए इस प्रकार का कार्य इन पाँच सालों में हुआ है। पांच साल पहले परम पूज्य बाबा की आज्ञा से गोवा मे 'साईधाम' निर्माण किया गया और उसी समय साईधाम में श्रीशक्तिपीठ की स्थापना की गई। बहुत से भक्तों को इतना ही मालूम है कि 'साईधाम में शक्तिपीठ की स्थापना की गई ' है लेकिन शक्तिपीठ के पीछे की परंपरा कितने सालों से है यह किसी को भी मालूम नहीं है। जो कोई मनुष्य इस जगत् में जन्म लेता है वह काया वाचा मन के बिना जीवन जी नहीं सकता। वैसे ही प्रतीक, प्रतिमा और प्रतिभा के बिना ईश्वर का अस्तित्व दिखाई नहीं देता।

आज आप भक्तों के घर में तीन प्रतिमाएं और चौथी प्रतिमा यानि श्रीनारायणी ये है। आपको जो ये प्रतिमाएं आज प्राप्त हुई हैं वे प्रतिमाएं चालीस साल पहले सिद्ध की गई थीं और फिर भी वे आप भक्तों को नहीं दी गई थीं क्योंकि आज आप भक्तों के घरों में जो प्रतिमाएं हैं उन प्रतिमाओं का मूल शक्तिपीठ में है। इसलिए प्रथमतः 'साईधाम' का निर्माण किया गया, उसके बाद शक्तिपीठ का निर्माण किया गया और जिस शक्ति की शक्तिपीठ में प्रतिष्ठापना (स्थापना) करनी थी उसका आवाहन श्रीक्षेत्र नरसोबाबाड़ी में हर पूरणमासी के दिन लघुरूद्र हवन करके किया गया। ग्यारह पूरणमासी का लघुरूद्र हवन किए जाने के बाद बारहवीं पूर्णमासी को महारूद्र स्वाहाकार करके जो शक्ति प्राप्त हुई उसकी गोवा के साईधाम में शक्तिपीठ में प्रतिष्ठापना (स्थापना) की गई और उसके बाद आप भक्तों को ये तीन प्रतिमाएं मतलब श्रीसाईशक, कारण और महाकारण यानि उत्पत्ति, स्थिति और लय शक्ति दी गई। यदि साईधाम में शक्तिपीठ

की प्रतिष्ठापना नही होती तो आप भक्तों को ये प्रतिमाएं नहीं दी जाती। इसका अर्थ यह है कि आप भक्तों के बिना मांगे आपके घर में ईश्वर का आगमन हुआ है इसलिए उन प्रतिमाओं का मूल्य कितना है यह सूज्ञ भक्त समझ लें। जो प्रतिमाएं आपने ली है उनका फल प्राप्त होने के लिए आपको साधना यानि प्रतिमाओं के लिए औपचार सिखाया है और वैसे ही उस साधना में ॐकार के बारह अंग और संथा पद्धति से सद्गुरू नामस्मरण सिखाया है। लेकिन आप वह सीख नजर अंदाज कर रहे हैं और केवल यही प्रश्न पूछते रहते हैं कि प्रापंचिक कठिनाईयां कैसे सुलझानी है ? यदि इसकी अपेक्षा आपने जिस प्रकार से साधना सिखाई है उस प्रकार से साधना की तो आपको निश्चित रूप से सौ प्रतिशत अधिक सुख का लाभ होगा।

चैत्र प्रतिपदा श्रीसाई शके 7 इस दिन शक्तिपीठ की शक्ति में 'श्रीनारायणी' यानि 'प्रतिभा' का संगम (मिलाप) कराने की विधि की गई। आप भक्तों ने यह अवधान ध्यान में रख कर यदि लाखों रूपये दिए तो भी सद्गुरू श्रीसाईनाथ महाराज ने जिस प्रेम से इस आशीर्वाद की भेंट आपको दी है उसका मूल्य नहीं हो सकेगा। इसके अलावा इन पांच सालों में श्रीसाई अध्यात्मिक समिति के कार्य के लिए कुछ अन्य काम भी हो इसलिए श्रीसाई स्वाध्याय मंडल की स्थापना की है। यह स्थापना होकर आज चार साल हुए है। इस अवधि में, समाज में जो संस्थाएँ पैसे के अभाव से अपना कार्य नही कर सकती हैं उन संस्थाओं को श्रीसाई स्वाध्याय मंडल से साढ़े तीन लाख रूपयों की सहायता (donation) की गई है। वैसे ही आप भक्तों को अपनी परंपरा का ज्ञान होकर आप सज्ञान होकर गुरूमार्ग में जीवन व्यतीत करें इसलिए 'गुरूप्रसाद' यह ग्रंथ लिखा है। 'गुरूप्रसाद' यह ग्रंथ लिखने का यह उद्देश्य है कि अनादिकाल से देवदेवतार्चन और धर्माचरण किस प्रकार से होता था इसका भक्तों को ज्ञान देना तथा भविष्य में इस निराकरण पद्धति का अवलंबन करना मुश्किल होने के कारण उसके बजाय कुलधर्म कुलाचार करने का आसान से आसान तरीका आप भक्तों को सूचित किया गया है। जिसका उपयोग समाज के लिए होकर आप भक्तों को कृपाशीर्वाद प्राप्त होगा। वह आशीर्वाद अनादिकाल के देवदेवतार्चन से भी अधिक बढ़कर होगा।

परमपूज्य बाबा ने इस शुभ दिन को आप सबको यह आदेश दिया है कि 'सत्कर्म करके जीवन बिता कर सब के मुख से मंगलवाणी का उच्चार होता रहे' इस प्रकार का जीवन आप व्यतीत करें।

गोवा के साईधाम में चैत्र पूर्णिमा का शुभदिन मना कर मैं बेलगांव में परम पूज्य श्रीपंतमहाराज के पास आ गया। सुबह आरती के बाद मैने सब भक्तों की ओर से श्रीपंतमहाराजजी के चरणों में प्रार्थना करके कार्य के लिए उनसे आशीर्वाद की माँग की। वह प्रार्थना यह थी कि:–

'हे श्रीपंतमहाराज, आज हम गुरूभक्त आप पुण्य विभूतियों के चरणों में विनम्र भावना से यह प्रार्थना करते हैं कि हम मानवों को अपने प्राप्त जन्म का ज्ञान हो और प्राप्त जीवन में सुख शांती समाधान का लाभ हो। वैसे ही मानव धर्म के उद्धार के लिए आपने यह जो कार्य स्थापन किया है उस कार्य में प्रत्येक व्यक्ति का अंश मात्र हिस्सा है यह जानकर, हमारे हाथों परोपकार का इष्ट कर्त्तव्य यथायोग्य रीति से होता रहे ऐसी सीख आप विभूतियों ने अनादिकाल से आज तक समय समय पर अवतार लेकर हम मानवों को देकर भी हम मानव इह जन्म के आवश्यक कर्त्तव्य करना, यह भूल जाने के कारण आज जगत् की जो अत्यंत बिकट परिस्थिति हुई हैं उस परिस्थिति में आवश्यक बदलाव लाना आपके कृपाशीर्वाद के बगैर मुमकिन नही है। इसलिए आप विभूतियों ने कृपावंत होकर हम मानवों को जो आसान से आसान मार्ग सूचित किया है उस मार्ग का पालन और कर्त्तव्य हमसे निःसंकोच रीति से होता रहे इसलिए आप हमें शक्ति दें और उससे हमारे जीवन में हमें सुख शांती का लाभ तथा ईश्वरप्रणित मानवी जीवन का लाभ होता रहे यह आपके चरणों में प्रार्थना है। "

आज के दिन तक परम पूज्य श्रीसाईनाथ महाराज ने हमें मानव कल्याण के लिए जो साधन सिखाएं हैं उनके लिए हम उनके जन्म जन्म तक ऋणी रहें और आज तक हमारे अपराध और प्रमादों की पुनरावृत्ती हमारे हाथों ना हो, ऐसी सदबुद्धि परम पूज्य श्रीसाईनाथ महाराज, श्रीनवनाथादि विभूति और श्रीदेवदेवता हमें और हमारी आगे की भावी पीढ़ियों को दें ऐसी प्रार्थना हम सब अनन्य भाव से करते हैं।"

उपरोक्त प्रार्थना बेलगाम में .रग. पूज्य श्रीपंतमहाराज के चरणों में सादर करके मैं पूना आ गया। इसके बाद मुंबई में साधक अवस्था के आगे के मार्गदर्शन के लिए सम्मेलन लिया गया।

'कुंडलिनी विज्ञान' इस विषय के ज्ञान के लिए बहुत से लोग उत्सुक (eager) होते हैं लेकिन उस विषय के प्रति लोगों में उतना ही अज्ञान होता है। हम मानवों को निर्माण करते समय हमारा कोई भी माध्यम उदीत (जागृत) करने का कार्य परमेश्वर ने बाकी नहीं छोड़ा है। अगर परमेश्वर ने उस प्रकार उदित नहीं किया होता तो हम मानव जन्म लेकर सज्ञानी नहीं बन पाते। इसलिए 'कुंडलिनी जागृत करते हैं' यह जो लोग कहते हैं उसके बारे में सबमें बहुत अज्ञान है। हमारा जीवन आठ दिशाओं में है और उसमें की एक दिशा ज्ञात होती है और बाकी सब दिशाएं, जो अज्ञात होती हैं उनका गुरूकृपा से ज्ञात होना यहीं 'कुंडलिनी जागृती' है।

देह में अनेक रक्तवाहिनी, नसें, नाड़ी होती हैं। उनमें की तीन नाड़ी, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना है। वे नाड़ी जीवन में प्रमुख होकर उनसे पचन, श्वसन और रक्ताभिसरण ये तीन क्रियाएं जीवन में अव्याहत (निरंतर) जारी होती हैं। ये कार्य होते रहें इसलिए मनुष्य को स्वयं कोई प्रयत्न नहीं करने पड़ते हैं। यदि इस कार्य में हमारे आचार विचारों से कुछ बिगाड़ निर्माण होता है तो उसे बिमारी कहते हैं और उस बिमारी के लिए हम दवा लेते हैं। पहले जमाने में यदि ऐसी बिमारी हुई तो तुरंत दवा न लेकर पहले लंघन (अन्न ना खाना) करते थे और उससे वह बिमारी अनायास (सहज) ठीक होती थी। लेकिन आज लंघन या उपवास कब किया जाता है ? जब पेट खराब होने से हमारी अन्न सेवन की इच्छा नष्ट होती होती है तब! उसके पहले पेट की ओर ध्यान ना दे कर पेट यह केवल 'मोट' (बड़ा थैला) है यह समझ लेकर अन्न का 'सेवन' नहीं करते है बल्कि केवल 'पेट' इस बड़े थैले में जो अन्न डालते रहते हैं उसके कारण पाचन क्रिया में बिगाड़ होकर अन्न पचन नहीं होता है। इससे रक्ताभिसरण होकर भी रक्त शुद्ध ना होकर उसमें अधिक बिगाड़ होकर उस रक्त में अधिक कार्बन–डाई–ऑक्साईड (CO_2) निर्माण होता है और बाद में श्वासोच्छास

(श्वास लेना और छोड़ना) यह क्रिया आवश्यकता के अनुसार नहीं होती है और उसके कारण जो रोग होने नहीं चाहिए वे यानि अस्थमा, क्षय, रक्तक्षय, रक्तदाब, ह्दय विकार जैसे रोग हो जाते हैं और इन रोगों के लिए दवा ली गई तो भी उस दवा से शरीर निरोगी नही होता और हम केवल दवा के साथ जीते रहते हैं। इसलिए कुंडलिनी का अभ्यास करना आवश्यक है।

मानव शरीर पंचमहाभौतिक तत्वों से निर्माण हुआ है। यदि केवल बाह्य देह ही दिखाई देती है तो भी अंदर का कार्य इतना विलक्षण होता है कि उसका विचार करने से मती (बुद्धि) दंग रहजाती है। देह के प्रमुख तीन द्वार हैं जिनसे उसके अंतर्गत कार्य को चाल मिलती है। वे तीन द्वार, आंखे, कान और जिव्हा, ये तीन माध्यम अगर न हो तो जीना मुश्किल होता है। इन तीन माध्यमों का संबंध नाड़ी से इस प्रकार होता है कि कान का संबंध इडा, से पिंगला का संबंध आंखों से और सुषुम्ना का संबंध जिव्हा से होता है। ये तीन नाड़ी शरीर में पीठ की रीढ़ में नसों के रूप में होती है जिनका संबंध मस्तिष्क के बड़े और छोटे भेजे **(Brain)** से होता है जिससे हमारी हलचल **(Movements)** होती है। इनका योग्य उपयोग करने से कुंडलिनी का सदुपयोग होता है वरन् खाना पीना, कपड़ा, ऐशोआराम उसी में जीवन व्यतीत होता रहता है। साधक को ईश्वर की दी संपत्ति का यानि आँखें, कान, जिव्हा का योग्य उपयोग करने से यह अनुभव हो सकेगा।

मेरा खुद का वैयक्तिक यह अनुभव है कि पिछले पचास सालों में मैंने सिनेमा, नाटक टीवी नहीं देखा नहीं है ओर देखता भी नहीं हूँ। मैं केवल संतजनों के लिखे ग्रंथ पढ़ता हूँ। मैं केवल शास्त्रीय संगीत सुनता हूँ। इसलिए कोई व्यर्थ चर्चा करने की बारी मुझपर नहीं आती है। मैं जो खाना खाता हूँ वह खाना आप कोई भी खा नहीं सकेंगे इतना सात्विक होता है। मैं आज अनेक सालों से केवल डेढ़ रोटी और आधी कटोरी चावल इतना ही आहार लेता हूँ इसलिए मेरे आँखे, कान, जिव्हा इन तीनों के कार्य योग्य रीति से होते रहते है। मैं खुद को इतने बंधन में इसलिए रखता हूँ कि इन

तीन माध्यमों से जो शक्ति व्यर्थ खर्च होती है उस शक्ति का उपयोग मैं कार्य के लिए करता हूँ। यदि आपने भी इस तरह आचरण किया तो आप भी स्वयं के प्रश्न सुलझा सकेंगे और औरों की भी मद्द कर सकेंगें।

कल, दिनांक 24.08.1989 को परमपूज्य श्रीसाईबाबा का आगमन हुआ और उन्होनें आप सबको आशीर्वाद दिया है। इसलिए आप भविष्य में आँखे, कान और जिव्हा इन माध्यमों का गलत उपयोग ना करें जिससे इडा, पिंगला और सुषम्ना इनके कार्य का जो उदय होना आवश्यक है वह होकर यह कह सकेंगे कि 'कुंडलिनी जागृत' हुई है। वरना कुंडलिनी होकर भी वह ना होने के अनुसार आज हम जी ही रहे हैं। इसलिए आँखें, कान, जिव्हा इनके कार्य की ज्यादती (अतिरेक) ना करके उसके कारण जीवन में बाकी बचा समय यदि हम सब नामस्मरण और चिंतन करने में व्यतीत करने रहे तो 'विश्वशांती' होने में देर नहीं है।

50. विमोचन साधना
– ईहलोक और परलोक का विचार

'विमोचन' यह शब्द उच्चार करने से ही शरीर घबराहट से कँपकँपाना शुरू होता है इतनी यह कठिन साधना है। इसलिए गुरूमार्ग में या अन्य मार्ग में इस साधना का मार्ग कोई अपनाता नहीं है। क्योंकि अगर साधक यह साधन सिद्ध कर सका तो जगत् का कल्याण होता है लेकिन यदि यह नहीं हुआ तो साधक को अपने प्राण खोने पड़ते हैं इतनी प्रखर यह साधना है। यह साधना करते समय प्रथमतः दो जहाँ (जगत) का विचार करना आवश्यक होता है उसमें पहला जगत् इहलोक है और दूसरा जगत् परलोक है।

प्रथमतः ईहलोक का विचार करते हैं। जो कोई व्यक्ति दुखी है उसके दुख का कारण यह होता है कि उसमें कर्म अनुकूल नहीं होते हैं। उसके लिए हम उस व्यक्ति को जो सेवा बताते हैं उस सेवा के पहले उस व्यक्ति को देवदेवताओं का आशीर्वाद लेना आवश्यक होता है। अगर किसी व्यक्ति ने उसके घराने के कुलधर्म कुलाचार पिछले बारह साल में नहीं किए होंगे और जिसके कारण वह केन्द्र पर आकर यह कहता है कि मैं दुखी हूँ, तो उस समय उस व्यक्ति के दुख के निवारण के लिए उसे ग्यारह सप्ताह पूजन करने के लिए प्रसाद दिया जाता है और जब वह दुखी मनुष्य इस प्रसाद का पूजन करता है तब उसको देवदेवताओं का यह निराकरण मान्य करना आवश्यक होता है। यदि इस प्रकार हुआ तो यह कह सकेंगे कि उस मनुष्य का दुख 'दैविक कोप' (क्रोध) था। मनुष्य के दुख की दूसरी बाजू यह होती है कि कोई मनुष्य इतना दुखी होता है कि उसे सुख देने के लिए उसके पास अनुकूल कर्म होता ही नहीं है। ऐसे समय श्रीगुरू को उसका दुख भुगतना पड़ा या उसके लिए कठिनाईयां और परेशानियां सहनी पड़ी तो भी कोई हर्ज नहीं क्योंकि गुरूभक्त का कल्याण होना आवश्यक होता है। मनुष्य के दुख की तीसरी बाजू यह है कि उस मनुष्य का उसके पूर्व जन्म में यदि अलग धर्म हो और यदि उसका इस जन्म में

अलग धर्म हो तो इस जन्म में अनेक देव देवताओं का पूजन करके भी उसे उस पूजन का फल प्राप्त नहीं होता है। इसलिए श्रीगुरू को अपनी साधना से उसके जीवन को (adopt) अपनाकर उसे सुखी करना पड़ता है और यह करने में साधक का पुण्य खर्च होता है। आज इस जगत में ऐसा कौन होगा कि जो दूसरों के लिए खुद का पुण्य खर्च करेगा ? एक बार कोई पैसे से मदद करता है लेकिन खुद का पुण्य कोई खर्च नहीं करता है। इसलिए किसी साधक ने इस मार्ग को अपनाया नहीं है। विमोचन के इस प्रकार को 'कर्म विमोचन' कहते है।

विमोचन का दूसरा भाग यह है कि जो कोई आत्माएं अपने मरणोत्तर जीवन में भूत के रूप में संचार करती रहती हैं उन्हें मुक्ति यानि सद्‌गति देना जिससे वह आत्मा अपने अगले जन्म के लिए अगली अवस्था में जाती है। इसके लिए परलोक में उस आत्मा के लिए जगह होना आवश्यक है। यह आत्मा इस सृष्टि के उत्पत्ती, स्थिति, लय इन तीन अवस्थाओं में बद्ध होती है। यदि गुरूकृपा से उसकी मुक्ति हुई तो उसके जन्म का स्थित्यंतर यानि विमोचन होता है, नही तो वह आत्मा बाधा करने वाले भूत होकर ईहलोक के लोगों को शारीरिक तथा मानसिक भोग भुगतने को मजबूर करती रहती हैं। इसलिए गुरूआज्ञा से केवल साधन सिद्ध करने से या बाधा निकालने से उपयोग नहीं होता है बल्कि ऊपर के लोकोंपर यानि भुः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं इन लोकों पर सत्ता–हुकुमत–होना भी आवश्यक होता है जिससे वह आत्मा उसके पूर्वकर्मों के अनुसार आगे की अवस्था प्राप्त कर सकती है।

कुछ आत्माओं की मरणोत्तर जीवन में इच्छा वासना बाकी बची होती है या कुछ आत्माओं ने ईहलोक के जीवन में धर्म के विरूद्ध आचरण किया होता है। ऐसी आत्माओं की मुक्तता के लिए शास्त्रों में नारायण बली, नागबली, त्रिपिंडी आदि विधि बताई गई है लेकिन आज ये विधि करने से वे आत्माएं मुक्त नहीं होती हैं क्योंकि आज ये विधि करने वालों में और इन विधि में पवित्रता नहीं रही है। इन विधि को आज केवल बाजार का रूप प्राप्त हुआ है इसलिए इन विधियों से आत्माएं मुक्त होने के बजाय और ही बद्ध होती हैं और फिर से जगत को त्रस्त करती रहती हैं। ये सब

विधि योग्य रीति से करने से जीवात्मा को मुक्तता प्राप्त होती है और उस विधि को 'वंश विमोचन' कहते हैं।

विमोचन का तीसरा भाग यह है कि गुरूमार्गी होने के पहले ही भक्त का विमोचन करना आवश्यक है क्योंकि भक्त का जो जन्म हुआ है वह 'कर्माधीन' होने के कारण विकसित नहीं होता है। उस भक्त के जन्म को प्रथमतः विकसित करना और वह विकसित होने के बाद योग्य दीक्षा देकर भक्त को 'मानव' करना इसका मतलब यह है कि प्रथमतः जन्म लेते समय 'जीव' रूप में जन्म होता है, उसके बाद श्रीगुरू के किए संस्कारों से उस जीव का 'आत्मा' में स्थित्यंतर होता है। इसके लिए श्रीगुरू को कौनसा दिव्य (कठिन कार्य) करना पड़ता है इसकी आप ही कल्पना कीजिए। केवल गुरू प्राप्त होना आसान है लेकिन 'जगत् गुरू' होना यह अवस्था 'शूल पर की रोटी' है यह भक्त को भूलना नहीं चाहिए। आज जगत् में जो 'गुरू' दिखाई देते हैं वे लोगों को ठगने का आसान मार्ग अपनाते हैं। इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि भक्त योग्य गुरू मिलने तक 'सबुरी' रखें।

जन्म लेते समय हमारे पास जन्मकर्म और जन्मजन्मांतर ये दो ऋणानुबंध होते हैं। जन्म लेने से उनमें मातृ–पितृ और इतरेजन इन दो ऋणानुबंध की जोड़ होती है और देवादिक ऋणानुबंध का वलय जो पहले देह से दूर होता है उसे नित्य उपासना से और गुरूआज्ञा से सिखाई गई साधना से जोड़ना होता है। देवादिक ऋणानुबंध की यह जोड़ कराने के लिए आप भक्तों को तीन प्रतिमाएँ दी हैं। वैसे ही आपकी नित्यसाधना के मार्ग में, इस जन्म में आपको नये से प्राप्त किए ऋणानुबंध की प्रतिकुलता ना आए इसलिए उन्हें कर्म रूप में कार्य करने के लिए गुरू कृपा प्राप्त करानी होती है। यह विधि यदि आसान लगती है तो भी वास्तव में यह आसान नहीं है और यह दिव्य साधना केवल श्रीगुरू ही कर सकते हैं। इस साधन सिद्धता को 'ऋणमोचन' कहते हैं। जीवन में हमारे हाथों जब कोई धर्मबाहय कृत्य हो जाता है, तब बाद में उसके कारण हमें पछतावा होता है और फिर उसके लिए हम प्रायश्चित लेते हैं लेकिन यह प्रायश्चित हमेशा नहीं ले सकते हैं। जीवन में प्रायश्चित एक ही बार ले सकते हैं इसलिए सूज्ञ मानवों को कर्म करने के पहले विचार करके विचार पूर्वक कोई भी कृत्य करना आवश्यक है।

जन्म लेकर धर्मबाह्य जीवन व्यतीत करने का मतलब है जीवन में सुख शांती समाधान का अभाव होना और फिर उसके लिए कितने भी प्रयत्न करने से उनका लाभ नहीं होता है क्योंकि उसके लिए आवश्यक विमोचन नहीं होता है। विमोचन के बाद श्रीगुरू ऋणानुबंधों में बदल कर देते हैं इसलिए बिना मांगे सुख की प्राप्ति हो जाती है लेकिन साधक को यह बदलाव ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि यदि उसकी गलती से इसमें बिगाड़ हुआ तो उसे पूर्ववत नहीं कर सकते हैं। इसके लिए 'लोभ' का त्याग करना आवश्यक है और उसके बजाय 'लाभ' कैसे होगा इसका सदैव विचार रखना आवश्यक होता है, तभी 'गुरूकृपा' क्या है यह समझ आएगा। श्रीगुरू ने जो बदलाव किया है वह दिखाई नहीं देता है लेकिन उससे हमारे जीवन में जो विमोचन हुआ है इसका अनुभव होता है। इसकी मिसाल यह है कि हमारे ईष्ट मित्र, रिश्तेदार हमसे दूर हो जाते हैं। जन्म प्राप्ति के पहले का आत्मा का विषय और जन्म लेने के बाद का ध्येय, प्राप्त होना आवश्यक है जिससे जीवन का मर्म समझ आएगा और फिर उसका लाभ इतरेजन को प्राप्त होगा। इस तरह प्राप्त हुए जन्म को 'मानवी जन्म' कहा जाता है।

यदि देह, 'कर्म' यह क्रिया करता है तो भी उससे 'कर्म' होता ही है ऐसा नहीं है। तो देह की इस क्रिया में जब तक काया वाचा और मन इनका समावेश नहीं होता है तब तक देह को कर्म करने की इच्छा या वासना हुई तो भी यह इच्छा वासना के कारण हुई क्रिया को 'कर्म' नहीं कह सकते। जन्म प्राप्ती के लिए कर्म का संचय करना आवश्यक होता है क्योंकि आगे इसी कर्म को, 'कर्म' करना होता है। इसलिए अपने हाथों हो रहा कर्म वाकई में 'कर्म है या नहीं इसका विचार करके जीवन व्यतीत करना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि इस जन्म में जो कर्म की क्रिया करनी है उस क्रिया में 'विषय' का होना आवश्यक है फिर उस विषय के अनुसार क्रिया करते समय वह क्रिया निरासक्त–निरपेक्ष बुद्धि से होना आवश्यक है जिससे उस क्रिया में अंतर्भूत हुआ विषय हमारे बिना समझे हमें कर्म की धारणा करा देता है।

भक्तों के जीवन में जो कठिनाईयां निर्माण होती हैं उनका अर्थ यह नहीं है कि भक्तों से पूर्व जन्म मे बहुत पातक प्रमाद हुए है। "भक्तों के जीवन में जो कमियाँ निर्माण होती है। इसका अर्थ," भक्तों को सत्कर्म

करने की आवश्यकता है जिसके लिए ये कठिनाईयां आई हैं, इसका विचार कोई नहीं करता। जब आप केन्द्र पर किसी काम के लिए आते हो तब तुम्हें 'प्रसाद' दिया जाता है वह प्रसाद आपका काम हो इसलिए नहीं होता है। वह प्रसाद देने के बाद आपको जो सेवा बताई जाती है, वह आज्ञा है, यह आप भूल जाते हैं। यदि उस आज्ञा के अनुसार बताई गई अवधि तक आपने सेवा की तो उस सेवा के लाभ का, 'सत्कर्म' के रूप में आपके काम के लिए उपयोग होता है। लेकिन इस प्रकार सेवा ना करके अनेक भक्त कठिनाईयाँ आने से चिंताग्रस्त होकर निराश होते है जिसके लिए सेवा में, जुड़ा हुआ ज्यादा कर्म व्यर्थ खर्च हो जाता है और इष्ट सुख की प्राप्ति होने में देर लगती है। इसकी अपेक्षा उत्तम मार्ग यह है कि कार्य केन्द्र पर जाकर अपना दुख बता कर उसके लिए जो निराकरण बताया जाता है वह मनःपूर्वक करना जिससे आपका कर्म व्यर्थ खर्च नहीं होता है और प्रामाणिकता से वह सेवा ग्यारह सप्ताह तक करने से उसका लाभ संपूर्ण जन्म तक होता है। इसलिए श्रीगुरू को जो दुख बताए हैं उनके लिए "चिंता, करु नको काहीं, सद्‌गुरु सी शरण जाई" (चिंता तथा कुछ कार्य ना करो, सद्‌गुरू की शरण जाओ) इस पद के अनुसार बर्ताव करना आवश्यक है तो ही कर्म व्यर्थ खर्च नहीं होगा और वह कर्म प्रापंचिक तथा पारमार्थिक जीवन के लिए उपयुक्त होगा। इसलिए जो आज्ञा है उसी के अनुसार आचरण करना यह भक्तों का कर्तव्य है।

51. वाणी, जीव, जीवात्मा, आत्मा, प्रज्ञा अवस्था श्रीसाईनाथ महाराजजीका आषीर्वाद!

'वाणी' यानि कंठ। यह प्रत्येक प्राणीमात्र को प्राप्त हुई ईष्वर की देन है। फिर भी मनुष्य और पषु, पक्षी इनकी आवाज में यह महत्त्वपूर्ण अंतर होता है कि आवाज का उच्चार करके अपने विचारों को साकार करने के लिए मनुष्य पांच माध्यमों का उपयोग करता है। ये नैसर्गिक पांच माध्यम होंठ, जुबान, ताला, स्वर–यंत्र और सांस है। इनमें स्वरयंत्र और सांस ये दो माध्यम श्रेष्ठ माध्यम है। श्वास–उच्छ्वास (सांस लेना और सांस छोड़ना) यानि प्राण है। प्रत्येक श्वास–उच्छ्वास को (सांस लेना और सांस छोड़ना इनको) एक प्रमाणबद्ध लय होती है। यदि यह लय प्रमाणबद्ध ना हो तो शरीर की नैसर्गिक क्रिया में बिगाड़ होता है जिसके कारण हृदय विकार, रक्तदाब, दमा, सांस की बीमारी इन रोगों का उद्‌भव होता है। इसलिए शरीर को निरोगी रखने के लिए प्राणायाम करने की आवष्यकता है।

मानवी देह ग्रह पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाष इन पाँच तत्वों से साकार होती है। इन पाँच तत्वों के तन्मात्र देह में रहते हैं। इनका समतोलत्व और समन्वय रखने के लिए भी नियमित प्राणायाम की आवष्यकता है। मानवी देह के अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय इन पाँच. कोषों से मानवी जीवन की प्रत्येक क्रिया कार्यान्वित होती है। मनुष्य के आचार, विचार और उच्चार इनकी परिपक्वता और शुद्धता इन कोषों की परिपूर्णता पर निर्भर है और इन कोषों की परिपूर्णता प्राणायाम पर निर्भर है। इसलिए मानवी जीवन में प्राणायाम महत्त्वपूर्ण हैं विषेषतः ध्यान, चिंतन, योग करनेवाले साधकों को जीवन की सार्थकता प्राप्त करने के लिए प्राणायाम का वलय उपयुक्त होता है। साधक के लिए 'ईष्वर की भाषा' समझना आवष्यक होता है। नित्य जीवन में इष्ट मित्र, रिष्तेदार हम से जो बोलते हैं वह शाब्दिक भाषा है उनमें 'संकेत' नहीं होता है लेकिन 'ईष्वर की भाषा' में 'संकेत' होता है। वह समझने के लिए हमारी साधना सौ प्रतिषत होना आवष्यक है। मतलब 'स्वर–ताल–लय' इन अंगों से साधना होना आवष्यक है। यदि हमने इन अंगों से साधना

की तो हमारा देहं मध्यस्थ बनता है। और हम, लहर के रूप में जो संकेत होता है वह समझ सकते हैं। इसलिए प्रथमतः साधना सिद्ध होना आवष्यक है, तो ही "ईष्वर हम से बात करेगें" ऐसा हम कह सकेंगे क्योंकि ईष्वर दृष्य भी नहीं है और अदृष्य भी नहीं है, बल्कि ईष्वर गोविंद (नाद) है।

भारतीय संगीत भी शास्त्रोक्त प्राणायाम पर आधारित है। संगीत के राग, आलाप और कुल संगीत यह शास्त्र ही प्राणायाम है, ये सिद्ध है। निष्चित अवधि में सांस लेकर निष्चित अवधि में संथा (लय) से सांस छोड़ना इस क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। संगीत के सात स्वरों के सा, रे, ग, म, प ये पांच स्वर देह के पांच कोषों के पूरक हैं। इसलिए इन पांच स्वरों का उच्चार करके पांच कोषों से किया गया प्राणायाम यह सर्वश्रेष्ठ साधना है।

सा यह स्वर नाभी स्थान से अन्नमय कोष पर नियंत्रण करता है।

रे यह स्वर हृदय स्थान पर प्राणमय्र कोष में स्थित है।

ग यह स्वर कंठ स्थान से मनोमय कोष को जागृत करता है।

म इस स्वर में ललाट स्थान से विज्ञानमय कोष कार्यान्वित होता है।

प इस स्वर से ब्रह्मस्थान में आनंदमय कोष (आनंदित) उल्हसित होता है।

इस तरह साधक का पूर्ण विकास होता है।

प्राणायाम के समय ली गई सांस प्रथम अन्नमय, फिर प्राणमय और उसके बाद मनोमय कोष में धारण होती है। और वहाँ की अषुद्धता दूर करके आहिस्ता आहिस्ता कंठ से उच्चारित होती है। उस समय विज्ञानमय और आनंदमय इन दो कोषों को सुखमय अनुभूति प्राप्त होती है और वह साधना का समाधान और आनंद, विज्ञानमय और आनंदमय कोषों में समाया रहता है। तथा साधक माध्यम की वाणी के द्वारा गुरूकृपा के अमृतमय बोल व्यक्त होते हैं। सा, रे और म, प इन चार स्वरों का मध्य

'ग' इस स्वर का स्थान कंठ है और इस कंठ से निकला उच्चार मन की भावना व्यक्त करता है इसलिए इस मध्य स्वर का और कंठस्थान का जीवन में अत्यंत महत्व है। हम नित्य व्यवहार में जो सहज उद्‌गार व्यक्त करते हैं वे भी इस कंठस्थान से ही करते हैं। इसलिए उच्चार के माध्यम इस स्थान से जुड़े हुए हैं। जब कंठ स्थान का 'ग' यह स्वर परिपूर्ण होता है तो उसे 'गुंजारव' कहते हैं।

किसी भी शब्द का उच्चार–मध्य–लय ये तीन अवस्थाएं हैं। जब उच्चारित शब्द इन तीन अवस्थाओं में व्यक्त होता है तब उच्चार किये शब्द को आकार आता है वरना उच्चार किया शब्द केवल 'आवाज' होता है तो मनुष्य का स्वरोच्चार केवल शब्द और भाषा से समृद्ध होता है। मानवी शब्दोच्चार यह तीन अवस्था और पांच माध्यमों से इनका आविष्कार होता है। इस आविष्कार से ही (व्यक्त रूप से ही) मनुष्य के स्वभाव की जाँच होती है। इसलिए कोई भी उच्चार करते समय वह उच्चार अवधानपूर्वक करना आवष्यक है तो ही साधक का विकास हो सकेगा और उस विकास के प्रकाष से औरों के जीवन 'ज्योतिर्मय' होंगे।

जगत में बहुत से लोग जो जन्म लेते हैं वह जन्म 'आत्मा' अवस्था में नहीं होता। 'जीव' का जन्म होता है और यदि जन्म के बाद उस जीव का स्थित्यंतर हुआ तो उस जीवन का रूपांतर 'आत्मा' में होता है यह नियम है। जब उस जीव का उसकी समस्या के कारण श्रीसद्‌गुरू से मिलाप होता है तब वह मिलन समस्या के निवारण के लिए ना होकर उसने जो 'जीव' रूप में जन्म लिया है उसमें स्थित्यंतर होने के लिए होता है इसीलिए वह जीव, समस्या का निर्माण करता है। इसलिए कार्य केन्द्र पर जो प्रसाद या आषीर्वाद आप भक्तों को दिया जाता है वह आपकी समस्या निवारण करने के लिए नहीं दिया जाता बल्कि आपके जीवन में स्थित्यंतर हो इसलिए दिया जाता है। आपके जीवन में यह स्थित्यंतर जीव – जीवात्मा – आत्मा – इस प्रकार होना आवष्यक है। उसके लिए साधना, आरती और हर साल के आखिर में जो सम्मेलन आयोजित किया जाता है वह सम्मेलन, इनके संस्कार आप पर होने के कारण आप में जो जीव है वह खुद अपना स्थित्यंतर कर लेता है। यह स्थित्यंतर यदि इस

जीवन में नहीं हुआ तो फिर अनेक जन्मों तक नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि फिर से गुरु मिलने के लिए अनेक जन्म प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

लेकिन यदि जीव का स्थित्यंतर हुआ तो मरणोत्तर जीवन में वह आत्मा परलोक में जाकर वहाँ 'आत्मा' रूप में रहती है और पुनष्चः जन्म लेने की इच्छा होने पर वह आत्मा 'जीव' रूप में इहलोक में नहीं आती बल्कि 'आत्मा' रूप में ही जन्म लेती है। इस तरह आत्मा के जीवन का निष्चित कार्यकारण होता है। जो 'जीव' रूप में इहलोक में आता है और 'जीव' रूप में ही परलोक में जाता है उसने यदि फिर से जन्म लिया तो वह जन्म 'जीव' रूप में ही होता है और जीवन में सुख, शांती, विद्या, संपत्ति प्राप्त करने के लिए उसे अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति ना हो इसलिए जब हमें इस जन्म में श्रीगुरू मिलते हैं तब हमें क्या प्राप्त हुआ है यह विचार ना करके श्रीगुरू ने हमें क्या प्राप्त करा दिया है इसी का विचार करना आवष्यक है।

आज श्रीसद्गुरू ने आप भक्तों को 'प्रज्ञा अवस्था' का लाभ प्राप्त करा दिया है। यह अवस्था प्राप्त करने के लिए अनेक जन्म लेकर भी साधक को यह अवस्था प्राप्त नहीं होती, इतनी यह दुर्लभ अवस्था है। इसका कारण यह है कि साधक ने प्रथमतः अपने पंचमहाभूतं तत्व, पंचतन्मात्र, पांच कोष और बुद्धि मन, चित्त, अंहकार इनका विकास कर लेने के बाद जब साधक की कुंडलिनी जागृत होती है तब 'प्रज्ञा' अवस्था का आरंभ होता है। यह अवस्था जतन करना अत्यंत कठिन है क्योंकि हमें हमारे चारों ओर जो जगत् दिखाई देता है उस जगत् का हमें 'लोभ' होता है। लेकिन 'हमें गुरूकृपा से क्या 'लाभ' हुआ 'यह हमें भूलना नहीं चाहिए क्योंकि यह लाभ हमें अत्यंत प्रयत्नों से प्राप्त होता है। इसलिए इस अवस्था में सबसे महत्वपूर्ण परहेज यह है कि जगत् के 'लोभ' का त्याग करना। 'जगत् का लोभ' त्याग दिया तो ही यह प्रज्ञा अवस्था यानि जन्मजन्मों का 'लाभ' आपको प्राप्त होगा और आप जगत् को भी यह 'लाभ' दे सकेंगे। आज यह जो प्रज्ञा अवस्था आपको सद्गुरू कृपा से प्राप्त हुई है उसे किसी को भी नजर अंदाज नहीं करना चाहिए।

'प्रज्ञा' अवस्था का जतन करने के लिए साधक को आचार और उच्चार की ओर ध्यान देना आवष्यक है। मतलब यदि हम किसी का कल्याण नहीं कर सके तो हमें किसी को श्राप भी नहीं देना च हिए। अब आपकी साधना सिद्ध हुई है तो अब आपकी वाणी से जगत् का कल्याण होना चाहिए । यदि आपने नम्रता से बर्ताव किया तो आपकी अधिक प्रगति होगी। आपके बोलने चालने में कृत्रिमता नहीं होनी चाहिए। साधक का आचार, विचार और उच्चार सत्य के अनुसार ही होना आवष्यक है तो ही साधक को 'गुरुभक्त' कहा जा सकेगा।

आज तक के सम्मेलनों में आपके अभ्यास में जो जो विषय आए वे यदि हमने किताबों में पढ़े तो भी हम उन सिद्धांतो को समझ नहीं पाते हैं और केवल उनका वाचन करना (पढ़ना) अध्ययन नही है। वाचन करने के (पढ़ने के) बाद यदि आपको उन सिद्धान्तों की अनुभूति प्राप्त हुई तो ही यह कह सकेंगे कि जो लिखा गया है उसमें सत्य क्या है यह आपने समझ लिया है। अब साधना सम्मेलन में जिन विषयों का अध्ययन आपने किया वे विषय कहानियाँ या इतिहास नहीं हैं यह आप ध्यान रखिए। प्रत्येक सम्मेलन के दस दिनों में श्रीगुरू ने जो अध्ययन आपसे करा लिया वह आपको कभी भूलना नहीं चाहिए। क्योंकि हमारा जो जन्म है वह दुर्लभ (प्राप्त करने के लिए कठिन) है। इसलिए किसी भी प्रकार का बर्ताव करके उस जीवन को व्यर्थ खर्च करने जैसा दूसरा पाप नहीं है। पूर्व पुण्य से ही हमें श्रीगुरू मिलते हैं और यह मौका जीवन में एक ही बार आता है। इसलिए श्रीगुरू के ज्ञान का लाभ कर लेना आवष्यक है और तभी हम 'गुरूमार्गी' हुए हैं ऐसा हम कह सकेंगे। केवल गुरूपूजन करके गुरूदक्षिणा देने से हमारा कर्तव्य पूर्ण हो गया यह जो लोगों को लगता है वह केवल औपचार है। उसकी अपेक्षा यदि आपके जीवन में बदलाव यानि स्थित्यंतर हुआ तो ही यह कह सकेंगे कि आप गुरूमार्गी हुए हैं। यदि हमने गुरूमार्ग के अनुसार आचार, विचार, उच्चार नहीं किए तो कोई भी हमें गुरूमार्गी नहीं कहेगा। जीवन में श्रीगुरू एक ही बार मिलते हैं और उस समय श्रीगुरू हमारे संपूर्ण जीवन का अवलोकन करते हैं। जीवन में समस्या आती है तब उसका विचार हमें स्वयं को करना आवष्यक है।

अब प्रत्येक समस्या के समय श्रीगुरू से सवाल ना पूछ कर, हममें क्या कम और क्या अधिक है यह प्रष्न हमने स्वयं से पूछना आवष्यक है। इस तरह के आचरण से श्री गुरू की सीख का लाभ भविष्य में हमें और हमारे परिवार वालों को होता रहेगा, और इसलिए हर साल साधना सम्मेलन आयोजित किया जाता है। लेकिन अभी भी जितने भक्त कामकाज में प्रष्न पूछने आते हैं उतने भक्त सम्मेलन में उपस्थित नहीं रहते हैं। यदि वे सब सम्मेलन में उपस्थित रहते तो साल में तीन सम्मेलन आयोजित करने पड़ते। इससे यह दिखाई देता है कि भक्तों को ज्ञान की आवष्यकता ना होकर उन्हें केवल यही प्रष्न है कि 'हमारे प्रष्न जल्दी कैसे सुलझ जाएंगे?' और जीवन में तो एक प्रष्न सुलझने के बाद दूसरा प्रष्न सामने आता रहता है और यदि यह होता रहेगा तो आप ज्ञानी कैसे होंगे यह श्रीगुरू का प्रष्न है। इसलिए "प्रथमतः आप ज्ञानी हो जाओ। उससे तुम निरंतर सुखी हो जाओगे"। यह आशीर्वाद परम पूज्य बाबा ने आपको दिया है।

52. श्रीसाईनाथ महाराज के कृपाषीर्वाद की प्रेरणा – परमार्थ–युग का उदयकाल 'श्रीसाई शक'!

['आत्मनिवेदन का बावनवां अध्याय यह पच्चीस सौ साल पहले श्रीनवनाथों द्वारा आरंभ किए जगत् कल्याण कार्य की श्रीसाईनाथ महाराज के आषीर्वाद से वंदनीय दादाजी द्वारा की हुई महामंगल सांगता (पूर्णता) है। श्री साईनाथ महाराज जी के कृपाषीर्वाद की प्रेरणा से आरंभ हुए 'परमार्थ युग' का उदयकाल है। इस परम मंगल सुवर्णयुग का प्रारंभ वंदनीय दादाजी ने उन्नीस सौ बयासी (1982) साल के विजयादषमी के दिन श्रीसाईशक एक (1) इस जगद्गुरू श्रीसाईनाथ महाराज के प्रेममंगल नाम से किया है। इस समय वंदनीय दादाजी ने कृतार्थ होकर गुरूप्रेम की उतराई का (ऋण अदा करने के लिए) निवेदन किया, और वंदनीय दादाजी की ही प्रेरणा से लिखा हुआ श्रीसाईशक संबंधित निवेदन इस बयानबे अध्याय में उद्धृत किया है।]

मुंबई केन्द्र श्रीसाईशक एक (1) की स्थापनां पर विजयादषमी दिनांक 27.10.1982 के दिन श्रीदादाजी का लिखा हुआ निवेदन

"जगत् के सुखशांती समाधान का और कल्याण का विचार करके इस कार्य का आरंभ किया। इसमें दो उद्देष्य (हेतु) थे। एक–प्रत्येक मानव को जो जो ऐहिक प्राप्त करना होता है उसके लिए वह अगणित प्रयत्न करके कुछ ना कुछ तरीके से उसे हासिल करता है, उसमें उसके स्वयं के परिश्रम के अनुसार कमी या अधिकता होने के कारण उसे सुख और दुख प्राप्त होते हैं। लेकिन हम मानवों को ये आवष्यकताएँ आज के भौतिक युग में नित्य होती रहेंगी, और यदि सद्गुरू कृपाषीर्वाद से इन आवष्यकताओं की पूर्णता हुई तो भी प्राप्त हुए उस सुख से सुख का अनुभव प्राप्त होने के लिए किसी महान अवतारी पुरूष के कृपाषीर्वाद हमें प्राप्त हुए बिना हम उन प्राप्त हुए सुख के क्षणों का अनुभव नहीं कर सकते हैं। इस कार्यपद्धति का दूसरा कार्यभाग यह है कि आप भक्तों के ऐहिक

52. श्रीसाईनाथ महाराज के कृपाषीर्वाद की प्रेरणा – परमार्थ–युग का उदयकाल 'श्रीसाई शक'।

['आत्मनिवेदन का बावनवां अध्याय यह पच्चीस सौ साल पहले श्रीनवनाथों द्वारा आरंभ किए जगत् कल्याण कार्य की श्रीसाईनाथ महाराज के आषीर्वाद से वंदनीय दादाजी द्वारा की हुई महामंगल सांगता (पूर्णता) है। श्री साईनाथ महाराज जी के कृपाषीर्वाद की प्रेरणा से आरंभ हुए 'परमार्थ युग' का उदयकाल है। इस परम मंगल सुवर्णयुग का प्रारंभ वंदनीय दादाजी ने उन्नीस सौ बयासी (1982) साल के विजयादषमी के दिन श्रीसाईशक एक (1) इस जगद्गुरू श्रीसाईनाथ महाराज के प्रेममंगल नाम से किया है। इस समय वंदनीय दादाजी ने कृतार्थ होकर गुरूप्रेम की उतराई का (ऋण अदा करने के लिए) निवेदन किया, और वंदनीय दादाजी की ही प्रेरणा से लिखा हुआ श्रीसाईशक संबंधित निवेदन इस बयानबे अध्याय में उद्धृत किया है।]

मुंबई केन्द्र श्रीसाईशक एक (1) की स्थापनां पर विजयादषमी दिनांक 27.10.1982 के दिन श्रीदादाजी का लिखा हुआ निवेदन

''जगत् के सुखशांती समाधान का और कल्याण का विचार करके इस कार्य का आरंभ किया। इसमें दो उद्देष्य (हेतु) थे। एक–प्रत्येक मानव को जो जो ऐहिक प्राप्त करना होता है उसके लिए वह अगणित प्रयत्न करके कुछ ना कुछ तरीके से उसे हासिल करता है, उसमें उसके स्वयं के परिश्रम के अनुसार कमी या अधिकता होने के कारण उसे सुख और दुख प्राप्त होते हैं। लेकिन हम मानवों को ये आवष्यकताएँ आज के भौतिक युग में नित्य होती रहेंगी, और यदि सद्गुरू कृपाषीर्वाद से इन आवष्यकताओं की पूर्णता हुई तो भी प्राप्त हुए उस सुख से सुख का अनुभव प्राप्त होने के लिए किसी महान अवतारी पुरूष के कृपाषीर्वाद हमें प्राप्त हुए बिना हम उन प्राप्त हुए सुख के क्षणों का अनुभव नहीं कर सकते हैं। इस कार्यपद्धति का दूसरा कार्यभाग यह है कि आप भक्तों के ऐहिक

जीवन की कमियों की पूर्णता कराते समय, मनुष्य को पारमार्थिक जीवन की जो अधिक प्रमुख आवष्यकता होती है उस पारमार्थिक जीवन की पहचान और लाभ आप भक्तों को, आपके दुखों का निवारण करते समय ही प्राप्त हो इस उददेष्य से मैं पिछले सत्ताईस सालों से यह कार्य करता आया हूँ। इस समय षिरोड़ा में जो सम्मेलन हुआ उस सम्मेलन में जैसे आप लोगों को कुछ अनुभव प्राप्त हुआ वैसे मुझे भी व्यक्तिषः कुछ अनुभव प्राप्त हुआ। उसमें आपको प्राप्त हुए जीवन के कारण आप कृतार्थ हुए और आपके प्राप्त जीवन की कृतार्थता हो यह तो इस कार्य के आरंभ में मेरा इष्ट संकल्प था। उस संकल्प को मैं मेरे जीवन में कितना साकार कर सकता इन दो बातों का यानि इन दो विचारों का समन्वय (एकरूपता) मुझे 'समाधान' रूप में प्राप्त हुआ। अब तुम्हें कितना समाधान प्राप्त हुआ और मैं कितना समाधानी हूँ यह प्रष्न हर एक भक्त को अपने नित्य जीवन के आचार विचारों से निष्चित कराना है। आज तक इस गुरू परंपरा में हम हमारा जीवन व्यतीत करते आए हैं। भविष्य में भी इस गुरूकृपा के मार्ग के अलावा भविष्यकाल यदि बिकट होगा या अधिक विकट काल आने वाला होगा तो भी जब तक हमारे सद्‌गुरू का अभयदान है तब तक हमें आनेवाली परिस्थिति का अंषमात्र भी विचार करने का कारण नहीं है।

आज दस दिन आप भक्तों को नये युग के कार्य के प्रारम्भ की पहचान कराकर आपको परम पूज्य बाबा की आज्ञा के अनुसार नवरात्र महोत्सव करने को कहा था। आज हम नवरात्र महोत्सव की सांगता, 'सीमोल्लंघन' करके हम करने वाले हैं। इसलिए आज के दिन से हम एक नये युग का आरंभ करेंगे। आप भक्तों के लिए किए गए निवेदन के अनुसार, तथा इस कार्य की महत्वपूर्ण और भविष्य में आपके कल्याण के लिए जो योजनाएं है उनका आस्थापूर्वक विचार करके इस वर्ष में नये युग का आरंभ करने के लिए आपने जो सहकार्य दिया है उसके लिए मुझे आभार व्यक्त करना आवष्यक है लेकिन उसके लिए मेरे पासशब्द ही नहीं है। यह जो सब ऋण है वह जैसा मेरा आप पर है वैसे ही आपने जो आज्ञापालन किया है वह आपका मुझ पर ऋण है। आपका ऋण मैं चुका नहीं सकता हूँ और मेरा ऋण आप चुका नहीं सकते हैं। आज इस नये

युग का शुभारंभ इस विजयादषमी के दिन श्रीसाईनाथ महाराज की पुण्यतिथी के शुभ अवसर निमित्त हम कार्यान्वित करते हैं।

हम पर अंग्रेजों ने राज किया इसलिए हम 'ईसवी सन' कहते हैं। ईसवी सन् (1800) अठारह सौ और ईसवी सन् उन्नीस सौ (1900) कहते कहते आज (1982) उन्नीस सौ बयासी साल है, यह हम कहते हैं। इसके पहले जो शालीवाहन राजा था उसके नाम से उस युग का आरंभ हुआ था। इसलिए मराठी महीने के अनुसार हम "शालीवाहनशक" कहते थे। मुस्लिम धर्म में जब मोहम्मद पैगंबर जी ने जन्म लिया तब 'हिजरी सन' का आरंभ हुआ था। इस तरह यह अनादिकाल से एक परंपरा है। आज आप सब भक्त यहाँ उपस्थित हैं वे अपना–अपना 'गोत्र' बताते हैं। इस गोत्र के नाम का उल्लेख क्यूं होता है ? आज जैसे आपके विष्वविद्यालय सब जगह हैं जैसे पुणे यूनिवर्सिटी, कोल्हापुर यूनिवर्सिटी, मराठवाड़ा यूनिवर्सिटी इत्यादि इस तरह उस अनादिकाल में अलग–अलग गुरूपीठ थे। और आज जैसे पूणे यूनिवर्सिटी, मुंबई युनिवर्सिटी इनमें पढ़ाई करते हैं वैसे उस काल में उन गुरूपीठों में पढ़ाई करते थे और उस काल में जिन गुरूपीठों में हमने विद्यार्जन किया यानि जिस ऋषि जी के आश्रम में अपने विद्यार्जन का कार्यभाग हमने पूरा किया, वह जो ऋषिजनों की परंपरा थी उन ऋषिजनों के नाम से हम गोत्र का नामोनिर्देष यानि उनके नाम का उल्लेख करते हैं। हम (1982) उन्नीस सौ बयासी यह साल कैसे कहते हैं? यह एक कालमापन (काल का मापन) है। यानि येषू ख्रिस्त के जन्म के बाद जब उन्होंने धर्म प्रचार के कार्य को आरंभ किया यानि जिस काल से उनके अनुयायी आज जगत् में हैं वह काल कितना हो गया ? तो वह काल (1982) उन्नीस सौ बयासी साल हो गया। वैसी ही बात मोहम्मद पैगंबर जी की है, शालीवाहन राजा की है। मतलब ये सब बातें अनादि काल से हमने विचारों में ली है। उसी प्रकार जिन सद्गुरू के नाम से हमारे जीवन, भविष्य के लिए साकार हुए हैं उनका 'श्रीसाईशक' ऐसा शक हम क्यूं न आरंभ करें? मुझे आप सब भक्तों से इसका जवाब चाहिए।

(तब उस समय वहाँ उपस्थित सब भक्तभाविकों ने वंदनीय दादाजी के सवाल को उत्स्फूर्त मान्यता दी।)

आज मेरे और आप सबके जो परम पूज्य सद्‌गुरू हैं, उनके कृपाषीर्वाद की प्रेरणा से आज के दिन मैं श्रीसाईशक एक (1) इस शक का आरंभ करता हूँ और प्रारंम्भ किया यह शक भविष्य में सैकड़ों लोगों के कल्याण का आदर्ष धरोहर बने ऐसी प्रार्थना आप सबको और श्रीसाईनाथ महाराज से करता हूँ।

आप जब कागज पर लिखते हैं तब प्रत्येक कागज पर 'श्रीसाईशक' लिखें। ईसवी सन् लिखने में आपको कभी संकोच नहीं हुआ है। फिर अब तो हम हमारे सद्‌गुरू के नाम से एक नया युग और शक निर्माण कर रहे हैं और भविष्य में हमें उसका लाभ जगत् के दुखी लोगों को देना है। नये युग के शुभारंभ के लिए आज आप सबलोग "श्रीसाईशक एक (1)" यह जयजयकार कीजिए। कहिये "श्रीसाईशक एक"! {इस समय वंदनीय दादाजी के साथ वहाँ उपस्थित सभी भक्त भाविकों ने "श्रीसाईशक एक" यह जयजयकार किया।}

उसके बाद वंदनीय दादाजी ने वहाँ उपस्थित सभी भक्त भाविकों को नीचे लिखी प्रार्थना कहने को कहा और सभी भक्त भाविकों ने वंदनीय दादाजी के साथ यह प्रार्थना भावुक होकर कही कि,

"यह जो परम पूज्य बाबा का आज भविष्य के लिये "कृपाआषीर्वाद" है उसे हम भक्तों ने अंगीकृत (स्वीकार) करके आगामी (भावी) कार्य की योजना स्वरूप इस "श्रीसाईषक" को आज स्वीकार किया है।"

सच्चिदानंद सद्‌गुरू श्रीसाईनाथ महाराज की जय। श्रीगुरूदेव दत्त सदानंदाचा येळकोट। सच्चिदानंद सद्‌गुरु श्रीपंतमहाराज की जय। श्री गुरूदेव दत्त।।

श्रीसाईशक 1
विजयादषमी
बुधवार 27.10.1982

• श्रीसाईषक संबंधित पारमार्थिक निवेदन •

श्रीसाईशक एक 1, विजयादषमी एकशुभ दिन! साढ़े तीन मुहुर्तो में से एकशुभ मुहुर्त। श्रीसाईनाथ महाराज के पुण्य स्मरण का एक निराला दिन! सीमोल्लंघन का एक अप्रतिम काल! इस दिन सीमोल्लंघन करके, एक आर्त षिष्य ने एक अविश्रांत गुरू को एक निराला नजराना दिया। 'श्रीसाईशक'!

गुरू कौन और षिष्य कौन ? यह भी एक प्रष्न है क्योंकि दोनों एक ही प्रेम के दो भाग, एक ही आंतरिक इच्छा के दो प्रवाह, एक ही तेज के दो आविष्कार!

एक प्रेम ने दूसरे प्रेम को दिया प्रगाढ़ आलिंगन। एक आंतरिक इच्छा से दूसरी आंतरिक इच्छा में निर्माण हुई एक अनावरत आर्तता, एक तेज ने दूसरे तेज को दिया तेजस्वी नजराना, 'श्रीसाईशक'!

इस शक के निर्माण के पहले बहुतों ने 'षक' निर्माण किए है! मोहम्मद पैगंबरजी का हिजरी सन्, येषु खिस्त का इसवीं सन्, विक्रम राजा का शक, शालीवाहन राजा का शक इत्यादि। लेकिन ये सब शक 'मानवीय' थे और अपने अपने धर्म तक सीमित थे। इनमें 'स्वत्व' था लेकिन इनमें 'मानवता युग की प्रेरणा' नहीं थी। 'श्रीसाईशक' इनसे अलग शक है। यह एक ही बार आनेवाला और चिरंतन रहने वाला शक है। परमार्थ के अनभिषिक्त सम्राट का शक है।

श्रीसाईशक में क्या नही है? उसमें अनादि अनंतकाल की गुरू परंपरा है। गुरू षिष्यों के आर्त प्रेम की अत्यंत तीव्र आंतरिक इच्छा है। नाथ, सूफी और दत्त परंपरा की सांगता (पूर्णता) है। लोक कल्याण की असीम आंतरिक इच्छा उसमें अंतर्भूत है। उसमें तेज है, ओज है, भक्ति है, युक्ति है, वेद और वेदांत है। कार का नाद है, रूद्रषक्ति का साद (पुकार) है। उसमें युगों युगों के संतो की पुण्याई, पृथ्वीतल पर लाकर पृथ्वी का स्वर्ग बनाने की इच्छा

और शक्ति है। मुख्यतः उसमें 'माता' (आई) है। उसमें महाकारण का दूध पिलाकर लोक कल्याण के लिए भक्तों का पालन पोषण करने वाली गुरुमाता है। 'श्रीसाईशक', मानवी कल्याण का अपूर्व शुभारंभ, निसर्गमय जीवन जीने का पुनष्च प्रारंभ, जाति पाती, पंथ, श्रेणी, धर्म इनका लोप (अंत) होकर आषीर्वादमय मानवी धर्म के उदय का अच्छा काल शांती, प्रेम और भक्ति इनका सुंदर समन्वय (मिलाप), महाकारण का तेजस्वी आरंभ।

'श्रीसाईशक'। गुरुकार्य के एहसास से प्रेरित होकर गुरुप्रेम की साक्ष (गवाह) देने वाले शककर्ता श्रीदत्तगुरु को, मेरी प्यारी गुरुमाता को शतषः प्रणाम। भक्तों की पेषी पेषी (cells) में गुरूप्रेम की ज्योत जलाकर उनके जीवन का सर्वार्थ से सार्थक करने वाली, उनके जीवन को सुन्दर–अच्छा आकार देकर साकार करनेवाली, मेरी तेजमाता को मेरा अखंड वंदन!
 कार को आकार देकर उसके नाद से नादब्रह्म निर्माण करने वाले मेरे सद्‌गुरू को, उनके कार को निरंतर विनम्र अभिवादन!

हे शककर्ता श्रीदत्तगुरुजी, गुरूप्रेम रूपी अमृत की बारिष करने वाले इस सुवर्ण दिन पर आपके नितांत सात्विक प्रेम में निरंतर रहने वाले आपके कार की आपके चरणों में यह एक ही माँग है कि,

दुष्ट दुर्जन अंधेरा नष्ट हो
विष्व को स्वधर्म का सूर्य दिखाई दे
हर प्राणीमात्र जो (इच्छा) चाहता है वह उसे प्राप्त हो
(सब प्राणीमात्रों के लिए यह हो)
हे प्रभु यही ज्ञान दीजिये
कि आपको भूलना ना हो
मैं लगन से आपके गुण गाता रहूं
वही मेरी जोड़ हो
मुझे मुक्ति धनसंपदा नहीं चाहिए
मुझे सदैव गुरूसंग दीजिए!

卐 ो 卐